प्रसिद्ध २ लेखकोंके मनोरंजक और शिक्षाप्रद

उपन्यास तथा गल्पें

अभागिनी	१)	चारदाने	॥≈)
अद्भुत कथा	॥।)	चपला कि० गो०	२)
अधखिला फूल	॥≈)	जापान रहस्य	॥≈)
अर्थमें अनर्थ	१॥≈)	जर्मन जासूसकी रामकहानी	।-)
अन्नपूर्णाका मन्दिर	॥।)	जगदेवपरमार	॥≈)
अनाथ वालक	॥)	जादूका महल	१)
अमर दत्त	॥।)	जारीना	॥।)
अरण्य बाला	१)	जबर्दस्तकी लाठी	॥)
आंखकी किरकिरी	१॥≈)	डबल बीबी	॥।)
आदर्श दम्पति	॥≈)	टामकाकाकी कुटिया	२।)
आदर्श हिन्दू ३ भाग	३)	तिलस्माती मुन्दरी	।)
आरव्योपन्यास	१।)	तीनपतोहू	५)
अभागेका भाग्य	२॥)	तारा	॥।≈)
इन्साफ संग्रह ३ भाग	१।-)	तरुण तपस्विनी कि० गो०	॥≈)
उमा	१)	तारा	१॥)
कनक रेखा	॥।)	दिशाभूल	।≈)
कोहेनूर	१।)	दोबहन	॥।)
गंजा गोपाल	॥)	दीना नाथ	।≈)
गृहलक्ष्मी	१)	देवबाला ठेठहिन्दीका ठाठ	॥)
चित्रावली	॥≈)	देवरानी जेठानी	॥)
चतुर जपानी	१॥≈)	धूर्त्त रसिकलाल	।)

बेकनने ग्रन्थोंकी उपमा जहाजोंसे दी है। जैसे जहाज एक देशका माल दूसरे देशमें लाते ले जाते, हैं वैसे ही ग्रन्थ रूपी नावोंके सहारे एक देश-

धोखेकी टट्टी	।≈)	माया	॥)
नूरजहां	॥।)	मिलन मन्दिर बढ़िया जिल्द	१॥)
पारस्योपन्यास	१)	मुकुट	।)
प्रतिभा	१।)	युद्धकी कहानियां	।)
प्रतिमा	१)	राम लाल म० द्वि० गजपुरी	॥≡)
प्रेमका फल	॥≈)	रजियाबेगम कि० गो०	१।)
परिणाम	॥।)	राजकुमारी "	१)
प्रभातसुन्दरी	॥।)	रहस्य भेद	१॥)
प्रणयीमाधव	१)	रंग महल रहस्य	२॥)
पानीपत	१)	रमा	॥)
फूलोंका गुच्छा	॥-)	राजदुलारी	॥)
विगड़ेका सुधार	।-)	राजराजेश्वरी	॥)
विछुड़ी हुई दुलहिन	।≈)	राजसिंह वा चंचलकुमारी	१॥)
बहरामवहरोज	।)	रहस्य कुण्ड	२॥)
भोजपुरकी ठगी	॥≈)	लखनऊकी कब्र ८ भाग	४)
भीमसिंह	१।)	लीलावती (आदर्श स्त्री)	१।)
भयानक बदला	॥।)	लालचीन	१)
मडेल भगिनी	१)	लंडन रहस्य ३१ भाग	१६।≈)
मोती महल ६ भाग	३॥)	लाखरुपया	॥≡)
मानकुमारी सचित्र	२॥)	वारांगना रहस्य ६ भाग	२॥।)
मल्लिकादेवी कि० गो०	१।)	विकट बदलौअल	१)
माधवी माधव "	२)	वंग विजेता	१)
मोतियोंका खजाना ८ भाग	४॥)	विधि जाल	।≈)
माधवीकंकण	॥।)	वीरमणि	१)

बसन्तमालती	।)	सती सुखदेई	।)
विमला	।।।)	सुशीलाविधवा	।।=)
वन कुसुम	।=)	सच्चामित्र	।।)
विनोद	।।=)	सोना और सुगन्ध कि० गो०	१।।)
वीर मालोजी	।।≡)	स्वर्गीय कुसुम ”	१)
शान्तिकुटीर	।।।=)	समाज आर० सी० दत्त	१)
शारदा	।=)	संसार चक्र ज० प्र० चतुर्वेदी	१।)
शेक्सपियर कथागाथा	१।)	सास पतोहू	।।)
श्रीराजलक्ष्मी	२।)	सावित्री	२)
शशिबाला	।।=)	सूरज देई	।।।)
शोणित तर्पण	२)	सती उपन्यास	।।)
शीशमहल	२)	सिराजुद्दौला	२)
सुकुमारी	।।=)	सप्तसरोज (प्रेमचन्द)	।।)
सागर साम्राज्य	।।=)	हृदयकीपरख	।।।≡)
सोनेकी राख	।।)	हिन्दू गृहस्थ	।।=)
सौअजान और एक सुजान	।।)	हृदय हारिणी	।)
सौन्दर्यप्रभा	।।)		

भिन्न २ लेखकोंके जासूसी, ऐयारी, तिलिस्मी जादूगरी आदि भिन्न २ विषयोंके

मनोहर उपन्यास

अर्थमें अनर्थ	१।।=)	कृष्णावसनासुन्दरी	१)
अद्भुत जासूस	१।।)	किलेकी रानी	।।।)

हुई ग्रन्थ रूपी नाव अपने देशमें ला कर उसका ज्ञान भंडार अपने देशमें बांट देना चाहिए।

कटा सिर	॥।)	ठनठनजासूस	१॥)
खूनीका भेद	॥)	तीनजासूस	१)
खूनी कलाई	॥)	डबल जासूस	१।)
खूनी औरत	१)	नीलवसना सुन्दरी	१।)
गुलबदन	१।)	नकली रानी	१)
घटना घटाटोप	१॥।)	नराधम	१=)
घटनाचक्र	२।)	पानका नहला	॥-)
चक्करदार खून	२)	पीतलकी मूर्त्ति ५ भाग	६।)
छः मामले	१॥)	प्रतिज्ञा पालन	१।)
जासूसी कुत्ता	१॥)	भीषण डकैती	१)
जासूसी गुलदस्ता	२)	मोतियोंका खजाना ८ भाग	४॥)
जासूसी पिटारा	॥।)	मोतीमहल ६ भाग	३॥)
जटिल जासूसी	१॥)	मायावी	१॥)
जासूसकी बुद्धि	१)	मृत्यू विभीषिका	१॥)
जयपराजय	॥।)	सत्यवीर	१॥)
जासूसकी डाली	१)	सूर्य्यकान्ता	॥।)
जासूस चक्करमें	॥।)	सोनाबीबी	१)
टिकेन्द्रजीतसिंह	॥।)	हत्यारहस्य	१।)

नाटक

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के प्रसिद्ध १९ नाटक ।

एक जिल्दमें पक्की रेशमी कपड़ेकी सुनहरे अक्षरोंकी जिल्द ३।)

अन्धेर नगरी	-)॥	दुर्लभबन्धु	॥)
कर्पूरमंजरी	-)॥	धनंजय विजय	-)॥

ज्ञान प्राप्तिके पांच साधन हैं:—देखना, बातचीत करना, पुस्तक पढ़ना, बोलना और मनन करना।

पुस्तक	मूल्य
नाटक	।≈)
नीलदेवी	≈)
पाखण्ड विडम्बना	
प्रेमयोगिनी	≈)
भारतजननी	–)॥
भारत दुर्दशा	–)॥
माधुरी	–)
मुद्राराक्षस	॥≈)
रत्नावली	।–)
विद्या सुन्दर	≡)
विषस्यविषमौषधम्	–)
वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	–)
श्रीचन्द्रावली	≡)
सतीप्रताप	≈)
सत्यहरिश्चन्द्र	≈)॥

अन्यान्य लेखकोंके नाटक

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ऋतुसंहार भाषा	ला० सीताराम	–)
नागानन्द भाषा	”	।)
महावीर चरित	”	।≡)
मालती माधव	”	।≈)
मालविकाग्निमित्र	”	।≈)
मृच्छकटिक	”	॥≈)
जंगलमें मंगल	”	।)
बगुला भगत	”	।≈)
भूलभुलैया	”	।)
मनमोहनका जाल	”	।–)
राजा रिचर्ड	”	।≈)
राजा लियर	”	।≈)
शेक्सपियर भाषा	”	॥)
हैमलेट	”	।≈)
उसपार	स्व० द्विजेन्द्र लाल	१)
चन्द्रगुप्त	”	१)
ताराबाई	”	१)
दुर्गादास	”	१)
नूरजहां	”	१)
भीष्म	”	१≈)
मेवाड़ पतन	”	॥।)
मूर्ख मण्डली	”	॥–)
शाहजहां	”	॥।≈)
सीता	”	॥–)
भारत रमणी	”	॥।≈)
सूमके घर धूम	”	≡)
उत्तर रामचरित	सत्यनारायणशर्मा	॥।)
मालती माधव	”	१)

“पढ़नेसे आदमीका चाल-चलन सुधर जाता है, उसमें असभ्यता नहीं रह जाती ।”

“एक लैटिनकवि”

कनक सुन्दर मारवाड़ी भाषा	॥)	वनवीर	॥)
केशर विलास ,,	१)	भीष्म प्रतिज्ञा	॥|)
कुरु वन दहन बद्रीनाथ भट्ट	॥)	महाभारत माधव शुक्ल	॥)
कलिकौतुक रूपक प्र० सि०	≈)	रणधीर प्रेम मोहिनी	॥)
खांजहां	१≈)	राजस्थान केशरी	॥)
चन्द्रगुप्त बद्रीनाथ भट्ट	≈)	विवेकानन्द नाटक	१)
चन्द्रहास मैथिली शरण	॥)	वीरपूजा	१)
जयन्त	॥|)	वीरचूड़ावत सरदार	॥≈)
ठोकपीटकर वैद्यराज	|-)	वेणी संहार	|≈)
तिलोत्तमा मैथिली शरण	॥)	वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति	॥|≈)
दुखिया नाटिका	|≈)	शकुन्तला राजालक्ष्मण सिंह	१)
नेत्रोन्मीलन	|≡)	स्वप्न वासवदत्त	≈)
प्रफुल्ल	१≈)	सरल नाटकाला ४४ नाटक	१॥)
प्रायश्चित्त	|-)	संगीत शाकुन्तल प्र० सि०	|)
बुढ़ापेकी सगाई	॥)		

थियेट्रिकल नाटक

आतशी नाग	॥)	गोरखधंधा	|≡)
असीरे हिर्स	|≡)	जहरी सांप	|≡)
काली नागिन	॥)	दिल फरोश	|≈)
खूनका खून	|≈)	दुश्मने ईमान	॥)
खूने नाहक	|≡)	यहूदीकी लड़की	॥)
खूबसूरत बला	|≡)	भक्त सूरदास	॥)
ख्वाबे हस्ती	|≡)	भूल भुलैया	|≡)

"पढ़नेसे आदमीमें पूर्णता, बोलनेसे सुफैदी और लिखनेसे बातको अच्छी तरह समझ लेने की शक्ति आती है।" लार्ड बेकन

महाभारत ॥)
विल्व मंगल ।≡)
शरीफ बदमाश ॥)
शहीदेनाज़ ।≈)
सफेद खून ।≡)
सिलवर किंग ॥)
सुनहरी विष ।≈)
सैदहवस ।≈)

नवयुवकोपयोगी पुस्तकें

अस्तोदय और स्वावलम्बन १≈)
अन्तःकरणका सुधार ।)
आदर्श जीवन १)
आचार प्रबन्ध १)
इसाप नीति १)
कर्मक्षेत्र ॥।≈)
गुरु शिष्य सम्वाद ।)
आत्मरहस्य ।)
आत्मशिक्षण १)
एकाग्रता और दिव्यशक्ति १)
कठिनाईमें विद्याभ्यास ॥।)
मेराव्यापक शिक्षण १।)
मित्रता ।-)
युवाओंको उपदेश ॥≈)
मानवसन्तति शास्त्र १)
(सजिल्द) १॥)
महात्मा टालस्टायके लेख ।)
मितव्ययिता १)
मुक्तिका मार्ग ।≈)
मनुष्यके अधिकार ।-)
सुखकी प्राप्तिका मार्ग ।≈)
सफलता और उसकी साधना के उपाय ॥≈)
सफलताकीकुञ्जी ।)
हृदय तरंग ।≈)॥
चरित्र संगठन ॥)
चरित्रगठन और मनोबल ≈)॥
जीवनके आनन्द १)
जीवनसुधार ॥)
जीवनव्यवहार ॥)
जीवनके महत्वपूर्ण प्रश्नोंपर प्रकाश ॥)
जीवन और श्रम १॥)
जैसे चाहो बन जाओ ≈)॥
दिव्यजीवन ॥)
नवयुवकका संसार प्रवेश ॥≈)

"श्रद्धा पूर्वक ज्ञान प्राप्त करते समय मैं खाना, पीना भूल गया था। अब वही ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मुझे जो आनन्द मिला उससे मैं अप-

स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

ने दुःख भूल गया। बुढ़ापा सिर पर आ रहा है यह मुझे मालूम तक न हुआ।" "कन्फ्यूशियस"

आदर्श वहू	॥।)	पत्रकौमुदी	।≈)
आदर्श परिवार	॥)	प्रेमलता	।≋)
आदर्श महिलायें	१।)	पत्राञ्जलि	॥)
आदर्श दम्पति	॥≈)	वनिता विनोद	॥-)
इन्दिरा	॥)	पाठशालाकी कन्या	।-)
उपदेश रत्न माला	॥)	वाला विनोद	॥≈)
उत्तम सन्तति	१॥)	पाक प्रकाश	।≈)
कन्यावोधिन (१ से ५ भाग	१)	वनिता विकास	।-)
कर्कशा सास	≈)	वालापत्र वोधिनी	।≈)
कन्या कौमुदी	१।)	वनिता वुद्धि विलास	१)
कृष्णकुमारी वाई	।)	वच्चा	१)
गृहिणी	॥।)	भामिनी भूषण	≈)
गृहप्रवंध शास्त्र	॥)	भ्रातृ द्वितीया	।≈)
गृहिणी कर्त्तव्य	१॥)	भारतीय महिला मण्डल	॥।)
चौक पूरनेकी पुस्तक	१)	माताके उपदेश	।)
छोटी वहू	॥।)	मानव सन्तति शास्त्र	१॥)
जेवनार	।-)	मिलनमन्दिर-वढ़ियांजिल्द	१॥।)
देवी जोन	॥)	महिलामृदुवाणी	॥)
देववाला	॥)	युवती योग्यता	≈)
नवनिधि	॥।≈)	रजनी	॥।)
नारीनीति	॥≈)	लक्ष्मी वहू	।≋)
पतिव्रता	॥।)	व्यञ्जनविधान	॥)
प्रतिभा	१।)	व्याही वहू	≋)
प्रसूतिशास्त्र	२)	पतिव्रता गान्धारी	॥)

ज्ञान प्राप्तिका सबसे सहजसाधन पुस्तक पढ़ना है। आरामसे अपनी शान्ति कुटीमें बैठे हुए हम व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, सूर, तुलसी,

पार्वती और यशोदा	।≈)
वनिता विनोद	॥≈)
विधवा कर्त्तव्य	॥)
शारदा	।≈)
सप्तसरोज	॥)
सतीलक्ष्मी	॥।)
सीता चरित्र	॥।)
सुघड़ दर्जिन	॥)
स्त्री सुबोधिनी	२)
सती सावित्री (सचित्र	१॥)
मितव्ययिता	१)
वनिता हितैषिणी	।)
सुघड़ चमेली	≈)
स्त्रियोंका दान	।)
सौभाग्य रत्नमाला	॥)
सौरी सुधार	॥)
स्वामी और स्त्री	॥≈)
महारानी सीता	।≈)
,, दमयन्ती	।≈)
,, शैव्या	।≈)

बालकोपयोगी पुस्तकें

आदर्श चरितावली	।-)
अच्छी आदतें	≈)॥
आश्चर्य सप्तदशी	।-)
उपदेश रत्नमाला	।-)
ग्रीस और रोमकी दन्त कथायें	।-)
चमत्कारी बालक	।)
पिताके उपदेश	≈)
बालधर्मशिक्षक	≡)
बालकथा कहानी	।)
बाल उपदेश	।)
हिन्दी आख्योपन्यास २ भाग	१)
शिष्टाचार पद्धति	।-)
शेखचिल्लीकी कहानियां	॥≈)
अंकगणित (चक्रवर्त्ती)	१॥)
आमोदपाठ	।)॥
ऋजुव्याकरण २ भाग	१)
खेल तमाशा	≈)
खिलौना	।≈)
जार्ज हिन्दीरीडर १ला	।-)
बाल कालिदास	।)

विहारीहरिश्चन्द्र, शेक्सपियर, मिल्टन आदिसे बातें कर सकते हैं। ज्ञान-प्राप्तिका इससे अधिक सुलभ साधन दूसरा नहीं है।

वाल गीतावली	॥)	देवनागर वर्णमाला	।=)
„ गीता	॥)	नागरी वर्णमाला	-)
„ निवन्धमाला	।=)	न्यू हिन्दी रीडर १ला	-)
„ नीतिमाला	॥)	„ ३रा	≡)
„ पञ्चतन्त्र	॥)	पट्टी पहाड़ा	)॥
„ पुराण	॥)	भाषा प्रभाकर	।)
„ भारत २ भाग	१)	व्याकरण उपक्रमणिका	।=)
„ भागवत २ भाग	१)	भारतीय नीति कथा	॥)
„ भोज प्रवन्ध	॥)	मनोरञ्जक कहानियां	≡)
„ मनुस्मृति	।)	लड़कोंकी कहानियां	।≡)
„ रामायण	॥)	हिन्दी शिक्षावली १ भाग	-)
„ विष्णुपुराण	।)	„ २ „	-)॥
„ स्वास्थ्यरक्षा	॥)	„ ३ „	=)
„ स्मृतिमाला	॥)	„ ४ „	≡)॥
„ हितोपदेश	।)	„ ५ „	।)॥
„ ३रा	।=)	वाल हिन्दी व्याकरण	।)
वालभजनमाला (सचित्र)	-)	देवनागरी पहली पोथी (सचित्र)	=)

पद्य साहित्य

प्राचीन कवियोंके ग्रंथ

अखरावट—जायसी	≡)	महिला मृदुवाणी	॥)
अनन्य ग्रन्थावली—अनन्यकवि	≡)	व्रज विलास	१॥)
पृथ्वीराज रायसा २२ खण्ड—चन्दवरदायी	२०)	विनय पत्रिका रामेश्वरभट्ट	२)
		महाभारत—सवलसिंह चौहान	२॥)

"बहुत पढ़ना अच्छा है। लेकिन पढ़ी हुई चीजको पचा कर अवसर पर उसका उपयोग करना अधिक लाभ है।" "एडमंड वर्क"

इन्द्रावत नूरमहम्मद ।।।)
कुण्डलिया गिरिधरदास ।≈)
कबीर वचनावली १)
कविता कौमुदी सं० रा० त्रि०
८६ कवियोंकी कवितायें २)
काव्य प्रभाकर भानुकवि १)
चित्रावली उसमानकवि २)
जङ्गनामा श्रीधरकवि ।।।)
तुलसी सतसई ।)
रहिमनशतक रहीम ≈)
रसिकप्रिया केशवदास
सरदारकविकी टीका वेङ्कटेश्वर प्रेस १॥)
नवलकिशोर प्रेस ।≋)
रामचन्द्रिका केशवदास
वेङ्कटेश्वर प्रेस २)
नवलकिशोर प्रेस ॥≈)
राम रसायन रसिकविहारी ४)
षोड़श रामायण
गो० तुलसीदास १॥)
सूरसागर सूरदासजी
नवलकिशोर प्रेस ३)
वेङ्कटेश्वर प्रेस ७)
सूरसारावली १)

रामचरित्रमानस
गो० तुलसीदास गुटका ।।।≈)
इण्डियन प्रेस २)
„ सटीक
„ बाबू श्यामसुन्दरदास कृत ४)
„ विनायकीय टीका ७।)
„ ज्वालाप्रसाद मिश्रकी टीका ३।)
रसराज मतिराम ।–)
रागरत्नाकर--संग्रह २॥)
राजविलास-श्रीमान्‌कवि १)
बिहारी सतसई—
पं० पद्मसिंहजीकी टीका २)
बिहारी विहार पं० अम्बिकादत्त
व्यासकृत सतसईकी पद्य बद्ध टीका २॥)
प्रभुदयाल पांडेकृत टीका १≈)
विनय पत्रिका—गो० तुलसीदास
रामेश्वर भट्टकी टीका २।)
विनय पत्रिका सूरदास ।)
शिवसिंह सरोज–संग्रह ।।।)
सुन्दरी तिलक भारतेन्दु जीकृत
संग्रह २॥)
हम्मीररासो-कविजोधराज १)

---

१ "ग्रन्थ कल्पवृक्षके समान है। कल्पवृक्ष मुंह मांगी मुराद देता है। इस कल्पवृक्षसे भी आप जो चाहें पावेंगे, धैर्य, शान्ति, संपत्ति, बल, विभव, ईश्वर प्राप्तिका मार्ग, यह सब कुछ आपको दे सकता है।"

वर्त्तमान कवियोंकी कविता

खड़ी बोलीके आचार्य पण्डित श्रीधरजी पाठककी पुस्तकें

आराध्य शोकांजलि	।≈)	मनोविनोद	१)
एकान्तवासी योगी	≡)	वनाष्टक	≈)
ऊजड़ ग्राम	।≈)	श्रान्तपथिक	।)
काश्मीर सुषमा	≈)	गोपिका गीत	≡)
श्रीगोखलेगुणाष्टक	≈)	पद्यसंग्रह	३॥)
श्रीगोखले प्रशस्ति	≈)	पाठकजीकी सम्पूर्ण ग्रन्थावली	
जगत सचाई सार	-)	कपड़ेकी बढ़िया जिल्द	३॥।)
देहरादून	।≈)		

हिन्दीके राष्ट्रीय कवि बा० मैथिलीशरण गुप्तकी पुस्तकें

किसान	।≈)	भारत भारती	१)
जयद्रथवध	॥)	रङ्गमें भङ्ग	।)
पत्रावली	।-)	विरहिणी व्रजाङ्गना	।)
वैतालिका	।)	शकुन्तला	।≈)

भिन्न २ कवियोंके ग्रन्थ

अनुरागरत्न नाथूराम शङ्कर शर्मा	१)	भारत गीताञ्जलि माधवशुक्ल	।)
कविता कुसुममाला-संग्रह	॥।)	मिलन	।)
नारायणशतक-बेताब	≈)	मौर्यविजय-सियाराम शरण	।)
प्रणवीर प्रताप	।-)	विद्यापति ठाकुरकी पद्यावली	२)
प्रेमपुष्पाञ्जलि	॥)	वीर प्रताप	।-)
पद्यप्रमोद अयोध्यासिंह उ०	॥।)	वीर माता	।-)
पद्यपुष्पाञ्जलि-लो० प्र०	।≈)	सूक्ति मुक्तावली	।≈)

पुस्तकें मनुष्यके लिए उत्तम मित्र हैं। इन मित्रोंके सत्संगसे हमें बड़े २ दुर्लभ विचार मिलते हैं। इनसे हमारे विचार उच्च और गम्भीर

सन्तबानी पुस्तकमाला

महात्माओंकी बानिओंके साथ उनके जीवन चरित्र भी दिये गये हैं।

कबीर साहब—

साखी संग्रह	॥।)
शब्दावली १ भाग	॥)
,, २ ,,	॥)
,, ३ ,,	।)
,, ४ ,,	≈)
ज्ञानगुदड़ी, रेखते और झूलने	।)
अखरावती	-)॥
दूलनदासजीकी बानी	≋)
दरिया साहब (बिहार) का दरिया सागर	।-)
चुने हुए पद और साखी	≋)॥
दरिया साहब, (मारवाड़) की बानी	।)॥
दयाबाईकी बानी	।)
धरनीदासकी बानी	।)
केशवदासजीका अमीघूंट	-)
गरीबदासकी बानी	॥।≈)
गुलाल साहबकी बानी	॥≈)॥
गुसाईं तुलसीदासकी बारह मासी	)॥

गुरुनानक—

प्राणसंगली सटिप्पण १ भाग	१)
,, २ ,,	१)
चरनदासजीकी बानी १ भाग	॥)॥
,, २ ,,	।≋)॥
जगजीवन साहबकी बानी १ भाग	॥-)
२ ,,	॥-)

तुलसी साहब हाथरसवाले....

शब्दावली १ भाग	॥।)
,, २ ,,	॥।)
पद्मसागर ग्रन्थ सहित	॥।)
रत्न सागर	॥।≈)
घट रामायण भाग १	१)
,, २	२)

होते हैं, इतना ही नहीं, हमारे रहन सहन पर भी उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

दादू दयालकी बानी भाग १
साखी १)
शब्द भाग २ ॥।-)
धरमदासकी शब्दावली ।≈)
पलटू साहब....
भाग १ कुण्डलिया ॥)
„ २ रेखते, झूलने,
अरिल, कवित्त सवैया ॥)
भजन और साखियां ॥)
बाबा मलूकदासकी बानी ≡)
बुल्ला साहबका शब्दसागर ≈)॥
भीखा साहबकी शब्दावली ।≡)
मीरबाईकी शब्दावली ।-)॥
यारी साहबकी रत्नावली -)॥
रैदासजीकी बानी ।-)॥
सुन्दरदासजीका सुन्दर—
विलास ॥≡)
सहजो बाईका सहज प्रकाश ।-)
संतबानी संग्रह १ भाग १)
(प्रत्येक महात्माकी जी० च० स०)
„ २ भाग १)
लोकपरलोक हितकारी
सन्तों, महात्माओं, विद्वानों और ग्रन्थोंसे २३७ चुने हुए वचन पहले भागमें और १७५ दूसरे भागमें छापे गये हैं।
विना जिल्द ॥।-)
सजिल्द १)

आरोग्य चिकित्सा

ओज क्या है? -)
आरोग्य दिग्दर्शन-म०
गान्धी ।≡)
आरोग्यता प्राप्त करनेकी
नवीन विद्या ३॥)
आरोग्यसार ।)
औषधिकल्पलता ।-)
आजकलका वीर्यनाश ≈)
अमृतसागर २।)
उपवास चिकित्सा ॥।)
उत्तम सन्तति १॥)
गृहवस्तु चिकित्सा ॥)
गोरसादि औषधि -)
जल चिकित्सा ।)
छाया दर्शन ॥≈)
वाजीकरकल्पतरु ॥)
दीर्घायु अर्थात् आरोग्य
सूत्रावली १।)
पारिवारिक चिकित्सा १)

जिसने इतना भी लखा दिया कि उसके पास कोई भेद है उसने आधा भेद तो खोल दिया और आधा जल्द खुल जायगा।

(होमियोपैथिक)		शुश्रूषा	४)
परिचर्या प्रणाली	।)	संजीवनी बूटी	॥-)
प्रसूति शास्त्र	३)	सन्तान कल्पद्रुम	॥।)
बुढ़ापेकी रोक	≈)	सरल चिकित्सा	॥)
मानव सन्तति शास्त्र	१)	सौरीसुधार	॥)
मुखाकृति विज्ञान	४।)	क्षयरोग	।≈)
वनौषधि विज्ञान १ भाग	१॥)	हमारे शरीरकी रचना	
,, २ ,,	॥।≈)	१ ला भाग	२॥)
वैद्यकशिक्षा	२।)	२ रा भाग	३।)

कोष

हिन्दी गुजराती शिक्षक	।≈)	प्राइमरी कोष	॥।)
हिन्दी मराठी शिक्षक	।≈)	मंगल कोष	१॥)
प्रैक्टिकल डिक्शनरी		राम कोष	२)
अंगरेजी हिन्दी	२॥)	शब्दार्थ पारिजात	३)
हिन्दीसे अङ्गरेजी	३)	हिन्दी-शब्दसागर १८ भाग	१८)
दोनों एकमें	५)	हिन्दी-विश्वकोष ३ भाग	३०)
भागीरथकोष	॥-)		

छन्द, व्याकरण

काव्यप्रभाकर जगन्नाथदास(भानु)	७)	भाषा भास्कर	।)
छन्दः प्रभाकर ,,	१॥।)	प्रवेशिका व्याकरण	१)
छन्दः सारावली ,,	॥)	साहित्य सुषमा	॥)
हिन्दी पद्यरचना	।)	साहित्य सुधाकर	॥≈)
		साहित्य सुमन	५)

कंजूस की गणित विद्याकी पढ़ाई "जोड़" से शुरू होती है और उसके लड़कोंकी "भाग" से।

संस्कृत काव्य हिन्दीमें

किरातार्जुनीय म० प्र० द्वि० १॥)
कुमारसम्भव ,, ॥।)
मेघदूत ,, ॥)
वाजपेयी लक्ष्मीधर
महावीर चरित—
सीताराम बी० ए० ।≈)
मालती माधव ,, ।≈)

ऋतुसंहार भाषा ,, ।)
कुमार सम्भव ,, ॥)
नागानन्द ,, ।)
मेघदूत ,, ≡)
मालविकाग्निमित्र ,, ॥)
मृच्छकटिक ,, ॥≈)

राजनैतिक साहित्य

आयर्लैंड का इतिहास १॥≈)
आयर्लैंडमें होमरूल ॥-)
आयर्लैंडमें मातृभाषा ॥-)
एनी बिसेंटका भाषण ।-)
कलकत्तेमें स्वराज्यकी धूम ।)
कांग्रेसका इतिहास ॥-)
पार्लमेंट-सुपार्श्व दास ॥।≈)
बीसवीं सदीका महाभारत ॥।)
भारतवर्षके लिए स्वराज्य ।≈)
भारतीय शासन पद्धति २)
(प्रो० राधाकृष्ण झा)
भारतमें सरकारी नोकरियां ॥।)
दिल्ली कांग्रेसकी रिपोर्ट ।≈)
दिल्ली कांग्रेस पर मलवीयजी
का व्याख्यान ≡)

लखनऊ कांग्रेसमें स्वराज्य ।)
शासनपद्धति १)
प्राणनाथ विद्यालङ्कार
स्वराज्य प्रो० बालकृष्ण १।)
स्वराज्यकी गूंज ।≈)
स्वराज्य खजाना सजिल्द
(२५ पुस्तकें) २॥)
स्वराज्यकी योग्यता १।)
स्वराज्यपर मालवीयजी ।)
भारतीय शासन सुधार १॥।)
महात्मा गोखलेके व्याख्यान १।)
मनुष्यके अधिकार ।-)
महात्मा तिलकके २० व्याख्यान १।)
स्वराज्यपर रवीन्द्र ।)
स्वराज्यकी शङ्खध्वनि ।)
हम स्वराज्य क्यों चाहते हैं १)

धनका दाहिना हाथ परिश्रम और बायां हाथ किफायत है।
मित्रोंमें लेन देन मित्रता की कतरनी समझो—सादी

विज्ञान

गुरुदेवके साथ यात्रा ।≈)
चुम्बक ।≈)
ज्योतिविनोद १)
ज्योतिषशास्त्र ॥)
प्रकृति १)
भूकम्प १।≈)
भौतिक विज्ञान १)
भारतीय रसायन शास्त्र ॥)
रसायन शास्त्र ३॥)
विद्युत् शास्त्र ३)
विज्ञान प्रवेशिका पहला भाग ।)
” दूसरा ” १)
सृष्टि विज्ञान २)
शरीर विज्ञान ॥)
सुवर्णकारी ।)
ताप ।≈)
सर जगदीशचन्द्र वसुके अविष्कार ।≈)

खेती, पशुपालन

अफीमकी खेती ।)
आलूकी काश्त ।)
आलूकी खेती ॥)
ईख और उससे गुड़ ।)
कृषि और उद्यानपद्धति २)
कृषि सुधार ।)
कृषि कोष ॥≈)
कृषि शास्त्र—कोचक १॥)
केला -)
धानकी खेती ≋)
धानकी खेती ।)
बागबानी ।)
मेस्टन कृषिरीडर २ भाग १≈)॥
मूंगफलीकी खेती ।≈)
मक्काकी खेती १)
लाखकी खेती ।)
नीबू नारंगी ≈)
कपासकी खेती ३)
काश्तकारी कूयें ।)
खाद मुख्त्यार सिंह वकील १)
खाद और उनका व्यवहार ।)
गेहूंकी खेती १)
जमींदार हितकारी ५॥)
वनस्पति शास्त्र २)
गोपालन १≈)
पशु चिकित्सा १)
ढोरोंकी बीमारियोंका इलाज ।)
तिब्बे हैवानात ॥।)

किसीको अनादर या अपमानके साथ दान न दो क्योंकि ऐसा करनेसे उसका फल जाता रहता है—रामा० वा०

अर्थशास्त्र और व्यापार

अर्थ शास्त्र प्रो० बालकृष्ण एम० ए० १॥)
अर्थ शास्त्र मि० फासेट १।)
अर्थ शास्त्र प्रवेशिका ।)
पैसा ।≶)
आर्थिक सफलता ।≈)
उद्योग शिक्षा १)
व्यापार शिक्षा ॥-)
व्यापार तत्त्व ॥)
बैंककी बारह बातें -)
वैदेशिक व्यापार ॥)
सम्पत्ति शास्त्र न० प्र० द्विवेदी २॥)

भ्रमण

अमरीका पथ प्रदर्शक सत्यदेव ।≶)
अमरीका दिग्दर्शन ,, ॥।)
अमरीका भ्रमण ,, ॥)
मेरी कैलाश यात्रा ,, ॥)
भारत भ्रमण ५ खण्ड १०) (साधुचरण मिश्र)
लङ्का यात्रा—गोपालराम ॥।)
हिन्दु तीर्थ ॥।)

हास्य, कौतुक

उलट फेर जी० पी० श्रीवास्तव ॥≶)
नोक झोंक जी० पी० श्रीवास्तव ॥≈)
नवीन बाबू ≶)
बीरबलविनोद १-)
भोज और कालिदास १।)
मार २ कर हकीम जी० पी० श्रीवास्तव ॥≈)
लम्बी डाढ़ी ,, १)
शिव शम्भूका चिट्ठा ।)

आर्यसमाजकी पुस्तकें

आर्यसमाजका इतिहास १॥)
आर्याभिविनय ≶)
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका १)
दयानन्द दिग्विजय ४)

जो सुमार्गसे भटके हुए हैं उनको प्यारसे समझा कर राह पर लाओ। दुर्जनोंके सुधारके लिए भी कोमल बात कठोर लातसे बढ़ कर उपयोगी है।

नारायणी शिक्षा	१।)
न्यायदर्शन भाषा टीका	॥)
पितृयज्ञ संगति	।)
ब्रह्मयज्ञ	।॥)
मनुस्मृति भाषा टीका	१।)
योग दर्शन ,,	॥≈)
वैशेषिक दर्शन	॥≈)
वेद, चारों—मूल	५)
सांख्यदर्शन	॥)
संस्कार विधि	॥)
संस्कार चन्द्रिका	२॥)
सृष्टि विज्ञान	२)
संगीत रत्नप्रकाश सम्पूर्ण	१॥≈)
स्वामी दयानन्द	।≈)
सरस्वतीन्द्र जीवन (बड़ा जीवन चरित्र)	१॥)

विविध

आश्चर्यजनक घंटी	।-)
अनुप्रासका अन्वेषण	।)
उद्भ्रान्त प्रेम	॥)
गीत मञ्जरी	॥)
चित्रमय जापान	१)
गद्यमाला	।≡)
चम्पारनकी जांच	।-)
ज्योतिर्विनोद	१)
ज्योतिष शास्त्र	॥)
ताल मंजरी	॥≈)
दयानन्द तिमिर भास्कर	४)
निरंकुशता निदर्शन	॥≈)
नाट्य शास्त्र	।)
प्रासपुञ्ज बेताब (कविता सम्बन्धी पुस्तक)	
प्रैक्टिकल फोटोग्राफी	२)
प्रेमसागर	१।)
पतित जातियां	॥)
पुष्पाञ्जलि	१॥)
फीजीद्वीपमें मेरे २१ वर्ष	।≈)
वन्सी मजंरी	१)
बच्चोंका जीवन सुधार	॥-)
भक्तमाल	४)
ब्रजविलास	१॥)
मानस प्रबोध	१)

हठका सामना हितसे करो तो काम बने। तलवार की चोखी धार मुलायम रेशमको नहीं काट सकती—सादी

लन्दनके पत्र	≡)॥
लोकोक्ति संग्रह	≡)
लिंग विचार	≡)
विक्रमाङ्क देव चरित चर्चा	।)
विकासवाद	२)
विश्राम सागर	१॥)
वंशीमंजरी	१)
विदुरनीति	।-)
व्याख्यानरत्नमाला	१।)
कर्त्तृत्वकला	१=)
रामायणी कथा	१)
शिक्षा म० प्र० द्विवेदी	२॥)
शिक्षासुधार	॥)
श्वासविज्ञान	॥)
शुक्रनीति	१।)
शुकसागर वेङ्कटेश्वरप्रेस	३॥)
सिंहावलोकन	।)
आश्चर्य सप्तदशी	।-)
संगीत सुदर्शन	१)
स्वर्गीय जीवन	॥)
हारमोनियम मास्टर १५ भाग	२॥)
हारमोनियम फुलझरी	१)
हिन्दुस्थान दण्डसंग्रह	१।)
हिन्दी कुरान	३)
हिन्दी चार्टस २ (हिन्दीके सब अक्षर नक्शेकी भांति)	३)
नक्शे—युरोप, एशिया, हिन्दुस्तान और प्रत्येक देशके कपड़े पर रूल पट्टी सहित	२॥)

संस्कृत

वेद

चारों वेद—मूल	५)
अथर्व वेद संहिता—मूल्य	३)
शुक्ल यजुर्वेद संहिता—उव्वट महीधर भाष्य सहित	५)
हिन्दी मिश्रभाष्य सहित	१०)
रुद्री	।)
साम वेद—मूल	२।)

मनसा वाचा कर्मणा, सबको सुख पहुंचाय।
अपने मतलब कारने, दुःख न दे तू काय। बोली मनका चित्र है, लेखनी मनकी जीभ—बेकन

वेदान्त

आत्म बोध—भाषा टीका ≡)
अवधूत गीता—„ १)
अष्टावक्र गीता—„ १)
अष्टाविंशत्युपनिषद्-मूल अट्ठाइस उपनिषद् रेशमी जिल्द ।।।≈)
एकशत अष्टोपनिषद् २॥)
पातञ्जल योगसूत्रम् ।।।)
भगवद्गीता-संस्कृत अष्टटीका सहितम् ६)
„ शङ्करानन्दी टीका २।)
„ अमृत तरङ्गिणी १)
„ गुटका अनेक प्रकारका
„ आनन्दगिरि कृत भाषा टीका २॥)
भगवद्गीता चिद्घनानन्द भाषा टीका ६॥)
कपिलगीता—भाषा टीका ।≈)
तत्त्व बोध „ ≡)
पञ्चदशी—भाषा टीका ३॥)
मूल ।।।≈)
ब्रह्म सूत्र—शङ्कर भाष्य १०)
„ प्रभुदयालकृत भाषा भाष्य ८)
विवेक चूडामणि-भाषाटीका १)
वेदान्त संज्ञा „ ॥-)
शिव गीता „ ॥≈)
सर्व दर्शन संग्रह २)

धर्मग्रन्थ

अशौच निर्णय-भाषा टीका ।)
धर्म सिन्धु— „ ५)
पाराशरस्मृति— „ ।≡)
याज्ञवल्क्यस्मृति „ २)
अष्टादशस्मृति भाषा टीका ३)
निर्णयसिन्धु „ ६)
मनुस्मृति „ १॥)-२)-३)

आदमीको चाहिये कि अपना काम देखे दूसरे की खोद विनोद न करे—डिमास०

विपत्तिमें निराश न हो, मोतीसी बूंदें काली ही घटासे बरसती हैं

पुराण रामायणादि

पुस्तक	मूल्य
अष्टादशपुराण दर्पण	२)
अध्यात्म रामायण	॥)
अग्निपुराण—मूल	४)
कूर्म पुराण „	२॥)
गरुड़ पुराण „	५)
„ भाषा टीका	६॥)
„ १६ अध्यात्य भाषा टीका	१)
लिङ्गपुराण—मूल	५॥)
ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—मूल	७॥)
ब्रह्मपुराण „	५॥)
वाराहपुराण „	४॥)
देवी भागवत—(संस्कृत) नीलकण्ठ टीका	८)
नारद पुराण—मूल	८)
पद्मपुराण „	१५)
भविष्यपुराण „	६)
मत्स्यपुराण „	५॥)
मार्कण्डेयपुराण-शान्तनवी टीका	५)
वाल्मीकीय रामायण-मूल	३)
„ संस्कृत टीका	१२)
„ भाषा टीका	२५)
„ केवल भाषा	१०)
विष्णु महापुराण „	१३)
वायुपुराण „	५॥)
वामनपुराण „	३)
वामनपुराण-भाषा टीका	५॥)
शिव महापुराण—मूल	८)
शिवमहापुराण-भाषाटीका	१२)
श्रीमद्भागवत-मूल गुटका	२)
„ भाषा टीका	१५)

भागवतपर संस्कृतकी और कई टीकायें भी मिलती हैं।

वैद्यक

पुस्तक	मूल्य
चरक संहिता-भाषा टीका	१०)
चक्रदत्त „	३)
भावप्रकाश „	८)
माधव निदान—मूल	१)
„ भाषा टीका	२)
वाग्भट्ट—संस्कृत टीका	८)
„ भाषा टीका	८)
शार्ङ्गधर „	२॥)
सुश्रुत संहिता „	१३)
बृहन्निघण्टु रत्नाकर	३०)

मत देख पराये औगुन । क्यों पाप बढ़ावे दिन दिन । रा० स्वा०

दूसरोंका भला करनेका नाम पुन्य और बुरा करनेका नाम पाप है—व्यास

काव्य नाटकादि

अभिज्ञान शाकुन्तल—संस्कृत टीका २)
अमरु शतकम् „
उत्तर रामचरित्र ॥)
ऋतुसंहार—संस्कृत टीका ।)
„ भाषाटीका ।≈)
किरातार्जुनीय—मल्लीनाथ कृत टीका १॥)
कुमारसम्भव ॥)
गीत गोविन्द ॥≈)
दशावतार चरितम् ॥)
भट्टिकाव्य—जयमङ्गल टीका सहित २॥)
भोज प्रवन्ध ।-)
भामिनी विलास २)
मेघदूत—मल्लीनाथ टीका ।≈)
रघुवंश—मल्लीनाथ टीका ।≈)
„ सूक्ष्माक्षर ॥≈)
„ राजालक्ष्मणसिंह कृत १॥)
रत्नावली नाटिका १)
भर्तृहरिशतक—नीतिशृङ्गार, वैराग्य, भाषाटीका १।)
महावीर चरित्र—भवभूति-वीर राघवटीका १॥)
मालती माधव—संस्कृत टीका २)
मालविकाग्नि मित्र-सटीक १।)
विक्रमोर्वशीयम् ॥)
शिशुपालवध (माघकवि) मल्लीनाथ टीका ३)
साहित्य दर्पण ३)
हर्ष चरितम् १)
हनुमन्नाटक १)
पञ्चतन्त्र १)
हितोपदेश भाषा टीका ॥≈)
सुभाषित रत्नाकर भा०टी०२॥)
सुभाषित रत्न भाण्डागार ३॥)

व्याकरण, न्याय कोषादि

अष्टाध्यायी सूत्रपाठ ।)
लघुसिद्धान्त कौमुदी-मूल ।≈)
„ भाषा टीका २)
कारिकावली—सिद्धान्त मुक्तावलि सहित ॥)
तर्क संग्रह—सटीक ।-)

आदमी छोटे छोटे लाभसे धनी बनता है क्योंकि वह सदा मिलते हैं,

अमरकोष ।≈)
„ भाषाटीका १।)
सारस्वत व्याकरण ।-)
सिद्धान्त कौमुदी २।)
„ सटीक ४)

स्तोत्र तथा माहात्म्यादि

गोपाल सहस्र नाम ≈)
„ रेशमी पुट्ठा ।-)
विष्णु सहस्र नाम ।)
गंगा लहरी—भाषाटीका ≡)
दुर्गासप्तशती—रेशमी जिल्द ।≈)—॥)—॥≈)
महिम्नस्तोत्र—सुबोधिनी टीका ≈)
„ भाषाटीका ≈)
गया माहात्म्य ॥)
बृहत्स्तोत्र रत्नाकर—कपड़े की जिल्द ॥)
भगवद्गीता गुटका कई प्रकार—।)—॥) ॥)—१)
सत्यनारायण कथा—मूल्य ≈)
„ भाषाटीका ≡)
एकादशी माहात्म्य— मूल्य ।≡)
कामन्दकीयनीतिसार ॥)

सम्मेलन परीक्षा

प्रथमा परीक्षा

प्रश्नपत्र—१

साहित्य

१—राजस्थान केसरी ॥)
२—सत्य हरिश्चन्द्र ≈)॥
३—रंगमें भंग ।)
४—अयोध्याकांड १।)
५—शिवाबावनी ≡)
६—मिलन ।)

पिंगल

सरल पिंगल ≡)
हिन्दी पद्य रचना ।)

जो अपनी जीभको वशमें रख सको तो वह लाखों आदमियोंको अपने वशमें कर सकती है।

अलंकार

प्रथमालङ्कार निरूपण ≈)
अलंकार मंजूषा १)
मानस दर्पण ।≈)

प्रश्नपत्र—२

१—साहित्य-सुमन ॥)
२—अनुप्रासका अन्वेषण ।)
३—भाषासार ॥)
४—तृतीय सम्मेलनके सभापतिका भाषण ।-)

अलंकार

प्रश्नपत्र १ के समान

व्याकरण

भाषा भास्कर ।)
हिन्दी व्याकरण ।)

प्रश्नपत्र—३

१—लेखन कला ॥-)
२—रचना प्रबोध ॥)

भारतका इतिहास

१—शालोपयोगी भारतवर्ष १।)
२—भारतवर्षका इतिहास (मिश्रबन्धु) भाग १ १।)

भूगोल

१—मिडिल क्लास भूगोल ॥।)

अंकगणित

१—अंकगणित चक्रवर्ती १॥)

विज्ञान और स्वास्थ्य

१—विज्ञान प्रवेशिका प्र० भ० ।)
२—ताप ।≈)
३—स्वास्थ्य ≈)॥

मध्यमा परीक्षा

प्रश्नपत्र—१

साहित्य

१—रामचन्द्रिका ॥।)
२—कविता कौमुदी २)
३—विनय पत्रिका २)
४—प्रिय प्रवास २)
५—भूषण ग्रन्थावली ॥)

पिंगल, रस, अलङ्कार

अलंकार मंजूषा १)
काव्य निर्णय १।)
छन्दः प्रभाकर १॥।)

जो कुछ पढ़ना हो उसका अर्थ समझ कर पढ़ना चाहिए।
जो तुम्हारे आधीन हैं उनको तुच्छ निगाहसे न देखो।

प्रश्नपत्र–२

१—किरातार्जुनीय १॥)
२—विहारीकी सतसई पद्मसिंह कृत टीका २)
३—सम्मेलनकेद्वितीय वर्षके सभापतिका भाषण ।)
४—मुद्राराक्षस ॥।)
५—सप्तसरोज ॥)

प्रश्नपत्र–३

निबन्ध रचना

प्रश्नपत्र–४

१—नागरी अंक और अक्षर ≡)
२—नाटक ।≈)
३—मिश्रबन्धुविनोद तीनों भाग ५)

मिश्रबन्धु विनोद न मिले तो नीचे लिखीं पुस्तकें पढ़ी जायँ—

१—हिन्दीका संक्षिप्त इतिहास ।–)
२—हिन्दी भाषा
३—कविता-कौमुदी २)

इतिहास

१—भारतवर्षका इतिहास (मिश्रबन्धु) १।)
२—भारतीय शासन पद्धति २)
३—भारतवर्षका इतिहास दोनों भाग प्रो० बालकृष्णकृत २॥≈)
४—मुसलमानोंका शासन १)
५—सिक्खोंका इतिहास १)
६—वारन हेस्टिंग्स १)
७—हिन्दी महा भारत १)
८—मेवाड़का इतिहास १।)

प्रश्नपत्र–५

१—इतिहास ≡)
२—यूरोपका संक्षिप्त इतिहास ।≡)
३—हिन्दुओंकी राजकल्पना ॥)
४—पार्लमेंट १)
५—फ्रांसकी राज्यक्रांति का इतिहास ।॥≡)
६—शासन पद्धति १)
७—ग्रीसका इतिहास १≈)

जो औरोंको उपदेश करता फिरता है और आप उस पर अमल नहीं करता उसका उपदेश ऐसा है जैसे बिना सुगन्धका फूल। दूसरोंका मन मारना सहज है पर अपना मन मारना कठिन काम है।

गणित

१—वीजगणित २)
२—सरल त्रिकोणमिति
३—रेखागणित

दर्शन

१—यूरोपीय दर्शन ॥)
२—गीता रहस्य (तिलक) ३॥)
३—ईश, केन, कठ, प्रश्न,
मुण्डक, माण्डूक्य १)
श्वेताश्वतर ॥।)
४—वैशेषिक सूत्र (अनुवाद)
५—न्याय सूत्र (अनुवाद)

विज्ञान

१—भौतिक शास्त्र १)
२—विज्ञान प्रवेशिका
द्वि० भा० १)
३—चुम्बक ।≈)
४—दियासलाई, फास-
फोरस -)

धर्मशास्त्र

१—मनुस्मृति १॥)
२—याज्ञवल्क्य स्मृति १)
३—शांति पर्व (महाभारत)

अर्थशास्त्र

१—अर्थ शास्त्र (वालकृष्ण) १॥)
२—सम्पत्ति शास्त्र २॥)

ज्योतिष

१—सूर्यसिद्धान्त १)
२—ज्योतिष शास्त्र ॥≈)

वैद्यक

१—वैद्यक शिक्षा २)
२—भारतमें मंदाग्नि ॥)
३—वालस्वास्थ्य रक्षा ॥)
४—शुश्रूषा १)
१—हमारे शरीरकी रचना
दोनों भाग ५॥।)
२—नाड़ी विज्ञान ≡)

कृषि

१—कृषि शास्त्र १॥)
१—केला, ईख, गुड़, राव,
शक्कर ।≈)
३—कृषि कोष १)
४—वागवानी ।)
५—धानकी खेती ।)
६—आलूकी खेती ।)

अरायज नवीसी

साहित्य

प्रथम परीक्षाके प्रश्न पत्र १
और २ के समान तथा
निबंध लेखन

राजनियम

१—कोर्ट फीस ऐक्ट हिन्दी

१—स्टाम्प ऐक्ट हिन्दी

उर्दू शिकस्तके लिये

१—मकतूब अहमदी
२—मजमूआ कागजात

कार्रवाई

१—व्योहार पत्र दर्पण ॥।)
३—मुअल्लिम नागरी ॥)
३ न्यायालय कार्यपत्र संग्रह १)
४—ऐक्ट ५ सन् १९०८,
५—,, ५ ,, १९०१
६—,, ३ ,, १९०१
७—कानून मार्त्तंड
१—बहीखाता ≈)
२—महाजनी ≈)॥
१—देशी हिसाब ।)

अध्यात्म

आत्म विद्या—अनुवादक माधव राव सप्रे बी०ए०। वेदान्त विषयका एक अपूर्व और महत्वपूर्ण ग्रन्थ नया। निकला है मू०२)

ईश्वरीय बोध—स्वामी विवेकानन्दके गुरु परमहंस रामकृष्णके उपदेश। सीधे सादे उदाहरण देकर वेदान्तके गूढ़ तत्व समझाये गये हैं। शान्तिदायक पुस्तक है। मू० ।-)

एकाग्रता और दिव्यशक्ति-अनुवादक सन्तराम बी० ए०। आध्यात्मिक विषयकी पुस्तक है। आरोग्य, आनन्द, शक्ति और सफलता की प्राप्तिके सरल उपाय बतलाये गये हैं। इसके अध्ययनसे आपको दिव्यशक्ति अर्थात् आकर्षणकी अद्भुत शक्ति प्राप्त होगी। और आप अपने भीतर एक नवप्राप्त आनन्दका अनुभव करने लगेंगे। मूल्य एक रुपया।

गुरुशिष्य सम्वाद—स्वामी विवेकानन्दजीके शिष्योंने समय समय पर उनसे जो प्रश्न किये थे, वही प्रश्नोत्तर रूपसे इस पुस्तकमें लिखे गये हैं। इसमें देश भक्ति, सामाजिक तत्व, धार्मिक और ज्ञान विषयक अनेक गूढ़ प्रश्नोंको सरल भाषामें हल किया है। मूल्य चार आना।

दिव्य जीवन-डाक्टर स्विटमार्सडन अङ्गरेजी भाषाके एक

अत्यन्त प्रभावशाली लेखक हैं। अङ्गरेजी साहित्य संसारमें आप का खूब आदर हुआ है। आपकी पुस्तकोंमें सबसे अच्छी पुस्तक "The miracles of right thoughts" है उसका अनुवाद "दिव्य जीवन" पढ़नेसे आपके हृदयमें एक विलक्षण प्रकार की जीवन शक्तिका स्रोत बहने लगेगा। मूल्य बारह आना।

वेदान्त सिद्धान्त—सनातन वेदान्तमत नवीन प्रबल युक्तियों तथा पुष्ट प्रमाणोंसे सिद्ध किया गया है। मूल्य २ भागोंका १)

शान्तिदायी विचार—नवीन रूपके शान्तिदायी विचार मू० ॥)

इतिहास

आर्य सभ्यताका इतिहास—स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त लिखित। यदि आप वेदोंके समय तकका भारत वर्षका इतिहास जानना चाहते हैं तो यही एक पुस्तक है जो आपको बतला सकेगी। बड़े महत्वकी, बड़ी प्रसिद्ध पुस्तक है। मूल्य सजिल्द ४॥)

[illegible]**ा प्रशस्तियां**—साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्म्मा एम० ए०। महाराज अशोक और उनके विजय लाभके सम्बन्धमें जितने शिलालेख आजतक मिले हैं उनका अनुवाद मू०≠)

इन्द्रप्रस्थ अथवा देहली—लेखक पं० लक्ष्मीधर बाजपेयी। प्राचीन इन्द्रप्रस्थ और नवीन देहलीका उत्थान और पतन, समय समय पर उसका उठना और कालकी चालसे फिर गिरना, भारत वर्षके प्रायः सभी सम्राटोंकी राजधानी होनेका सौभाग्य प्राप्त देहलीका हाल जानना हो तो अवश्य पढ़िये मू० ॥)

ऐतिहासिक लेख संग्रह—लेखक श्रीयुत रामकुमार गोयेनका। इसमें ६ लेख हैं। चूरूकी बही वाले लेखमें सवा सौ

वर्ष पहले की चीजोंका भाव दूसरे लेखोंमें बड़े लाटके नाम हिन्दीमें पत्र (सचित्र)। ईष्टइडिया कम्पनी की रचना, प्राचीन, और नवीन वाणिज्यकी तुलना आदि है। मूल्य।≤)

फ्रान्सकी राज्य क्रान्ति—हिन्दीमें इस विषयका शायद यह पहला ग्रन्थ है। राजनीतिके प्रेमियोंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। बड़े रोचक ढंगसे लिखा गया है। मूल्य ॥≡)

मेगास्थनीजका भारतवर्षीय वर्णन—२२०० सौ वर्ष पहले भारत वर्षकी क्या अवस्था थी यहांकी साहित्य, कला वाणिज्य, धार्मिक, राजनैतिक इत्यादि अवस्थाका हाल जानना हो तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़िये। मूल्य ॥≤)

बर्नियरकी भारत यात्रा—यदि लगभग ३५० वर्ष पहले भारतमें मोगल साम्राज्यकी आन्तरिक अवस्थासे परिचित होना हो, औरङ्गजेबके हथकण्डोंसे परिचित होना हो, यदि बादशाहोंके महलोंका सच्चा हाल जानना हो तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़िये। मूल्य २)

सिक्खोंका उत्थान और पतन—जिस सिक्ख जातिने यूरोपको अपनी वीरतासे अचम्भित कर दिया है। यदि उनका प्रादुर्भाव; उनके गुरुओंका इतिहास तथा राजनैतिक उत्थान और पतनका ज्ञान प्राप्त करना हो तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़िये। मूल्य १)

हिन्दुस्तन १-२ भाग—इसमें भारतवर्षके प्राकृतिक, ऐतिहासिक राजनैतिक, धार्मिक व्यापारिक, तथा और और बहुतसे ज्ञातव्य विषय लिखे गये हैं। मूल्य १) प्रति भाग

ग्रीसका इतिहास—ग्रीस (युनान) की सभ्यता हीने आज युरोप वालोंको सभ्य बनाया है। इसीसे सभ्यता सीखकर

आज सारे संसारको सभ्य बनानेका स्वप्न यूरोप वाले देख रहे हैं। भारतके बाद संसारकी सबसे पुरानी सभ्यताके उत्थान और पतन का वर्णन इस में है। मूल्य १≈)

जीवन चरित्र

लार्ड किचनर—युरोपियन युद्धके महावीर पराक्रमी वृटिश सेनापति लार्ड किचनरका हाल कौन न जानना चाहता होगा। इसे पढ़कर नीच दलकी सफलताका मर्म जानिये मूल्य १)

श्री कृष्ण—महात्मा कृष्ण और उनके उपदेशोंको पढ़नेके लिये कौन भारतवासी लालायित न होगा। यह देश भक्त लाला लाजपत रायकी कलमसे लिखी हुयी पुस्तक है। मूल्य ॥।)

कावूर—इटलीराष्ट्र का निर्माता। यदि आप यह जानना चाहते हों कि राजनैतिक जीवनमें किन किन गुणोंकी आवश्यकता है, स्वदेश सेवाके लिये-निश्चय, साहस, दूरदृष्टि इत्यादिकी कितनी आवश्यकता है, तो कावूरका जीवनचरित्र अवश्य पढ़िये और देखिये कि देश सेवाके लिये कावूरने किस तरह स्वार्थ त्याग कर, सारे सुखोंपर पानी फेरकर इटलीका उद्धार किया। मूल्य १)

उद्योगी पुरुष—संसारके कर्मवीरोंके जीवन चरित्र और भारतीयोंको उनसे क्या शिक्षा मिलती है, इसका अद्वितीय वर्णन। मूल्य ।≈)

कोलम्बस—अमेरिका आदि देशोंका पता लगाने वाले असम साहसी कर्मवीर कोलम्बसका आश्चर्यजनक और शिक्षा प्रद जीवन चरित्र। साहस, उद्योग और अध्यवसायकी शिक्षा देनेके लिये अच्छी चीज है। मूल्य ॥।)

कांग्रेसके पिता ह्यूम—भारतमें राष्ट्रीय भावोंके उत्थापक, मनुष्य जातिके परम हितैषी, स्वार्थत्यागी महात्मा ह्यूमका जीवन चरित्र प्रत्येक भारतवासीके पढ़ने योग्य है। यह एक प्रकारसे कांग्रेसका इतिहास भी है। मूल्य ॥।)

भगवान बुद्धदेव—भगवान बुद्धके अमृतमय पवित्र उपदेशोंका रसास्वादन करना हो, शान्ति और आत्म शिक्षण का पाठ पढ़ना हो, संसारमें निःसंकोच कार्यतत्परता और कर्मयोगकी शिक्षा ग्रहण करनी हो तो इस जीवनीको अवश्य पढ़िये। मूल्य १)

भारत नर रत्न—भारतके प्रसिद्ध २५ नर रत्नोंका सचित्र जीवन चरित्र पढ़ना हो, भारतके धार्मिक, राजनैतिक, व्यापारिक और साहित्यिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना हो तो इसे अवश्य पढ़िये। हर जीवनीके साथ एक चित्र। मूल्य १॥)

आत्मोद्धार—अमरीकाके हबशी नेता डा० बुकर० टी० वाशिङ्गटनका आत्मचरित्र। इसे पढ़कर पाठक जान सकेंगे कि एक दरिद्र गुलामके घर पैदा हुआ लड़का अपने सदाचरण उद्योग, परिश्रम, आत्मविश्वास और परोपकार शीलतासे कितनी उन्नति कर सकता है। संसारमें इस विषयका वाशिङ्गटन जैसा दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता। मूल्य १)

कृष्ण चरित—भारतके राजनैतिक योगी श्रीकृष्णचन्द्रका जीवन चरित्र बड़ी प्रासादिक भाषामें लिखा गया है। इसके लेखक महान् कवि श्रीयुत नवीन चन्द्रसेनने बङ्गाली समाजको घोर नास्तिकताकी ओरसे घुमा कर हिन्दू धर्मकी ओर लगाया है। मूल्य ।≈)

जार्ज वाशिङ्गटन—हिन्दी संसारमें पं० बाबू राव विष्ण पराड़करको कौन नहीं जानता। आपही की उच्च लेखनीसे लिखी हुई यह पुस्तक है। हर हिन्दी भाषा भाषीको पढ़ना चाहिये अमरीका महाद्वीपके उद्धारकर्त्ताकी जीवनीसे कर्त्तव्य की जागृति, आपत्तियोंसे छुटकारेका ज्ञान, स्वतन्त्रता और स्वार्थ त्यागका पाठ मिलेगा। मूल्य ॥)

मार्टिन लूथर—१५वीं शताब्दीमें मार्टिन लूथर नामक एक प्रसिद्ध धार्म्मिक बड़े स्वतंत्र विचारोंके महापुरुष यूरोपमें हो गये हैं। उन्हींकी संक्षिप्त जीवनी। मूल्य ≈)

महर्षि सुकरात—लगभग २३०० वर्ष पहले यूनान देशके राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवनमें हलचल डालने वाले स्वतन्त्र विचार और सत्यप्रियताके वशीभूत तथा विलक्षण तर्क शक्तिके कारण अनेक शारीरिक कष्ट सहनेवाले महापुरुषका जीवन चरित्र। मूल्य १)

द्रोणाचार्य—भारतगुरु द्रोणाचार्यका जीवन चरित्र वहुत उच्च भाव और भाषामें लिखा गया है। हिन्दी में द्रोणाचार्यजी का यह एक ही जीवन चरित्र है। मूल्य ।≈)

देवी जोन—अर्थात् स्वतन्त्रताकी मूर्त्ति। अपने जीवनकी वलि देकर फ्रान्सको पराधीनतासे मुक्त करनेवाली "जोन आफ आर्क" नामक प्रसिद्ध वीरांगनाका देश भक्तिपूर्ण अपूर्व जीवन चरित्र। मूल्य ॥)

नैपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधा मोहन गोकुल जी। प्रसिद्ध लेखक एवटके अधारपर। सुन्दर विचारोंसे युक्त। मूल्य १)

भीमचरित—महावली भीमसेनका सचित्र जीवन चरित्र। पांचो पांडवोंमें सबसे अधिक वली महापराक्रमी वड़ेसे बड़े हाथियोंको पूंछ पकड़कर उठा लेनेवाले। वीररसकी अद्वितीय पुस्तक। मूल्य ॥।≈)

बुद्धदेव–२००० वर्षपूर्वके भारत वर्षकी राजनैतिक,धार्मिक अवस्थाको जानना हो, यदि चित्तकी शान्ति चाहते हैं, धर्मका सच्चा रहस्य जानना चाहते हो, अपने जीवनको महान बनाना चाहते हैं तो इसे पढ़िये। मूल्य १)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—हिन्दी भाषाके जन्मदाता भारतेन्दुका जीवन चरित्र। इस में जानने लायक अनेक नई बातें हैं। हिन्दी प्रेमियों के कामकी चीज़। मूल्य ॥।)

मेरे गुरुदेव—उन्नीसवीं शताब्दीमें परमहंस रामकृष्णजी महान् आचार्य हो गये हैं। उन्हींके सम्बन्धमें स्वामी विवेकानन्दजीने न्यूयार्कमें "माई मास्टर" नामका यह एक व्याख्यान दिया था। मूल्य ।)

महाराज बड़ौदा—भारतीय देशी रजवाड़ोंमें बड़ोदाकी कीर्त्ति खूब फैली है। बडौदा नरेशकी जीवनी उनके अनेकानेक सुधारोंका विवेचन इस ग्रंथमें बड़ी मार्मिकतासे किया गया है। मूल्य ।≈)

उपन्यास

अभागिनी—जिन उपन्यासोंको आप निस्संकोच भावसे स्त्री, पुरुष, युवक और बालक बालिकाओंके हाथमें दे सकते हैं उनमें इसका ऊंचा दर्जा है। समाजका चित्र बहुत ही मार्मिक और घटनायें बड़ी शिक्षाप्रद हैं। मूल्य १)

अर्थमें अनर्थ—इटली देशका इतिहास। वहांके राजा किस प्रकारके होते थे, कैदियोंको कैसी कैसी यंत्रणायें दी जाती थीं। डाकुओं लुटेरोंका प्रभुत्व तथा और भी आश्चर्य जनक बातें आपको मालूम होंगी। मूल्य तीन भाग १॥=)

अन्नपूर्णाका मन्दिर—बहुत ही पवित्र, पुण्यमय और करुणारस पूर्ण ग्रन्थ है। इसे स्त्री, पुरुष, युवा और बालक सभी पढ़कर आनन्दके साथ शिक्षा भी ग्रहण कर सकते हैं। मूल्य ॥)

अभागेका भाग्य-प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनमें किसी न किसी समय भाग्यके फेरमें पढ़ना ही होता है। भाग्यके फेर में पड़कर मनुष्यको कहां तक बुरे और भले काम करने पड़ते हैं। भाग्यके फेरमें पड़कर मनुष्यको क्या क्या झेलना पड़ता है। यह जानना हो तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़िये। पुस्तक बहुत ही उत्तम, रोचक और शिक्षाप्रद है। मूल्य २॥)

उमा—गार्हस्थ्य चरित्रका अद्भुत उपन्यास, स्त्री शिक्षाकी एक परम उपयोगी पुस्तक, यह स्त्रियोंको अवश्य पढ़नी चाहिये। मूल्य १)

कनकरेखा—इसमें बहुत ही मनोहर, भावपूर्ण, और स्वाभाविक ११ गल्पोंका संग्रह है। हिन्दीके प्रसिद्ध गल्पलेखक पं० ज्वालादत्त शर्माने अनुवाद किया है। मूल्य ॥)

रङ्ग महल रहस्य—यदि आप मुगल बेगमों और शाहजादियोंके अद्भुत रहस्यपूर्ण चरित्रका भीतरी हाल जानना चाहते हों, यदि उस समय के अमीर उमराओंके रहन सहनसे परिचित होना चाहते हों। यदि आप प्रवल प्रतापी सम्राट् अकबरकी राज्य व्यवस्थाका ऐतिहासिक वर्णन पढ़ना चाहते हों तो इसे पढ़िये दर्शनीय चित्रोंके साथ। बिना जिल्द २॥)

राजराजेश्वरी—यह उपन्यास शिक्षा पूर्ण, मनोरंजक और पथ प्रदर्शक है। यदि आप शिक्षाप्रद उपन्यासोंके प्रेमी हैं तो इसे देखिये। मूल्य ॥≈)

रहस्यकुंड—आजकलके शहरोंकी विचित्र लीला। नागरिकोंके रहन और सामाजिक जीवनका दृश्य। शहरके धूर्त्त और पाखंडी नर नारियोंका रहस्यपूर्ण भीतरी हाल। कुकर्मों का हृदय विदरक दृश्य। मू० १॥)

वीर मणि—मिश्र बन्धुओंका लिखा एक ऐतिहासिक घटनाके आधार पर बहुत ही शिक्षाप्रद उपन्यास। मूल्य १)

सोनेकी राख—मेवाड़की प्रसिद्ध रानी पद्मिनीके हृदय द्रावक चरित्रको लेकर इस स्त्री पाठ्य पुस्तककी रचना हुई है। मूल्य ॥)

सिराज्जुद्दौला—भारतके प्रौढ़ इतिहासज्ञ बाबू अक्षय कुमार मैत्रेय लिखित सिराज्जुदौलाके समय का सच्चा इतिहास यदि आप कलकत्तेकी ऐतिहासिक काल कोठरीका सच्चा वृत्तान्त तथा उस समयके इतिहासकी सच्ची समालोचना देखना चाहते हों तो इसे देखिये। मूल्य २)

हृदयकी परख—स्वतन्त्र कल्पना प्रसूत उपन्यास। बड़ी ही मनोरम और हृदय हारी कल्पना है। ५ सुन्दर चित्रोंसे सुसज्जित। मू० १≈)

कुल लक्ष्मी—स्त्री पाठ्य पुस्तकोंमें सर्वश्रेष्ठ पुस्तक हिन्दू धर्मको रीति नीतिके अनुसार सामाजिक कुरीतियोंको दिखलाते हुए इसमें बतलाया गया है कि कैसे कन्याएं सुशीला कुल बधु हो सकती हैं कैसे कुल बधुयें अपने सद्व्यवहारसे कुल लक्ष्मी बन सकती हैं। स्त्रियोंको उपहारमें देनेके लिये बहुत ही उत्तम पुस्तक अनेक सुन्दर चित्र हैं, रेशमी जिल्द बंधी हैं। मू० १।)

चन्द्र भवन—किस तरह मनुष्य सामाजिक बन्धनोंमें कर अपनी आत्माके विरुद्ध कार्य करने पर मजबूर किया जाता है, उसका कैसा भयङ्कर परिणाम होता है। लड़कोंके ब्याहमें माता पिताकी ज़रा सी असावधानीसे कैसा भयङ्कर परिणाम हो सकता है ये बातें खूबीके साथ इस उपन्यासमें दिखलायी गयी हैं। मू० ॥।)

कार्यक्षेत्र—दामोदर बाबूके उपन्यासोंका बंगलामें कैसा आदर है यह मर्मज्ञ पाठकोंसे छिपा नहीं है। उनकी दो चार पुस्तकोंका हिन्दीमें अनुवाद हुआ है, जिसे हिन्दी पाठकों ने खूब पसन्द किया है। उन्हीं दामोदर बाबूका यह अद्भुत उपन्यास है, विषय नामहीसे प्रगट है। पढ़कर लाभ उठाइये। मू० १॥)

आंखकी किरकिरी—कवि सम्राट रवीन्द्र बाबूके प्रसिद्ध उन्यासका अनुवाद। मनुष्यके आन्तरिक भाव चित्रोंका उनके घात प्रतिघातोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। एक छोटेसे कुटुम्बका सादा सादा चित्र इतनी उत्तमतासे खींचा गया है कि पढ़ कर मुग्धहो जाना पड़ता है। मू० १॥=)

आदर्श हिन्दू—हम हिन्दू धर्ममें रहते हिन्दू रीतके खान पानके अनुसार सांसारिक कार्य करते हुए कैसे एक आदर्श हिन्दू गृहस्थ बन सकते हैं। इसी विषयको लेकर बहुत ही उत्तमताके साथ एक गृहस्थका गृह चरित्र दिखलाया गया है। मू० ३ भागोंका ३)

चित्रावली—बंगलाके कई सुप्रसिद्ध लेखकोंकी लिखी हुई ७ गल्पोंका अनुवाद। गल्पें बड़ी ही भाव पूर्ण और मर्मिक हैं इन्हें पढ़कर आप अवश्य प्रसन्न होंगे। मू० ||=)

प्रतिभा—यह पवित्र और सद्विचार पूर्ण ग्रन्थ है कि प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालक युवा, और वृद्धके हाथमें निःसंकोच भावसे दिया जा सकता है। मू० १)

माया—पवित्र वासनाओं और निर्मल उद्देशों पर किस तरह "माया" का आधिपत्य जम जाता है। मनुष्य किस तरह अपने कर्म पथसे दूर होकर माया फांसमें पड़कर अपने कर्त्तव्य से विमुख होता है। मू० ।)

संसार—श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्तका एक नामी उपन्यास विषय नामही से प्रकट है संसारकी घटनाओंका वर्णन पढ़ना हो तो अवश्य देखिये। मू० केवल १)

नाटक

बाजीराव—महाराष्ट्रवीर बाजीराव पेशवाके शरणागत पालन और वीरताकी अद्भुत घटनाके आधार पर तथा धर्म भक्ति, देश भक्ति और जाति रक्षाकी अनोखी घटनाओंसे पूर्ण नाटकका रसास्वादन करना हो तो इस नाटकको अवश्य पढ़िये। मू० १)

स्वतन्त्र यमुना—अंग्रेजी ढंग ढांचेसे स्त्री शिक्षाके पक्षपातसे हिन्दू धर्म और हिंदू रीति नीतिको किस तरहसे धक्का लग सकता है वह इस छोटेसे नाटकमें दिखलाया गया है। मू० ।)

उसपार—यह द्विजेन्द्र बाबूका नाटक है। इसमें आधुनिक समाजकी नीति धारा किस ओर जा रही है। इसमें वृद्ध भोला नाथकी स्नेहशीलता और उदारता, सरस्वतीकी अपूर्व आत्म बलि और कर्त्तव्य परायणता और सुन्नीका वेश्या होकर भी महानुभावता और चरित्र संशोधन शीलता पढ़कर आप मुग्ध हो जायंगे। मू० १)

चन्द्र गुप्त—मौर्य्यराजकुल भूषण चन्द्रगुप्त और उनके आमात्य कूट नीतज्ञ चाणक्यकी विद्वत्ता और उस समयके भारत की रीति नीति तथा यहांके धार्मिक, व्यापारिक और राजनीतिक अवस्थाका नाटक रूपमें द्विजेन्द्र बाबूने बड़ी विद्वतासे दर्शन कराया है। मू० १)

तारा बाई—इसमें राजपूतानेकी प्रसिद्ध वीर कन्या ताराबाई और उसके वीर पति पृथ्वीराजका अपूर्व चरित्र ग्रथित किया गया है। यह नाटक तुकान्त हीन पद्योंमें रचा गया है। मू० १)

दुर्गादास—स्वर्गीय द्विजेन्द्र बाबूकी वीर रचना। राठोर दुर्गादासके आदर्श चरित्रको लेकर इसको रचनाकी गई है। यह प्रभु परायणता और कर्त्तव्य पालनका दीप्त चित्र है। आत्म त्याग का एक सजीव इतिहास तथा स्वदेश भक्तिकी एक उज्ज्वल कहानी है। यह नाटक स्वदेश परायणता, पवित्रता, दया, क्षमा आदि सभी बातोंमें आदर्श है। मू० १)

नूरजहां—द्विजेन्द्र बाबूके सर्व श्रेष्ठ नाटकका अनुवाद। बादशाह जहांगीरकी सुप्रसिद्ध बेगम नूरजहांके ऐतिहासिक चरित्रकी भित्ती पर इसकी रचनाकी गई है। मू० १)

भीष्म—यह भी द्विजेन्द्र बाबूका एक पौराणिक नाटक है भीष्म पितामहका आदर्श चरित्र उनके पैदा होनेसे मृत्यु पर्यन्त

दिखाया गया है। इस अद्वितीय सत्यवादी, महापराक्रमी, दृढ़ और बाल ब्रह्मचारीका चित्र आंखोंके सामने आ जाता है। मू० १=)

मूर्ख मंडली—द्विजेन्द्र बाबूके प्रसिद्ध हास्य रसकी पुस्तक मनोरञ्जन और दिल बहलावके साथ साथ शिक्षा भी मिलती है। मू० ॥-)

शाहजहां—द्विजेन्द्र बाबूके नाटकोंकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। एक बंगलाके प्रसिद्ध समालोचक कहते हैं "हमारे साहित्य में संसारको दिखलाने योग्य जो दो चार चीजें उनमें यह एक है।" मू० ॥=)

सीता—द्विजेन्द्र बाबूके पौराणिक नाटकोंमें अति उत्तम, महारानी सीताके पवित्र चरित्रको अङ्कित करनेमें लेखकने बड़ी मार्मिकतासे काम लिया है। मू० ॥-)

भारतरमणी--द्विजेन्द्र बाबूके सामाजिक नाटकोंमें भारत रमणी में कुछ विशेषता है। सामाजिक जीवनका चरित्र तो इसमें दिखाया ही है साथ ही यह भी दिखाया है कि अंग्रेजी ढङ्गकी शिक्षाका भारतकी रमणियों पर क्या प्रभाव पड़ता है। और देशी शिक्षाका क्या। स्वतन्त्रता उनके लिये कहां तक हानिदायक है और उच्छृङ्खलता उनको कैसा कष्ट पहुंचा सकती है। मू० ॥=)

खांजहां—यह एक ऐतिहासिक नाटक है। "खांजहां" मालवा देशके एक स्वाभिमानी वीर सरदार थे। इतिहासमें इनका बहुत कुछ वर्णन आया है और इस नाटकमें उन्हींके जीवनका चित्र बहुत ही मार्मिकतासे खींचा गया है। मू० १=)

नेत्रोन्मीलन—मिश्र बन्धुओंकी अनूठी रचना। इस नाटक में पुलिसके हथकण्डों और अत्याचारोंका सच्चा चित्र खींचा

गया है। और यह दिखाया गया है कि वकील मुकद्मे कैसे चलाते हैं झूठे गवाह कैसे गढ़ते और दिन दहाड़े न्यायकी आंखों में कैसे धूल झोंकते हैं और किस प्रकार एक झूठा मुकद्मा बड़े से बड़े न्यायालयको भी धोखा दे सकता है। इसमें उर्दू, गंवारी तथा अन्य कितनी ही भाषाओंको नमूने मिलेंगे। मू० ।≡)

प्रफुल्ल—नाट्य सम्राट् महा कवि गिरीश चन्द्र घोषके सर्व श्रेष्ठ सामाजिक नाटकका अनुवाद। प्रफुल्ल पढ़ते समय हमारे स्वर्गके जैसे घरोंकी फूट, ईर्षा, स्वार्थ, दुर्वासना, मुकद्मे वाजी आदिके कारण जो आज दारुण दुर्दशा हो रही है उन्हींका करुण चित्र आपके सामने आवेगा। यदि आप चाहते हैं कि आपके घरोंमें दुर्व्यसन न घुसें, आपकी सन्तान सदाचारी हो. आपकी गृहणियां सच्ची देवियां हों-उनमें प्रेमकी पवित्र भावनाओंका विकास हो तो इस नाटकको अवश्य पढ़िये। और वाल बच्चों, स्त्री, पुरुष सभी को निःसंकोच होकर पढ़ने को दीजिए। मू० १≡)

रणधीर प्रेम मोहिनी—हिन्दीके प्राचीन लेखकोंमें ला० श्री निवास दासका नाम वहुत आदरणीय है। उन्हींका लिखा यह नाटक है। यदि आपको नाटकोंसे प्रेम है तो इस नाटकको जरूर पढ़िये। सच्चे प्रेमका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मू० ॥)

विवेकानन्द (नाटक)—स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिकाकी सार्वधर्म परिषद्की ओर से आमन्त्रित होकर भारत से गये और वहां हिन्दू धर्मका प्रचार किया, उसकी महत्ताका वहांके लोगोंपर प्रकाश डाला इसी विषयका इसमें बड़ी सुन्दरतासे चित्र खींचा गया है। देश भक्तिको पवित्र भावनाओंसे यह नाटक भरा हैं। पांच चित्र भी हैं। मू० १)

वीर पूजा—महाराष्ट्र केसरी श्री शिवाजी सम्बन्धी ऐतिहासिक नाटक। महाराष्ट्रोंकी वीरता, धर्मपरायणता तथा

देशभक्ति का अद्भुत चित्ताकर्षक घटनाओंसे पूर्ण तथा मोगल साम्राज्यके अधःपतनके मूल कारणों को बताता है। मोगल साम्राज्यकी भीतरी कमजोरियोंका समुज्ज्वल चित्र मू० १)

वीर चूड़ावत सरदार--भारत और विशेषकर राजपूताना वीरोंकी भूमि है। इसी वीरभूमिके एक सच्चे वीर पुत्र की सच्ची घटनाके आधारपर यह नाटक लिखा गया है। मू० ॥≈)

वैधव्यक कठोर दंड है या शान्ति ?--गिरीश बाबूके एक सामाजिक नाटक का अनुवाद। भारतीय आदर्शको गिराने-वाले, युरोपीय ढङ्ग ढांचेसे रहने तथा उनकी सामाजिक रहनकी भारतीय सभ्यताके साथ मिला भारतीय सभ्यताको मलयामेट करनेवाले तथा अंग्रेजी रङ्ग ढङ्गसे विधवा विवाहसे होनेवाली दुर्दशाका बड़ाही मार्मिक और हृदयको हिला देनेवाला चित्र खींचा गया है। मू० ॥≈)

आदर्श हिन्दू विवाह नाटक--हिन्दुओंकी पवित्र और आदर्श विवाह प्रथाकी आज कल कैसी मिट्टी पिलीद हो रही है, हिन्दू विवाह ऐसे पवित्र सम्बन्धका बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह ने समाजमें कैसा कैसा अत्याचार कर रखा है इसे बतानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। आदर्श हिन्दू विवाह नाटकमें इन्हीं कुरीतियोंका बड़ी ही मार्मिक भाषामें वर्णन किया गया है। पढ़कर आपको विवाह सम्बन्धी अनेक सामाजिक कुरीतियोंका दर्शन होगा पढ़िये और अवश्य पढ़िये मू० ॥)

बाबाका ब्याह—आदर्श हिन्दू विवाह नाटककी तरह इसमें बुढ़ापेके विवाहका बुरा परिणाम तथा उससे सामाजिक हानिका वर्णन है। मू० ।≈)

भीम प्रतिज्ञा--पं० जीवानन्दजी लिखित महाभारतके आधारपर स्टेज पर खेलने योग्य। मू० ॥)

स्त्री उपयोगी

उपदेश रत्नमाला—स्त्री पाठ्य पुस्तकोंमें परम उपयोगी पुस्तक बड़ी ही मार्मिकता और विद्वतासे एक महिलाने लिखी है। कन्याओंके लिये बड़ी उपयोगी मू० ॥)

गृह प्रबन्ध शास्त्र—हम लोगोंके गृहकी आजकल कैसी दुर्दशा है। घरमें रहना उठना, बैठना क्यों नहीं अच्छा मालूम होता? जरा ध्यानसे विचार किया जाय तो तुरत मालूम पड़ेगा कि प्रथम तो स्त्री शिक्षा न होना, दूसरे जो स्त्रियां किसी कदर पढ़ी लिखी हैं उन्हें गृह प्रबन्धका ज्ञान न होना। इस पुस्तकमें बड़ी योग्यतासे लेखकने घरोंको स्वर्ग तुल्य बनानेकी कैसी शिक्षा दी है उसे पढ़कर स्त्रियां बहुत लाभ उठावेंगी। मू० ॥)

गृहिणी कर्त्तव्य—इस एक ही पुस्तकको पढ़कर स्त्रियां अपने सब प्रकारके कर्त्तव्योंको भली भांति समझ सकती हैं। स्त्री पाठ्य पुस्तकोंमें अभी तक इसके टक्करकी दूसरी पुस्तक देखनेमें नहीं आयी। मू० १।=)

जेवनार—अब तक हिन्दीमें भोजन बनानेकी विधियोंपर जो पुस्तकें निकली हैं उनमें अधिकांशमें मांसादिका जिक्र आया है, जिसके कारण अनेक हिन्दुगृहिणियां उन पुस्तकोंको छू भी नहीं सकतीं। यह पुस्तक बिल्कुल निरामिष भोजियोंके लिये है। मू० केवल ।-)

देवीजोन—अर्थात् स्वतंत्रताकी मूर्ति। अपने जीवनकी बलि देकर फ्रान्सको पराधीनतासे मुक्त करनेवाली, जोन आफ आर्क" नामक प्रसिद्ध वीराङ्गनाका देशभक्ति पूर्ण अपूर्व जीवन चरित्र। मू० ॥)

नवनिधि—इसमें प्रसिद्ध गल्प लेखक श्रीयुक्त प्रेमचन्द जी की लिखी हुई ९ स्वतन्त्र गल्पें हैं। भाषा और भाव दोनोंकी दृष्टिसे अपूर्व हैं। इसमें की गल्पें स्त्रियोंके लिये बड़े महत्व की हैं। मू० ॥≈)

नारीनीति—इसमें स्त्रियोंके लिए उपयोगी और पद पदपर काम आनेवाली बहुत सी नीति सम्बन्धी बातें लिखी गई हैं। इसमें लड़कियोंका कर्त्तव्य, माताओंका कर्त्तव्य, स्त्रीका कर्त्तव्य, वंधुका कर्त्तव्य और गृहिणीका कर्त्तव्य ठीक ठीक बताया गया है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्रीको यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिये। मू० ॥≈)

पत्रांजली—यह "पत्रांजली" पति पत्निके बीचमें लिखी गई कई काल्पनिक चिट्ठियोंका संग्रह है। इस पुस्तकके पढ़नेसे पत्र लिखनेके साथही साथ स्त्रियोंको बहुतसी उपदेशमय शिक्षायें भी मिलेंगी। बड़ी ही सरल भाषामें पत्रद्वारा शिक्षा दी गई है। मूल्य ॥)

वनिताविनोद—स्त्रियोंके उपयोगी कई निबन्ध हिन्दीके प्रसिद्ध २ लेखकोंके लिखे, इसमें संग्रह किये गये हैं। इसमें स्त्री शिक्षा सम्बन्धी बहुत सी उपयोगी बातोंका समावेश है। मू० ॥≈)

वनिताविलास—पं महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित कई इतिहास प्रसिद्ध स्त्रियोंका जीवन चरित बड़ी सरल भाषामें लिखा

गया है। कन्याओं और बधुओंके लिये बड़ी उत्तम और उपयोगी पुस्तक है। मू० ।≈)

माताका उपदेश—विषय नाम ही से प्रकट है। माताने कैसी सरल भाषामें अपनी पुत्रीको उसके आनेवाली जिन्दगीके प्रायः सभी स्टेजोंकी शिक्षा दी है। मू० ।)

व्यंजन विधान-आपने पाक शास्त्रकी बहुत पुस्तकें देखी होंगी परन्तु ऐसी सर्वांग सुन्दर पुस्तक आपकी नजरसे न गुजरी होगी। मंगाइये, इसके लिखे अनुसार तरकीवोंसे भोजन पकाकर खाइये। स्वास्थ्यके साथ २ स्वाद भी उठाइये।० मू ॥)

विधवा कर्त्तव्य—अपने विषयकी सबसे पहली पुस्तक। आजकल हिन्दू समाजमें विधवाओंकी कैसी दुर्दशा है उनके और समाजके लिए उनकी जिन्दगी व्यर्थ सी हो गई है। परन्तु नहीं, इस पुस्तकसे आपको मालूम होगा कि अगर लोग चाहें तो उन वहिनोंकी जिन्दगी हम लोगोंसे कहीं उपयोगी हो सकती है। और हमारी वहिनों व माताओंको इस पुस्तक द्वारा मालूम होगा कि अपनेको समाजके लिए कितनी उपयोगी वना सकती है। हरएक घरमें इस पुस्तकको रखना चाहिए। मू० ॥)

सर्वोपयोगी पुस्तकें

अस्तोदय और स्वावलंबन--गिरना, उठना और अपने पैरों खड़ा होना। विषय नाम हीसे प्रकट है। विद्यार्थियों तथा सर्व साधारणको स्वावलंवनकी शिक्षा देती है। अंग्रेजीकी मशहूर पुस्तक "सेल्फ हेल्प"के ढंगकी तथा भारतीय ढङ्गसे लिखी गई है। इसे पढ़कर आप केवल स्वावलम्वी ही न वनेंगे, किन्तु

अपने धर्ममें दृढ़ रहने वाले और अपने देश तथा साहित्यपर श्रद्धा रखनेवाले सच्चे भारतीय भी बनेंगे। मू० १॥)

आदर्श जीवन--अंग्रेजीकी प्रसिद्ध पुस्तक "प्लेन लीविङ्ग ऐंड हाई थिंकिङ्ग"के आधारपर। हिन्दी संसारने इस पुस्तकको कैसा पसन्द किया है इसका प्र माण यही है कि केवल सालभर हीमें दूसरा संस्करण हुआ है और यू० पी० के शिक्षा विभागने इस पुस्तकको अध्यापकोंकी हिन्दीकी विशेष योग्यताकी जो परीक्षा नियत की है उसमें कोर्स किया है। पढ़िये और इसकी शिक्षाओंसे मनोरंजनके साथ लाभ उठाइये। मू० १)

आत्म शिक्षण--हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक मिश्र बन्धुओंकी लेखनी द्वारा लिखित अपने विषयकी बड़ी अपूर्व पुस्तक। "प्रत्येक मनुष्य धनी, महान् अथवा बुद्धिमान नहीं हो सकता। किन्तु सदाचारी हो सकता है" सदाचार शिक्षाकी अति उत्तम पुस्तक मू० १)

कर्मक्षेत--निरुद्यमी, उत्साहहीन और हत भाग्य लोगोंको कर्मवीर बनानेकी शिक्षा दी गई है। उदाहरणमें अनेक महा पुरुषोंके चरित्र दिये गये हैं। मू० ॥~)

मेरा व्यापक शिक्षण--महात्मा बुकर टी० वाशिङ्गटनके नामसे प्रायः सभी हिन्दीके साहित्य रसिक अच्छी तरह परि-चित हैं। उन्हीं महात्माके जीवन चरित्रका यह उत्तरार्द्ध है। महात्मा वाशिङ्गटनने निग्रो लोगोंकी दुर्दशा, शिक्षाकी कठिनाइयां और निजके शिक्षा सम्बन्धी अनुभवका वर्णन इसमें किया है। हम लोगोंके लिये बड़ी उपयोगी तथा लाभकारी पुस्तक है। मू० १।~)

मितव्यय--अगर आप मितव्ययी, संयमी और धर्मात्मा बनना चाहते हैं। यदि आप सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक

तथा राष्ट्रीय आदि सभी दृष्टियोंसे धन और उसके सदुपयोगोंका विचार करना चाहते हों तो इसे अवश्य पढ़िये। मू० १)

सफलता और उसके साधनके उपाय—सफलता की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको इसे पढ़ना चाहिये। स्कूलोंमें, लायब्रेरियोंमें इनाममें देनेके लिये बहुत उपयोगी है। मू० ॥।)

कर्म पथ—हिन्दी संसारमें अपने रंग, ढंग और विषयकी प्रथम पुस्तक। यह उपन्यास क्या है, जीता जागता आधुनिक राज नीतिका चित्र है। आधुनिक भारतीय राजनीतिको लेकर यह उपन्यास लिखा गया है। मूल पुस्तक बंगलामें ३ री बार छप रही है। बँगलामें इस पुस्तककी बड़ी प्रशंसा हुई है। पाठकों को इस पुस्तकसे राजनीतिके रहस्यके साथ साथ कितनी ही सामाजिक त्रुटियोंका पता चलेगा। पुस्तक पढ़कर मनन करने तथा संग्रह करने योग है। मू० २)

सिद्धी—जीवनको सिद्ध बनाकर मनुष्यको अभ्युदयकी ओर लगानेवाले, भ्रान्त धारणाओंके वश छोटी छोटी भूलोंसे होनेवाली बड़ी बड़ी हानिओंसे बचानेवाले, नैतिक, मानसिक और शारीरिक उन्नतिके महत्वको बतलानेवाले कतिपय उत्तमोत्तम विचार आपको मिलेंगे। मू० ॥)

इटलीको स्वाधीनता—सन् १८१५ से १८७० तक इटाली निवासियोंने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये जो द्वन्द्व किया, जो चेष्टायें कीं, जो कष्ट सहन किये, जिस तरह स्वतन्त्रता प्राप्तकी उन्हीं बातोंको बड़ी ओज पूर्ण भाषामें लिखा गया है। मू० ॥)

एनी बिसेन्टका भाषण—कांग्रेसके सभापतिके पदसे एनी बिसेन्टने बड़ा महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। उसी

व्याख्यानका हिन्दी अनुवाद। महत्वकी, संग्रहयोग्य पुस्तक है। मूल्य ।≈)

कलकत्तेमें स्वराज्यकी धूम--स्वराज्य वादियोंके लिए कामकी चीज़। मूल्य ।)

कांग्रेसका इतिहास--इसमें भारतीय राष्ट्रीय महा सभाका पूरा इतिहास है। कब और किन किन कारणोंसे इसकी उत्पत्ति हुई, कौन कौन नेता इसमें शामिल हुए। इसका किस तरह प्रभाव बढ़ा। इससे क्या क्या उपकार हुआ, आदि सब बातें लिखी गई हैं। मूल्य ॥)

बीसवीं सदीका महाभारत-बंगाल के प्रसिद्ध देशभक्त विनय कुमार सरकार द्वारा लिखित। इसमें बहुतसी सीखने और जानने योग्य वस्तुयें हैं। मूल्य ॥)

स्वराज्य पर मालवीय-माननीय पं० मदनमोहन मालवीयके उन लेखों और व्याख्यानोंका संग्रह जो उन्होंने स्वराज्यके सम्बन्धमें समय समय पर प्रकट किये हैं मूल्य ।)

स्वराज्य पर रवीन्द्र--स्वराज्यके प्रश्न पर हमारे विद्वान नेता और महात्मा रवीन्द्रकी क्या राय है, और उन्होंने इस विषय पर अपनी वक्तृताओंमें जो कुछ कहा है वह इसमें दिया गया है। हरएक देश प्रेमीके पढ़ने योग्य पुस्तक है। मूल्य १)

भूकंप--इस पुस्तकमें भूकंपका पूरा हाल लिखा है। भूकंप क्यों होता है, कब होता है, कैसे होता है, इत्यादि बातें अच्छी तरहसे समझाई गई हैं। बीच बीचमें कई नकशों और तस्वीरों द्वारा यह विषय बहुत ही स्पष्ट और सरल कर दिया गया है। मूल्य १।≈)

सृष्टि विज्ञान--यह सृष्टि कैसे और क्यों कर हुई अथवा इसका आरम्भ कैसे हुआ। इस विषयमें प्रायः सभी

देश और सभी विद्वानोंका मतभेद है। आजकल डारविन साहब-का सिद्धान्त—क्रमागत सृष्टि विज्ञानका बहुत मान्य है। इस पुस्तकमें सृष्टिकी उत्पत्ति पर हमारे आर्य ऋषि मुनि और महात्माओंके विचार लिखे गये हैं। साथ ही साथ जगह जगह युरोपीय विद्वानोंके विचारोंका भी खण्डन मण्डन किया है जिससे पुस्तक बहुत मननीय हो गई है। मूल्य २)

सर जगदीशचन्द्र वसु के आविष्कार-इसमें समस्त संसार के वैज्ञानिकोंमें अपना सिर ऊंचा करने वाले सर जगदीश चन्द्र वसुका जीवनचरित ही नहीं दिया गया है, बल्कि उनके अद्भुत आविष्कारोंका भी संक्षिप्त विवरण है। देखिए प्रोफेसर वसुके वैज्ञानिक अविष्कारने संसारमें कैसी हलचल मचा दी है। इन्होंने साबित कर दिया है कि मनुष्य और इतर प्राणियोंकी तरह पेड़ पल्लव और पौधे भी जीते हैं मरते हैं। बीमार होते हैं और अच्छे होते हैं। केवल पेड़ ही नहीं जड़ धातु और पत्थरोंमें भी यह शक्ति है। अस्तु इन्हें जड़ कहना अन्याय है। इस पुस्तकमें इन सब बातोंका हाल लिखा है मूल्य ।≈)

कृषिकोष—कृषि सम्बन्धी सब बात बहुत खुलासा तौर पर और समझा कर लिखी गई है। हल, बैल और जमीन कैसी होनी चाहिये किस चीजको किस समय किस तरह बोना चाहिये, कैसी खाद देनी चाहिये अलावा इसके चीनी, तिल, कपास आदि की खेती और मवेशियोंकी बीमारी तकका हाल इसमें लिखा है। मूल्य ॥≈)

हृदय तरङ्ग—महात्मा जेम्सएलनका नाम सदाचार सम्बन्धी पुस्तकोंके लिखनेमे बहुत मशहूर है उन्हींकी एक पुस्तक-का अनुवाद। सदाचार सम्बन्धी अनेक शिक्षायें आपको इसमें मिलेगी। मू० ।-)

जीवनके आनन्द—अंग्रेजीकी बहुत ही प्रसिद्ध पुस्तक "प्लेजर आफ लाइफ"के आधारपर भारतीय रंग, ढङ्ग और नीतिके अनुसार लिखी गई है। जीवनको आनन्दमय बनानेकी अनेक उपयोगी शिक्षायें आपको मिलेंगी। पुस्तक पढ़कर आप अवश्य प्रसन्न होंगे मू० १)

जीवनके महत्व पूर्ण प्रश्नोंपर प्रकाश-महात्मा जेम्स एलनकी एक प्रसिद्ध पुस्तकके आधार पर भारतीय ढङ्गसे लिखी गई है। इस देशके शिक्षितोंको अवश्य पढ़कर लाभ उठाना चाहिये। मू० ॥)

जीवन और श्रम—परिश्रम करनेसे घबड़ाने वाले और परिश्रम करनेको बुरा तथा शरमकी बात समझनेवाले भारतवासियोंके लिये संजीवनी शक्ति की दाता है। इस पुस्तकमें इस देशके बहुतसे कर्मवीरोंका उदाहरण देकर पुस्तक परम उपयोगी बना दी गई है। मू० १॥)

निबन्ध नवनीत—पं० प्रताप नारायण जी मिश्रसे प्रायः सभी हिन्दी पढ़े लिखे सज्जन अच्छी तरह परिचित हैं। साहित्य आकाशमें आपका कैसा मान है उसे लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती। आप हीके लिखे अनेक निबन्धोंका संग्रह है। भाषा बड़ी रसदार है। साहित्य दृष्टिसे पुस्तक बहुत उपयोगी है। ये निबन्ध आपको हंसावेंगे, रुलावेंगे, आपकी सच्ची दशाका दिग्दर्शन करावेंगे। मू० ॥)

प्रबन्ध पारिजात—विद्यार्थियोंको निबन्ध लिखनेकी शिक्षा देनेवाली पुस्तकोंकी हिन्दीमें कितनी कमी है यह प्रायः सभीको मालूम है। यह निबन्ध लेखन कलाकी उपयोगी पुस्तक है। मू० ॥)

भारतीय युवाओंकी शरीर रक्षा—जिस भारतको महा वीर, भीष्म, अर्जुन, महाराणाप्रताप और शिवाजी सरीखे महा पुरुषोंके पैदा करनेका गौरव है आज उसी भारतके नवयुवकोंकी कैसी दशा है यह बात लिखनेकी नहीं है। हमलोग व्यायाम, इत्यादि छोड़कर अपनी शारीरिक अवनतिको कहांतक बढ़ा चुके हैं अब उसे कैसे सुधार सकते हैं, इसका सुधार आप चाहते हैं तो इसे पढ़िए और नवयुवकोंको पढ़ाइये। मू० ।-)

मानव जीवन—सदाचार और चरित्र सम्बन्धी अनेक अङ्गरेजी, मराठी, गुजराती और बंगला पुस्तकोंके आधार पर इस ग्रन्थकी रचना हुई है। सदाचारकी शिक्षा देनेके लिये और सच्चे मनुष्योंकी सृष्टि करनेके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। मूल्य १।≈)

स्वदेश--रवीन्द्र बाबूकी एक निबन्ध मालाका अनुवाद। इन निबन्धोंको पढ़कर आपको अनेक शिक्षाए मिलेंगी। मू० ॥≈)

स्वावलम्बन—इस देशके लिये सबसे बढ़कर आजकल इस बातकी शिक्षाकी जरूरत है कि लोग, अपने पैरोंपर खड़ा होना, अपने भरोसे अपनी उन्नति करना, अपनी शक्तिपर विश्वास करना सीखें। इन्हीं विषयोंकी अंग्रेजी प्रसिद्ध पुस्तक "सेल्फ-हेल्प"में शिक्षा दी गई है। जिसकी लाखों प्रतियां प्रति वर्ष खपती हैं। उसी पुस्तकके आधारपर भारतीय उदाहरणों सहित यह पुस्तक लिखी गई है। मू० १॥)

साहित्य सुमन--पं० बाल कृष्णजी भट्ट सरीखे उद्भट्ट लेखकके लेखोंकी प्रशंसा क्या की जा सकती है। उन्हीं महात्माके बहुतसे उत्तमोत्तम लेखोंका संग्रह है। मू० ॥)

सुखी सन्तान--लेखकने पश्चिम तथा पूर्वके सर्व श्रेष्ठ वैद्यों और विद्वानोंके अनुभवोंके आधारपर वे उपयोगी बातें

से रोगोंकी चिकित्सा उपवास ही है। जिन छोटे २ रोगोंके लिए आप डाक्टर वैद्योंके यहां दौड़ते फिरते हैं उनसे आप इसके अनुसार उपवास कर शीघ्र ही मुक्त हो जायंगे। ऐसे रोगोंमें भी जिनके कारण आप जीवनसे निराश हो चुके हैं इस पुस्तकके अनुसार चलनेसे आपको लाभ होगा। मू० ॥≈)

प्राकृतिक चिकित्सा—इसमें सब प्रकारके रोग होनेके कारण, उनके विना कौड़ी पैसेके प्राकृतिक इलाज बताये गए हैं। ठंढे पानीके टबमें बैठ कर कटि स्नान करना, मेहन स्नान करना, वफारा लेना, कोयलेकी आंचसे पसीना लेना, धूप स्नान करना, स्वच्छ जलको अधिक परिमाणमें पीना, लम्बी सांसे लेना, व्यायाम तथा प्राणायाम करना, स्वच्छ वायुका सेवन करना, आदि आदि उपाय बड़े अच्छे ढंगसे इसमें बतलाये गये हैं। प्रत्येक गृहस्थके घरमें रहने योग्य पुस्तक है। मू० ।≈)

प्रासपुञ्ज।

-: रचयिता :-

श्रीनारायणप्रसादजी शर्मा "बेताब"

हिन्दी साहित्यमें अपने ढंगकी यह पहिली पुस्तक है। हिन्दी कवियों और उर्दू शाइरोंको इसके पाठसे चार लाभ हो सकते हैं।

क्योंकि इसमें

१—प्रास, काफ़िया, तुक, तुकान्त क्या वस्तु है? कैसे बनता है? शुद्ध अशुद्धकी पहचान क्या है? उर्दूका तरीक़ा, हिन्दीकी रीति क्या है? इत्यादि प्रश्नोंका सरल उत्तर मिलेगा।

२—छः हज़ार (६०००) से अधिक क़ाफ़ियोंका कोश इस तरह दिया है कि जिस शब्दका प्रास चाहिये फ़ौरन मिल सके।

३—शब्दका लिङ्ग अर्थात् मुज़क्कर मुअन्नसका ज्ञान—शब्दके साथ ही मालूम हो जाता है।

४—पिङ्गलके प्रसिद्ध प्रसिद्ध ५० से अधिक छन्दोंके नियम स्वरूप और उदाहरण सहित लिखे हैं। मूल्य १)

विरहिणी ब्रजांगना

कैसे भूला जा सकता है जो कुछ देखा सुना कभी ?
अङ्कित है राधा के मन में वह अतीत का दृश्य सभी ॥

"मधुप"

श्रीहरिः

विरहिणी ब्रजांगना
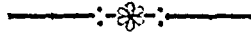
वंगीय कविश्रेष्ठ माइकेल मधुसूदनदत्त कृत

ब्रजांगना काव्य का भावानुवाद
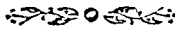
अनुवादक—"मधुप"

प्रकाशक

साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)

संवत् १९७७

तृतीयावृत्ति] [मूल्य ।)

श्रीः

विज्ञापना

हिन्दी में बँगला की बहुत सी पुस्तकों के अनुवाद निकल चुके हैं किन्तु अभी तक किसी पद्यात्मक पुस्तक का अनुवाद नहीं निकला था। आज बंगाल के विख्यात कवि माइकेल मधुसूदनदत्त के व्रजांगना नामक काव्य का पद्यानुवाद भी मातृभाषा के चरणों में अर्पित हुआ। हिन्दी के बहुत से प्राचीन और अर्वाचीन कवियों ने इस विषय पर कविता की है। पाठक एक वार वंगीय कविश्रेष्ठ की प्रतिभा का चमत्कार भी इसी विषय पर देखें। विश्वास है, प्रणयोन्मत्ता विरहिणी व्रजांगना का करुणक्रन्दन उन्हें एक वार अवश्य ही द्रवित कर देगा।

लेखक में अनुवाद करने की योग्यता न होने पर भी उसने जो यह साहस किया है, इसके दो कारण हैं। एक तो इस पुस्तक की कविता इतनी मधुर है कि उसने लेखक को विवश किया कि किसी तरह इसका रसास्वादन हिन्दी-प्रेमियों को भी कराया जाय। दूसरा कारण यह है कि इस ओर भी शिक्षित समुदाय का ध्यान आकर्षित हो और भिन्न भिन्न भाषा के कवियों की रचनायें अनुवादित होकर मातृ-भाषा की श्रीवृद्धि करें। यदि इस विषय में कुछ भी सफलता हुई तो लेखक, हज़ार त्रुटियाँ रहते हुए भी, अपनी इस चपलता को उचित ही समझेगा।

अनुवादक

श्रीगणेशाय नमः

विरहिणी व्रजांगना

वंशी-ध्वनि

[१]

श्री व्रजरत्न प्राणधन हरि को, चल सखि ! चल, देखें सत्वर,
हैं कदम्ब के तले नाचते, वेणु बजाते राधावर।
घनश्याम की ध्वनि सुन क्यों कर मैं चातकी धैर्य्य धारूँ ?
क्यों न प्राण प्यारे के ऊपर अपना तन, मन, धन वारूँ ?

[२]

मान जाय, कुल तजे भले ही, मानस-तरणी पावे कूल ;
चल सखि ! डूब प्रेम-जल-तल में सेवें वह पदपंकज-मूल।
घूम रहा है मानस-सर में हंस कमल-वन के भीतर,
डूब रहेगी जल में कैसे नलिनी प्रिय को वञ्चित कर ?

[३]

जो जन जिसे प्यार करता है जाता है वह उस के पास,
मदन राज के विधि-लंघन में कर सकता है कौन प्रयास ?
करूँ उपेक्षा यदि मैं उसकी होगा कुपित मनोभव वीर,
शम्बरारि-शर सहे, कौन है त्रिभुवन भर में ऐसा धीर ?

[४]

सुन सखि ! फिर वह मनोमोहिनी माधव-मुरली बजती है,
कोयल अपनी कण्ठ-कला का गर्व सर्वथा तजती है।
मलयानिल मेरे कानों में उस ध्वनि को पहुँचाती है,
सदा श्याम की दासी हूँ मैं, सुध-बुध भूली जाती है॥

[५]

जलद-ध्वनि सुन मत्त-मयूरी स्वयं नाचती है तत्काल,
फिर मैं काटूँ क्यों न आज निज बन्धनमय लज्जा का जाल।
फिरती है सानन्द दामिनी सदा संग लेकर घन को,
राधा कैसे तज सकती है राधा-रमण प्राण-धन को ?

[६]

मंजु कुञ्ज में जहाँ श्याम हैं, खिले सुमन मन भाये हैं,
मेरे प्रिय को देख धरा ने फूल-जाल फैलाये हैं।
हा ! कैसी लज्जा है, धिक है, जो षड्ऋतु को वरती है—
वह रमणी मेरे प्रिय-धन पर मोहित हो कर मरती है !

[७]

चल सखि ! शीघ्र चलें जिस में फिर गमा न बैठें मोहन को,
जी सकती है कब तक फणिनी खोकर मणिरूपी धन को ?
सरिता तो देशों देशों में फिरती है सागर के अर्थ,
त्याग प्रेम-सागर निज नागर धिक जो बैठ रहूँ मैं व्यर्थ !

[८]

चन्द्रोदय से पुलकित हो कर रजनी हास्यमयी होती,
निज सुधांशु-निधि पाकर क्या मैं रहूँ अँधेरे में रोती ?
श्रीवृजरत्न प्राण-धन हरि को चल सखि, चल देखें सत्वर,
हैं कदम्ब के तले नाचते, वेणु बजाते राधावर ॥

[९]

मधु कहता है वृजवाले ! उन पद-पद्मों का कर के ध्यान—
जाओ जहाँ पुकार रहे हैं श्रीमधुसूदन मोद-निधान।
करो प्रेम-मधु-पान शीघ्र ही यथासमय कर यत्न-विधान,
यौवन के सु-रसाल योग में काल-रोग है अति बलवान !

जलधर

[१]

देख देख सखि ! नभ की शोभा, गन्धवाह-वाहन घनराज,
प्रेम-मग्न चपला युत कैसा मन्द मन्द फिरता है आज।
इन्द्रचाप के रम्य रूप में मेघ-पताका के ऊपर—
रत्नखचित यह काम-केतु-सा लगता है कैसा सुन्दर!

[२]

लज्जा से ग्रहपति मानों निज मूँद रहा युग लोचन है,
मदनोत्सव में सेवन करता रति-युत रति-पति को घन है।
हँसती है चपला पल पल में निज प्राणेश्वर को ले कर,
आनन्दित करती है उस को गाढ़ालिंगन दे दे कर॥

[३]

है नाचती मयूरी मुदयुत कर के केका शब्द विशेप,
थीं नाचती गोपियाँ वन में मुझे और हरि को ज्यों देख।
व्योम-मार्ग में जलद-किंकरी चातक-वधू विचरती है,
जीवनदाता धीर धनी की घनी जय ध्वनि करती है॥

[४]

हाय ! श्याम-घन आज कहाँ हैं, नाथ ! मुझे क्या भूल गये ?
रोती है तव प्रिया दामिनी दुख पाकर यह नित्य नये।
रत्न-मुकुट निज सिर पर रक्खे आओ विश्वालोकिन कर,
दिखलाई देता है जैसे दिनकर स्वर्णोदय गिरि पर॥

[५]

देख अलौकिक रूप तुम्हारा मानी घन रोकर भागे,
इन्द्र-धनुष छिप जाय लाज से, गगन मलिनता को त्यागे।
हँसता हुआ सूर्य्य फिर आकर फैलावे प्रकाश भारी,
राधा के सुख से सत्वर ही हो फिर सुखी धरा सारी ॥

[६]

नाचेंगी सब गोकुल-वधुएँ करती हुई किंकिणी-नाद,
ज्यों मलयानिल से सरसी में नृत्य-निरत नलिनी साह्लाद।
विठलाना तुम इस दासी को निज समीप कुसुमासन पर,
यह अधीन अनुचरी तुम्हारी, तुम हो इसके नव जलधर

[७]

हाय ! सफल होगी क्या आशा, पाओगे क्या प्रिय को प्राण !
पाती है वियोगिनी रति क्या रति-पति को कर यत्न-विधान।
मधु कहता है हे सति कामिनि ! आशा मायाविनी नितान्त,
करती है मरीचिका किस की तृषामयी तृष्णा को शान्त !

यमुना तट

[१]

मृदु कल रव से क्या कहती हो, यमुने ! मुझ से कहो, कहो,
रोते हैं क्या सिन्धु-विरह से आज तुम्हारे प्राण अहो !
यदि ऐसा है तो राधा से मन की कथा कहो सारी,
नहीं जानती हो क्या, वह भी है विरहानल की मारी !

[२]

सूर्य्य सुते ! गिरिराज-भवन में तुम्हें पालती घनावली,
जन्मी हो तुम राज-वंश में, यथा सुमन में सुरभि भली।
फिर राधा से लज्जा कैसी, उचित तुम्हें क्या है यह भी ?
नहीं जानती हो तुम क्या यह—राजनन्दिनी है वह भी ?

[३]

आओ, सखि ! हम-तुम दोनों ही बैठें बस, एकान्त यहाँ,
करें मनोज्वाला दोनों की हम दोनों कुछ शान्त यहाँ।
फिरती हूँ तव तट पर सहसा मैं तव अतिथि अनाथा हूँ,
कल्लोलिनि ! दृग-जल से भींगी, गाती प्रिय-गुण-गाथा हूँ॥

[४]

फेंक दिये हैं मैं ने सौ सौ रत्नाभूषण रम्य नितान्त,
बिखराई फूलों की माला करने को मन का दुख शान्त।
इन सब की अब और साध क्या रखती है राधा मन में ?
करती हूँ बस, भस्म-लेप अब चन्दनचर्चितइस तन में !

[५]

त्यागे सब श्रृङ्गार किन्तु जो लगा भाल में है सिन्दूर—
सधवा के विचार से मैं ने नहीं किया है उस को दूर।
किन्तु आज सीमन्त देश में ज्वाल-तुल्य वह जलता है,
अपने मन की बात छिपाते बढ़ती विषम विकलता है॥

[६]

हे प्रवाहिनी, शशिमुखि ! आओ, बैठो मेरे अंचल में,
कमलवासिनी कमला जैसे बसती है सहस्रदल में।
मैं अबला तव कण्ठ पकड़ कर रोऊँ क्षण भर, होऊँ शान्त,
आओ सखि ! आओ, हम दोनों बैठें तनिक यहाँ एकान्त॥

[७]

है कैसा आश्चर्य कि तुम से करती हूँ कितनी विनती—
किन्तु नहीं सुनती हो तुम कुछ, है मेरी अब क्या गिनती !
हा ! राधा को भाग्य-दोष से आज भोगने थे ये भोग्य,
तुम भी उसे घृणा करती हो ? स्वजनि ! यही क्या तुमको योग्य ?

[८]

हाय ! तुम्हें क्या दोष भाग्यवति ! मैं भिखारिनी, तुम रानी,
हर-प्रिया संगिनी तुम्हारी मन्दाकिनी सुधा सानी।
अर्पण करती है सागर को वही तुम्हारा पंकज-पाणि,
गमन उसी के संग तुम्हारा सिन्धु-सदन में है कल्याणि !

[९]

मृदुहासिनी निशा जब आती सजती हो तुम सुन्दर साज,
तारे हार रूप होते हैं, तारापति बनता है ताज !
कुसुम-दाम कवरी में रख कर सजधज कर यों बिना प्रयास—
द्रुत गति से विनोदिनी कामिनि ! जाती हो तुम प्रिय के पास॥

[१०]

किन्तु हाय ! इस वृजमण्डल में आज कौन है राधा का ?
कर सकता अनुमान कौन है उसके मन की बाधा का ?
दिन डूबा, सूर्य्यास्त हुआ है, त्रिभुवन तम में मग्न यथा,
किन्तु व्यथा नलिनी को जैसी होगी वैसी किसे व्यथा ?

[११]

हे युवती ! तुम उच्च और मैं नीच, किन्तु कुछ करो विचार,
पर-दुख से जो दुखी नहीं है निन्द्य जन्म उसका निस्सार।
मधु कहता है, राधे ! तुम क्यों रोती हो यों बारंबार,
होता है किस के मानस में सुखद सदयता का संचार !

मयूरी

[१]

शिखिनि ! विरसवदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे ?
तेरे प्राण न देख श्याम को रोते हैं क्या मुझ जैसे ?
तू भी है दुखिया क्या, आहा ! उन पर कौन नहीं मरता ?
किसे नहीं शशि शीतल करता, किस का हृदय नहीं हरता ?

[२]

आओ सखि, हम तुम दोनों ही मौन परस्पर कण्ठ धरें,
तुम घन का, मैं मनमोहन का, निज निज धन का ध्यान करें।
क्या तेरा होता वह यद्यपि देती है तू मन घन को,
पावेगी अब और हाय ! क्या राधा राधा-रंजन को ?

[३]

गर्जन करता हुआ गगन में जलधर क्या ही छवि पाता,
स्वर्ण-शक्र-धनु रत्नखचित तनु है किरीट-सा बन जाता !
विद्युद्दाम पहनकर विधि से शोभित होता है ऐसे—
मुकुलित लता गले लिपटा कर अति सुन्दर तरुवर जैसे ॥

[४]

किन्तु शिखिनि ! मम श्याम रूप-सम भला कहाँ छवि भाती है ?
अहो ! धन्य वह रूप-माधुरी किस का चित न चुराती है ?
देखा है जिस की आँखों ने मोहन-रूप बिना बाधा—
वही जान सकता है क्यों कर कुलकलंकिनी है राधा !

[५]

शिखिनि ! विरसवदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे ?
तेरे प्राण न देख श्याम को रोते हैं क्या मुझ जैसे ?
तू भी है दुखिया क्या, आहा ! उन पर कौन नहीं मरता ?
कवि मधु है इस सत्य कथन का मन से अनुमोदन करता॥

पृथ्वी

[१]

जगज्जननि वसुधे ! जग-विश्रुत दयामयी तुम हो एकान्त,
रख कर सीता को तुमने ही की थीं उनकी ज्वाला शान्त।
निर्दय होकर रावणारि ने था जब उनका त्याग किया—
हो कर द्विधा तुम्हीं ने उन को गोदी में था उठा लिया !

[२]

देवि ! राधिका है वियोगिनी, तुम क्यों उस पर हो प्रतिकूल ?
श्याम-विरह में मरती है वह, रहीं उसे तुम कैसे भूल !
जलती है अभागिनी अबला, कौन हरे उसकी ज्वाला ?
हाय ! तुम्हारी कौन रीति यह ? तुमने उसे भुला डाला !

[३]

शमी-हृदय में अग्नि है, सही, पर क्या वह विरहाग्नि कराल ?
ऐसा हो तो यौवन, जीवन दोनों वह खो बैठे हाल।
विरह जलाता है दोनों को, देखो मुझ को नेक निहार,
दावानल से वनस्थली-सम जलती हूँ मैं सभी प्रकार !

[४]

धरणि ! जानती हो, तुम भी तो करती हो ऋतुपति को प्यार,
उसके शुभागमन में हँस कर सजती हो कितने शृंगार !
पति को पाकर रति-सम कितने रखती हो अलकों में फूल,
सोचो, किन्तु विरह-दुख उसका, हो जाती हो शुष्क समूल !

[५]

लोक कहे—राधा कलंकिनी, तुम क्यों उसे घृणा करती ?
अम्बर, सागर दो वर पाकर फिर भी तुम मधु को वरती !
हैं बस श्याम प्राणपति मेरे, खो बैठी हूँ जिन्हें धरे !
होगी आज न मेरे दुख में क्या तुम भी दुःखिनी अरे !

[६]

हे महि ! इन अबोध प्राणों को बतलाओ, रक्खूँ कैसे ?
सिखलाओ तुम मुझे, मधु बिना जीवित रहती हो जैसे ?
मधु कवि कहता है हे सुन्दरि ! धैर्य धरो, है यत्न यही,
आता है मधु स्वयं समय पर पाती है मधु-दान मही ॥

—

प्रतिध्वनि

[१]

कौन, कौन, तुम हो युवती-सी ? श्याम, श्याम, कर रही पुकार;
करती है अनाथिनी राधा करके जैसे हाहाकार !
निर्भय हो कर यहाँ विजन में कह जाओ मुझसे सब हाल,
किसे बाँधता नहीं जगत में श्याम-प्रेम-गुण महा विशाल ?

[२]

देती है तन मन सुधांशु को फुल्ल कुमुदिनी करके प्यार,
देकर सुधा चकोरी को वह करता है निशि-संग विहार !
पर क्या इस से कुमुद्वती है करती कभी अरुण अँखियाँ ?
नहीं, चकोरी और यामिनी हैं दोनों उस की सखियाँ ॥

[३]

कौन पुकार रही हो तुम, अब नभोनन्दिनी, जान लिया,
गिरिनिवासिनी, वनविहारिनी, तुम्हें खूब पहचान लिया ।
निराकार-भारति, रस-रङ्गिणि, अविदित हो तुम भला कहाँ ?
राधा को लेकर रोने को आई हो क्या आज यहाँ ?

[४]

सखी ! जानती हूँ, तुमको है मेरे प्रिय पर प्रेम पुनीत ;
सीख कुञ्ज में श्याम-गान तुम गाती थी मुरली पर गीत ।
राधा, राधा, कह कर जब जब थे मुझको पुकारते नाथ—
राधा, राधा, कह कर तब तब देती थी तुम उनका साथ ॥

[५]

होती थी जिस व्रज में पहले संगीत-ध्वनि वारंवार,
जो वृन्दावन नन्दन वन था आज वहीं है हाहाकार !
राधा अब कितना रोती है, सखी ! क्या कहूँ मैं वह बात,
है वह दीन चक्रवाकी, यह है उस के वियोग की रात !

[६]

सखि ! आओ, हम-तुम दोनों ही आज पुकारें माधव को,
यदि इस दासी की न सुनेंगे मानेंगे तव मृदु रव को।
सौ सौ खगियों का पुकारना नहीं ध्यान में लाता है—
पर पुकारती जहाँ कोकिला सत्वर ऋतुपति आता है॥

[७]

जो मैं कहूँ वही कहती हो, यह कैसा उत्तर का ढंग !
रंगिणि ! तुम परिहासरता हो, पर क्या उचित आज यह रंग !
मधु कवि कहता है कि प्रतिध्वनि इसी तरह की होती है,
हँसने से हँसती है एवं रोने से वह रोती है॥

—

ऊषा

[१]

स्वर्णोदय गिरि पर सुरसुन्दरि ! देती हो तुम दरस पुनीत,
मधुप-मिथुन कमलों पर आते, गाते हैं खग नव नव गीत।
तुम सरोजिनी की सजनी हो, अति सौजन्य दिखाती हो ;
उसके प्राणनाथ को अपने साथ सर्वदा लाती हो ॥

[२]

तुम्हीं दिखाकर पथ कोकी को पहुँचाती हो पति के पास,
कृपया मुझे मिला दो हरि से मार्ग दिखाकर बिना प्रयास।
अन्धी-सी होगई श्याम की राधा मैं रो रो कर हाय !
मेटो शीघ्र अँधेरा मेरा हेमवती सति ! करो उपाय ॥

[३]

आशा-स्वप्न-मध्य भूली थी यही सोच कर मैं सजनी !
तुम ब्रज-पंकज-रवि को लाकर मेटोगी ब्रज की रजनी।
सोचा था कि कुञ्ज में ऊषे ! पाऊँगी जीवन-धन को,
देखूँगी कदम्ब के नीचे मैं राधा निज मोहन को ॥

[४]

मुक्ताभरणों से करके तुम कुसुम-कामिनी का शृंगार—
मृदुल पवन को ले आती हो करने को तत्संग विहार।
लाती हो क्यों नहीं श्याम को ? राधा-भूषण आज कहाँ ?
लाकर उन्हें मिलाओ सुन्दरि ! है राधा विरहिणी यहाँ ॥

[५]

देवि ! तुम्हारे भव्य भाल पर प्रभामयी मणि जलती है,
फणिनी की चूड़ामणि से भी आभा अमल निकलती है।
मणि-कुल-राज किन्तु जग में वस हैं ब्रजरत्न प्रेम-पूषण,
मधु कहता है, सचमुच राधे ! अतुल रत्न हैं वृजभूषण ॥

कुसुम

[१]

डाली भर कर फूल आज क्यों तोड़े हैं इतने सजनी !
कभी पहनती है तारों की माला मेघावृत रजनी ?
हाय ! करेंगी क्या अब लेकर सुमन-रत्न ब्रजबालाएँ ?
अब क्या फिर वे पहन सकेंगी फूलों की मृदु मालाएँ ?

[२]

वन-शोभिनी लता का भूषण हरण किया किस लिए अहो !
है उस का प्रिय मधुप, किन्तु मुझ राधा का है कौन कहो ?
डालूँगी किस के सुकण्ठ में माला गूँथ हाय ! आली,
अब क्या फिर तमाल के नीचे नाचेंगे श्रीवनमाली !

[३]

तोड़ प्रेम-पिञ्जर विहंगवर है उड़ गया स्ववास विहाय ;
कब क्या सघन कुञ्ज-कानन में बजती है वह मुरली हाय !
ब्रज-नभ में वृज-चन्द्र कभी अब करते हैं क्या उज्ज्वल हास ?
वृज-कुमुदिनी रुदन करती है वृज-गृह में अत्यन्त उदास।

[४]

हा ! यमुने, डूबा न तुम्हारे जल में क्यों अक्रूर सपत्न,
छोड़ दिया क्यों तुम ने उस को जब कि हरा उसने वृज-रत्न?
वृज-वैरी वृज-वन को दल कर हर ले गया मधुर मकरन्द,
मधु कहता है, हे वृजांगने ! पाओगी प्रिय को सानन्द ॥

मलयमारुत

[१]

मलयाचल गृह सुना तुम्हारा जहाँ विहगिनी गाती हैं,
यथा अप्सरा नन्दन वन में श्रवण-सुधा बरसाती हैं।
हे मलयानिल ! कुसुम-कामिनी अति कोमल कमला ऐसी—
सेवा करती सदा तुम्हारी रति-नायक की रति जैसी ॥

[२]

हाय ! आज वृज में क्यों फिरते ? जाओ तुम सरसी के तीर,
मृदु हिल्लोल युक्त नलिनी को मुदित करो हे मलय-समीर !
वृज-दिनकर जो हैं वे वृज तज अन्धकार फैलाकर आज—
अन्य दिशा* में हैं विराजते विदित नन्द-नन्दन वृजराज ॥

[३]

देगी तुम्हें सुरभि-मणि नलिनी, राधा क्या दे सकती हाय !
भींग रही है नयन-नीर से वह दुःखिनी आज निरुपाय।
जाओ, जहाँ कोकिला गाती मधु-वर्षा-सी होती है,
इस निकुञ्ज में आज विरहिणी राधा बैठी रोती है ॥

[४]

सम दुःखी हो तुम यदि मेरे तो हरि-निकट शीघ्र जाओ,
जाओ, जाओ, सुभग ! आशुगति जहाँ श्याम धन को पाओ।
राधा का रोदन-रव उनके कानों तक तुम पहुँचाओ,
मरती है राधावियोगिनी, राधावर से कह आओ ॥

---

* मूल में अन्यान्य पाठ है।

[५]

जाओ, अहो महाबल ! सत्वर लाओ ब्रजभूषण का शोध,
दुर्मति शैल-शृंग को तोड़ो करे तुम्हारा जो गतिरोध।
विघ्न करे तरुराज कहीं तो वज्रपात करके सक्रोध—
भञ्जन करना उसे प्रभञ्जन ! करती हूँ तुम से अनुरोध ॥

[६]

तुम्हें देख यदि नदी सुन्दरी डाले प्रेमपाश अनुभूत—
मत भूलो उसके विभ्रम में तुम हे राधा के प्रिय दूत !
मन का क्रय करने को देगी कुसुम-कामिनी सौरभ-धन,
मत देखो, मत देखो, उसको, छलना है वह अहो पवन !

[७]

शिशिर-कणों से भींग न भूलो धारावाहिक लोचन-नीर,
शाखा पर कोकिल यदि बोले छोड़ो वह वन शीघ्र समीर !
होना सुख से विमुख सोच कर राधा का यह दुख भारी,
पर-दुख से जो दुखी, वही है सुकृती, सुजन, सदाचारी ॥

[८]

पहुँचो जब हरि-निकट सुनाना उन्हें राधिका का रोना,
श्याम विना गोकुल रोता है कह देना, साक्षी होना।
और नहीं कुछ कह सकती हूँ लज्जावश, मैं हूँ नारी ;
मधु कहता है, बृजवाले ! मैं कह दूँगा बातें सारी।

———

वंशी-ध्वनि

[१]

मृदु कल रव से बजा रहा यह मुरली कौन कुञ्जवन में ?
सुन सुन कर उस ध्वनि को दूनी ज्वाला बढ़ती है मन में !
रोक, रोक, सखि ! उसे शीघ्र ही, रुदन-समय यह कैसा गान ?
यों ही प्राण नहीं जलते क्या ? फिर क्यों है यह आहुति दान ?

[२]

पल्लववसनाशाखा-गृह में, होने पर वसन्त का अन्त,
गाती नहीं पिकी, जाती है निविड़ नीड़ में मौन तुरन्त।
आज कुञ्जवन में वंशी-ध्वनि ? हा ! अब क्या वह गाती है ?
देखे बिना श्याम को सहसा रोती है, चिल्लाती है !

[३]

सुना है कि सुरपति-भय से गिरि करते हैं सागर में वास—
ऊँचा सिर कर वहीं वहाँ पर करते हैं तरियों का नाश !
किन्तु न जाने प्रेम-सिन्धु में विरहाचल पहुँचा कैसे,
किस की प्रेम-तरी न फँसाते ? व्याध जाल में खग जैसे !

[४]

हा ! गत-सुख की स्मृति से अब क्या, वे क्या फिर मिल सकते हैं !
सुरभि कहाँ बासी फूलों में ? वे क्या फिर मिल सकते हैं ?
उसका स्मरण भला है अथवा है उसका विस्मरण भला ?
मधु कहता है, मधु के पीछे जग में कहाँ न कौन जला ?

गोधूलि

[१]

हाय ! कहाँ गोपाल शिरोमणि ? बिना सुने वह वेणु-निनाद—
गोकुल की गायें गोठों में करती हैं प्रवेश सविषाद ।
आई है गोधूलि देख सखि ! कहाँ रहे प्यारे गोविन्द ?
व्रज की शून्य वीथियों में क्या फिर न बिछेंगे अब अरविन्द !

[२]

लो, देखो, आगई तमिस्रा, तरु पर दीन चक्रवाकी—
रोती है प्रिय बिना कि जैसी रोती हूँ मैं एकाकी ।
वह तो फिर निशान्त होने पर हर्षित होकर गावेगी,
पर क्या मेरी विरह-निशा में उषा कभी फिर आवेगी ?

[३]

देखो, वह सुधांशु रजनीधन उदित हुआ है अम्बर में,
प्रमदा कुमुद्वती हँसती है खिलती हुई सरोवर में ।
विदित कलंकी भी शशांक से सब के नयन जुड़ाते हैं,
पर व्रजचन्द्र कलंकहीन हैं तो भी चित्त चुराते हैं !

[४]

अहो शिशिरकण ! निशा मध्य तुम फूलों को न भिगोना आज,
राधा का अविरल लोचन-जल कर देगा व्रज में यह काज ।
मुदित करेंगी रसिक जनों को सज प्रमदाएँ जहाँ तहाँ,
व्रजबालाएँ विरह-मूर्ति की करें प्रेम-आरती यहाँ !

[५]

हे मृदु मलयपवन ! सौरभ के व्यापारी, तुम यहाँ कहाँ ?
जहाँ भयङ्कर आग लगी हो चन्दन से क्या लाभ वहाँ ?
जाओ वृज को छोड़ शीघ्र ही नवकुवलयपरिमल लेकर,
सुरत-श्रान्त कामिनीकुल को स्वस्थ करो सुख दे दे कर ॥

[६]

जाओ, अहो वायुकुलपति ! तुम वहन करो पिक-गिरा रसाल
वृज की आज सभी वनिताएँ रुदन कर रही हैं बेहाल ।
मधु कहता है, हे वृजांगने ! शान्त रहो, रोदन न करो,
अंगीकार करेंगे माधव मिल कर तुम को, धैर्य्य धरो ॥

गोवर्द्धन

[१]

चरणों में आकर मैं राधा करती हूँ प्रणाम गिरिराज !
मर्म-कथा किस भाँति सुनाऊँ कुलबाला होकर मैं आज !
किन्तु देख दिवसान्त समय में छविहीना दीना नलिनी,
कौन जानता नहीं कि किस के बिना हुई है वह मलिनी ?

[२]

वृज-दिनकर जो हैं मुरलीधर छोड़ गये हैं वे वृजधाम,
दिनमणि को नलिनी-सम उन को भजती हूँ मैं आठों याम।
खोकर उन्हें आज रोने को आई हूँ मैं देव ! यहाँ,
मणिहीना फणिनी-सी हूँ मैं, मेरे गुणमणि श्याम कहाँ ?

[३]

तुम राजा हो, लतामयी वनराजि मुकुट-सम है सिर पर,
कुसुम-रत्न भूषण हैं सुन्दर, उत्तरीय रूपी निर्झर।
कर में राजदण्ड-सम तरुवर, पुष्पधूलिधूसर है देह,
भला कौन तुम महामहिम को नहीं पूजता है सस्नेह ?

[४]

मृगियाँ हैं दासियाँ तुम्हारी, बरसाती विहगियाँ सुधा ;
वनवधुएँ विहारिणी हैं सब बँधी प्रेम में है वसुधा।
दिन में सूर्य्य छत्रधर रहता निशि में निशि सेवा करती,
आश्रय दीजे देव ! मुझे अब श्याम बिना मैं हूँ मरती ॥

[५]

बरसाया जब क्रुद्ध इन्द्र ने प्रलय-वारि वृज में गिरिवर !
तब हरि ने तुम को रक्खा था छत्र-तुल्य अपने कर पर
भूल गये कैसे उस वृज को एक बार ही वे वृजराज ?
डूब रहा राधा-दृगम्बु में है वृज, कहाँ गये हरि आज !

[६]

तुम मुझ को निर्लज्ज न समझो, कैसे मैं यह दुःख सहूँ ?
बतला दो, इस विरह-सिन्धु में पड़कर कैसे मौन रहूँ !
सतियों का भूषण लज्जा है, सकती हूँ अब क्या यह सोच
मधु कहता है, हे वृजांगने ! भजो श्याम को निस्संकोच

सारिका

[१]

जल में ज्योति-विम्ब-सम चञ्चल पड़ी सारिका पिञ्जर में,
गाती कभी, कभी रोती है पागल-सी सूने घर में।
उस को कैसा दुख है सखि ! यदि इसे सोच सकती मन में—
तो पिंजड़े को तोड़ उसे तू अभी छोड़ देती वन में ॥

[२]

दुःखी ही पर-दुःख समझता, उस का दुःख मुझे है ज्ञात,
वृज-बन्दीगृह में मैं भी तो बन्दी हूँ व्याकुल दिन रात !
सोच रही सारिका व्यग्र हो अपने रम्य कुसुम-वन को,
और विकल होकर मैं राधा सोच रही हूँ मोहन को ॥

[३]

वनविहारिणी शुक-प्रिया को छल-वल से है बाँध लिया,
कैसे धैर्य्य धरे वह मन में क्या ही निष्ठुर कार्य्य किया !
मन में सोच सारिका की इस दुरवस्था को, वाधा को,
सखि ! संसार रूप पिञ्जर में बाँधो और न राधा को ॥

[४]

छोड़ सदय होकर विहगी को, वनस्थली में उड़ जावे,
प्रिय शुक को वह वहाँ देखकर अपने मन में सुख पावे।
दीन सारिका को विमुक्त कर हर कर उसकी व्यथा अपार—
वेड़ी काट राधिका की तू यही विनय है वारंवार ॥

[५]

आज राधिका के नयनों में अन्धकारमय है संसार,
रखना मुझ को इस दुर्गति में तुझे उचित है किसी प्रका
जाऊँ मैं हरि-निकट छोड़ सखि ! कुल का मुहँ काला होजा
सलिल विना शफरी का जीना कैसे हो सकता है हाय !

[६]

करता है जो प्रेम उसे है कुल, गौरव, धन से क्या काम ?
श्याम विना मैं हूँ उदासिनी छूवें रत्नाभरण तमाम।
मधु कहता है, हे वृजांगने ! तज कर कुल का सोच सभी—
जाओ तुम अपने रस-सागर नटनागर के निकट अभी॥

कृष्णचूड़ा*

[१]

मैं जिस को सिर पर रक्खे हूँ सादर और सयत्न अभी,
मुकुट-रत्न मेरे माधव का बनता था जो यहाँ कभी।
पहने देख उसे मैं महि को गाली देकर ले आई,
मेरे प्रिय का कुसुम-रत्न क्यों पहनेगी वह हरजाई ?

[२]

ये हैं ये मेरे मुक्ताफल इस पर कैसे झलक रहे,
मेरे अश्रु ओस के मिस से छल छल कर के छलक रहे।
सखी ! कृष्णचूड़ा को लेकर रोई मैं विजनस्थल में,
वही अश्रु इस पर फैले हैं गिरते थे जो पल पल में॥

[३]

पाकर इसे स्वप्न-सम हरि का सहसा मुझे स्मरण आया,
वह कदम्ब के नीचे उनका रम्य रूप अति मन भाया।
अधरों पर मुरली, ग्रीवा में गुञ्जाहार स्वयं देखा,
श्यामल तनु में पीत वसन ज्यों निकषांकित सुवर्णरेखा॥

[४]

माधव-रूप-माधुरी ने है सब की द्युति को दबा दिया,
इसी रूप-धन से राधा का मन हरि ने था मोल लिया।
छीन लिया अब किन्तु वही धन दिया पूर्व में था जैसे !
मधु कहता है, हे व्रजांगने ! यह हो सकता है कैसे ?

---

* पुष्प विशेष।

निकुंज

[१]

हे निकुञ्ज ! मैं आज अकेली फिरती थी यमुना के तीर,
वहाँ न पाकर मुरलीधर को आई हूँ अब यहाँ अधीर ।
यथा कुमुदिनी इन्दु-सुधा की रखती है अति अभिलाषा,
आई हूँ प्रियदर्शनार्थ मैं कर के वैसी ही आशा ॥

[२]

हे निकुञ्जवर ! तुम अम्बर हो, चन्द्र तुम्हारे हैं श्रीकृष्ण,
दिखलाओ अब मुझे उन्हें तुम, रूप-सुधा मैं पियूँ सतृष्ण ।
हे छविभाजन ! तुम्हें विदित है, उन्हें चाहती हूँ जितना,
और जानते हो तुम मुझ को नाथ चाहते थे कितना !

[३]

कुंज ! तुम्हारे कुसुमालय में प्राणनाथ आकर बहुधा—
पान कराते थे सब ब्रज को वेणु बजाकर मधुर सुधा ।
तुम्हें विदित है, सुनकर वह रव—ज्यों शिखिनी घन-रव सुनकर—
कौन उपस्थित हो जाती थी उनके चरणों में सत्वर !

[४]

पूर्व-स्मृति में मन उलझा है, तब माधवी घनी छाया—
उन्हें बिठाती थी दासी-युत दे पुष्पासन मनभाया ।
खिल उठती थीं विटप-लतिकाएँ, गाते थे भौंरों के गोल,
करती थी नित सौरभ वितरण कुसुम-कामिनी घूँघट खोल ॥

[५]

करते थे स्मर-कीर्तन पिकवर पञ्चम के स्वर में गाकर,
मेरे प्रिय को मेघ मान कर थे नाचते शिखी आकर।
कैसे भूला जा सकता है जो कुछ देखा सुना कभी ?
अङ्कित है राधा के मन में वह अतीत का दृश्य सभी !

[६]

नलिनी जब रवि को भूलेगी भूलूँगी प्रियतम को हाय !
अथवा कौन कहे जो मरकर उन्हें भूल जाऊँ निरुपाय।
सखे ! विदित हो तो बतलाओ, गुणमणि राधारमण कहाँ ?
समय-बन्धु जैसे वसन्त है तुम हो उनके बन्धु यहाँ॥

[७]

हे वसन्त ! तव मदन कहाँ हैं ? एकाकी तुम क्यों हो आज ?
रोती हूँ मैं तव चरणों में कहो, कहाँ मेरे ब्रजराज ?
कमलासह कमलोपम सकरुण ! मुझे न मारो होकर मौन,
मधु-कवि कहता है, मधुपुर में हरि हैं, यह न कहेगा कौन ?

सखी

[१]

सखि ! क्या कहा ? तनिक फिर तो कह, फिर मृदु गिरा सुनूँ तेरी,
सहसा बधिर हो गई हूँ मैं मिटा मनो-ज्वाला मेरी,
पावेगा यह दग्ध हृदय क्या फिर वह रत्न महा अभिराम ?
हा हा ! पैरों पड़ती हूँ मैं, सच कह फिर आवेंगे श्याम ?

[२]

इस मरुभूमि मध्य कह सखि ! क्या प्रकटित होगा कुसुमाकर ?
क्या निर्जला नदी फिर होगी स्रोतस्विनी सलिल पाकर ?
क्या समीर फिर वहन करेगा सजल जलद वर शोभाधाम ?
हा हा ! पैरों पड़ती हूँ मैं, सच कह फिर आवेंगे श्याम ?

[३]

हा ! हरि बिना विरह का मैंने सहन किया है कितना ताप !
इसे जानता अन्तर्यामी और जानती हूँ मैं आप।
कह सकता है कौन, अहो ! मैं रोती हूँ कितना अविराम,
हा हा ! पैरों पड़ती हूँ मैं, सच कह फिर आवेंगे श्याम ?

[४]

वृन्दावन-सर-कुमुद-विकासन हैं वे गोकुल-चन्द्र कहाँ ?
हाय ! उड़ा जाता है सब कुछ निश्वासों में आज यहाँ !
रक्खेगा व्रजराज ! कहो, अब कौन तुम्हारा नाम ललाम ?
हा हा, पैरों पड़ती हूँ मैं सच कह, फिर आवेंगे श्याम ?

[५]

शिखिनी जो विषधर खा जाती जलती है वियोग से जब—
कुल-वालाएँ इस ज्वाला से कैसे जी सकती हैं तब ?
हुआ विधाता एक बार ही क्या अब मुझ दुखिया से वाम,
हा हा ! पैरों पड़ती हूँ मैं, सच कह, फिर आवेंगे श्याम ?

[६]

देख, फूल-माला यह मैंने कैसी रुचिर रची है आज !
पहनाऊँगी इसे नाथ को आवेंगे जब वे सुखसाज।
देगी तथा यही प्रियतम के लिए प्रेम-बन्धन का काज,
हा हा ! पैरों पड़ती हूँ मैं, सच कह, फिर आवेंगे श्याम ?

[७]

सखि ! क्या कहा ? तनिक फिर तो कह, फिर मृदु गिरा सुनूँ तेरी,
सहसा वधिर हो गई हूँ मैं, मिटा मनो-ज्वाला मेरी।
पावेगा यह दग्ध हृदय क्या फिर वह रत्न महा अभिराम ?
मधु कहता है, क्यों रोती हो ? तुम्हें भूल सकते क्या श्याम ?

वसन्त

[१]

विकसित हुए कुसुम क्यों वृज में ? आया है क्या सखी ! वसन्त ?
सुमन-साज क्या सजा भूमि ने, क्या फिर शोभित हुआ दिगन्त !
चल तो, आँसू पोंछ, सुनें हम मुरली-रव तमालतल में,
मधु आया है तो माधव भी आवेंगे वृजमण्डल में ॥

[२]

फूल खिलें जिस समय विपिन में, अलि गूँजें, पिक-गण गावें,
विटप-वल्लियाँ हरी भरी हों, जड़ चेतन सब सुख पावें
क्या उस समय प्रेम को तज कर वृज को भूलेंगे मोहन ?
चल निकुञ्ज-वन में अवश्य ही पावेंगी हम अपना धन ॥

[३]

देखो, है चल रही विपिन में सन सन कर के पवन पुनीत,
और श्याम को देख सुखी हो गाते हैं द्विज मङ्गल-गीत ।
कुवलय-गन्ध नहीं सखि, है यह हरि की तन-सुगन्धि बहती,
तन है सदन मदनमोहन का इसमें यही सुरभि रहती ॥

[४]

उस-ऊर्मि-रव में वह यमुना सुन, गाथा को कहती यहीं,
और आप भी कल कल करके नाथ निकट जा रही यहीं ।
चन्द्र-विकास-युक्त शुचि जल में शोभित है हरि-श्याम सुअङ्ग,
चल, भूलें सारा वियोग-दुख देख प्राणपति को सानन्द ।

[५]

करते हैं गुञ्जार जहाँ अलि और कूकता है पिक-दल,
पत्र मर्मरित हैं, बहता है मलयानिल से जल कल कल।
हँसती है मृदु कुसुम-कामिनी सुरभित कर के दिङ् मण्डल,
ऐसे स्थल में प्रिय को पाकर कितना सुख होगा सखि ! चल ॥

[६]

ढाँके हुए अधोमुख सखि ! तू हाय ! आज क्यों रोती है ?
मेरे सुख से सदा सुखी तू आज विकल क्यों होती है ?
हे सुभगे ! यह कौन रीति है ? क्यों यह दशा हुई तेरी ?
चल निकुञ्ज-वन में, ऐसे में कौन लगावेगा देरी ?

[७]

प्रिय के वे पद-पद्म पकड़ कर चल सखि ! मैं रोऊँगी आज,
देखूँगी, हँस हँस कर कैसे मुझे तोष देंगे व्रजराज।
धीरे धीरे मुझे थाम कर चल सखि ! बल न रहा तन में,
मधु कहता है, हे व्रजाङ्गने ! क्या है शून्य कुञ्ज-वन में !

वसन्त

[१]

हे सखि ! फूलों के खिलने से कानन अति कमनीय हुआ,
पिक-कुल कल कल चञ्चल अलि-दल दृश्य परम रमणीय हुआ,
कलित ललित जल उछल रहा है, चलो चलें हम कानन को,
आँखें ठंढी करें देखकर श्रीहरि के चन्द्रानन को ॥

[२]

हे सखि ! उदयाचल पर ऊषा देखो, हँसती है आकर,
काटी विरह-निशा यह मैंने किसी भाँति से धीरज धर ।
पर अब कैसे रहूँ ? कहो तुम, रोते हैं ये मेरे प्राण,
चलो, जहाँ हरि नाच रहे हैं उसी कुञ्ज को करें प्रयाण ॥

[३]

हे सखि ! आज मही फूलों से है ऋतुपति को पूज रही,
खग-कुल के कल मङ्गल-रव से वनस्थली है कूज रही ।
धूप-रूप-परिमल से नभ युत महँक रहा है कुञ्जनिकेत,
चलो वहीं पूजें हम अपने प्राणेश्वर को प्रेम समेत ॥

[४]

हे सखि ! पाद्य-रूप दृग-जल से धोवेंगी प्रिय के पद-पद्म,
पूजेंगी निज कर-कञ्जों से उनके चरण-कमल युग-पद्म ।
श्वास हमारी धूप बनेगी, दृग दीपक बन जायेंगे,
कङ्कन और किङ्किणी मिलकर सुन्दर घण्ट बजायेंगे ॥

[५]

हे सखि ! यह यौवन-धन अपना दूँगी प्रियतम को उपहार,
यह मस्तक-सिन्दूर आग-सा, बन जावेगा चन्दन-सार।
देखूँगी दस इन्दु नखों में करके जीवन सफल अहा !
माँगूँगी चिर-प्रेम-रूप वर जो मन में है समा रहा॥

[६]

हे सखि ! फूलों के खिलने से कानन अति कमनीय हुआ,
पिक-कुल कल कल, चञ्चल अलि-दल, दृश्य परम रमणीय हुआ।
कलित ललित जल उछल रहा है, चलो, चलें हम कानन को,
आँखें ठंढी करें देख कर रसनिधि श्रीमधुसूदन को॥

शुभम्

कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समय आखेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये। सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था, इसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया। राजा प्यास के मारे कहाँ जाते हैं कि जहाँ शमीक ऋषि आसन मारे, नयन मूँदे हरि का ध्यान लगाए, तप कर रहे थे। उन्हें देख परीक्षित मन में कहने लगा कि यह अपने तप के घमण्ड में मुझे देख आँख मूँद रहा है। ऐसी कुमति ठानी, एक मरा साँप वहाँ पड़ा था, सो धनुष से उठा, ऋषि के गले में डाल, अपने घर आया। मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कंचन में कलियुग का वास है, यह मेरे सिर पर था, इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ऋषि के गले में डाल दिया; सो मैं अब समझा कि कलियुग ने मुझसे अपना पलटा लिया। इस महा पाप से मैं कैसे छूटूँगा? वरन् धन, जन, स्त्री और राज्य, मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूँ किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है।

राजा परीक्षित तो यहाँ इस अथाह सोच-सागर में डूब रहे थे और जहाँ शमीक ऋषि थे तहाँ कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले। मरा साँप उनके गले में देख अचम्भे में रहे और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई कोई इनके पुत्र से जाकर कहदे जो उपवन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है। एक सुनते ही दौड़ा वहाँ गया जहाँ शृङ्गी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था। कहा बन्धु! तुम यहाँ क्या खेलते हो, कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कंठ में डाल गया है। सुनते ही शृङ्गी ऋषि

के नयन लाल हो गये; दाँत पीस पीस लगा थर थर काँप और क्रोध कर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी धन के मद से अन्धे हो गये हैं दुख दानी; अब मैं उसे दूँहूँ शाप, वही मीच पावेगा आप। ऐसे कह शृङ्गी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित को शाप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा।

इस भाँति राजा को शाप दे, अपने बाप के पास आ, गले से साँप निकाल, कहने लगा हे पिता! तुम अपनी देह सँभालो, मैं उसे शाप दिया है जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला था। यह वचन सुनते ही ऋषि चैतन्य हो, नयन उघाड़ अपने ज्ञान ध्यान से विचार कर कहा अरे पुत्र! तू ने यह क्या किया क्यों शाप राजा को दिया? जिसके राज में थे हम सुखी, कोई पशु पक्षी भी न था दुखी। ऐसा धर्मराज था कि जिसमें सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते। अरे पुत्र! जिसके देश में हम बसे, क्या हुआ तिसके हँसे। मरा हुआ साँप डाला था, उसे शाप क्यों दिया? तनक दोष पर ऐसा शाप, तैने किया बड़ा ही पाप, कुछ विचार मन में नहीं किया, गुण छोड़ औगुण ही लिया। साधु को चाहिए शील स्वभाव से रहे, और की सुन ले; सब का गुण ले ले, अवगुण तज दे।

तुम्हें शृङ्गी ऋषि ने यह शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा। अब तुम अपना कार्य्य करो जिससे कर्म्म की फाँसी से छूटो। सुनते ही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो, हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो शाप दिया, क्योंकि मैं माया मोह के अपार सोचसागर में पड़ा था, सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य बिदा हुआ तब राजा ने आप तो वैराग्य लिया और जनमेजय को बुलाय राजपाट देकर कहा बेटा! गो ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो। इतना कह आये रनिवास, देखी रानी सबी उदास। राजा को देखते ही रानियाँ पाँवों पर गिर रो रो कहने लगीं महाराज तुम्हारा वियोग हम अबला न सह सकेंगी, इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला। राजा बोला सुनो स्त्री को उचित है कि जिसमें अपने पति का धर्म्म रहे सो करे, उत्तम काज में बाधा न डाले।

इतना कह धन, जन, कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो, अपना योग साधने को गङ्गा तीर पर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय हाय कर पछिताए बिन रोए न रहा। यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृङ्गी ऋषि के शाप से मरने को गङ्गा तीर आ बैठा है, तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, यमदग्नि, आदि अट्ठासी हज़ार ऋषि आये और आसन बिछाय पाँति पाँति बैठ गये, अपने अपने शास्त्र विचार विचार अनेक भाँति के धर्म्म राजा को सुनाने लगे कि, इतने में राजा की श्रद्धा देख पोथी काँख में लिये दिगम्बर वेष, श्रीशुकदेवजी भी आन पहुँचे। उनको देखते ही जितने मुनि थे सब के सब उठ खड़े हुए और राजा परीक्षित भी हाथ

खड़ा हो विनती कर कहने लगा कि कृपानिधान ! मुझ पर बड़ी दया की । जो इस समय आपने मेरी सुधि ली । इतनी बात कही तब श्रीशुकदेव मुनि भी बैठे, तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराज ! जो श्रीशुकदेवजी व्यासजी के तो बेटे और पराशरजी के पोते, तिनको देख तुम बड़े मुनीश हो के उठे सो तो उचित नहीं, इसका कारण कहो जो मेरे मन का संदेह जाय । तब पराशर मुनि बोले राजा ! जितने हम बड़े बड़े ऋषि हैं पर ज्ञान में शुक से छोटे ही हैं, इस लिए सब ने शुक का आदर मान किया, किसी ने इस आशा पर कि ये तारन-तरण हैं, क्योंकि जब से जन्म लिया है तब ही से उदासी हो वनवास करते हैं । और राजा ! तेरा भी कोई बड़ा पुण्य उदय हुआ जो शुकदेवजी आये । सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे तिससे तू जन्म मरण से छूट, भवसागर पार होगा । यह वचन सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी को दण्डवत कर पूछा महाराज ! मुझे धर्म्म समुझाय कर कहो किस रीति से कर्म्म के फन्द से छूटूँगा, सात दिन में क्या करूँगा, अधर्म्म है अपार, कैसे भवसागर हूँगा पार ।

श्रीशुकदेवजी बोले राजा ! तू थोड़े दिन मत मान, मुक्ति तो होती है एक ही घड़ी के ध्यान में । जैसे खट्वाङ्ग राजा को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था और उनको दोई घड़ी में मुक्ति भई थी । तुम्हें तो सात दिन बहुत हैं । जो एकचित्त हो करो ध्यान, तो सब समझोगे अपने ही ज्ञान से, कि क्या देह किसका है वास, कौन करता है इसमें प्रकाश । यह सुन राजा ने हर्ष से पूछा महाराज सब धर्मों से उत्तम धर्म कौन सा है सो कृपा कर कहो । तब शुकदेवजी बोले राजा ! जैसे सब धर्मों से

वैष्णव धर्म्म बड़ा है, तैसे पुराणों में श्रीभागवत। जहाँ हरिभक्त यह कथा सुनावें हैं तहाँ ही सब तीर्थ और धर्म्म आवें हैं। जितने हैं पुराण, पर नहीं है कोई भागवत के समान। इस कारण मैं तुझे बारह स्कन्ध महापुराण सुनाता हूँ जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है। तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित्त दे सुन। तब तो राजा परीक्षित प्रेम से सुनने और शुकदेवजी नेम से सुनाने लगे। नवम स्कन्ध की कथा जब मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा दीनदयालु! अब दया कर श्रीकृष्णावतार की कथा कहिए, क्योंकि हमारे सहायक और कुलपूज्य वे ही हैं। शुकदेवजी बोले राजा! तुमने मुझे सुख दिया जो यह प्रसङ्ग पूछा। सुनो मैं प्रसन्न हो कहता हूँ। यदुकुल में पहले भजमान नाम राजा थे, तिनके पुत्र पृथु; पृथु के विदूरथ, विनके सूरसेन, जिन्होंने नवखण्ड पृथ्वी जीत कर यश पाया। उनकी स्त्री का नाम मरिष्या, विसके दस लड़के और पाँच लड़कियाँ, तिनमें बड़े पुत्र वसुदेव जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म लिया। जब वसुदेव उपजे थे तब देवताओं ने सुरपुर में आनन्द बाजन बजाए थे। और सूरसेन की पाँचों पुत्रियों में सबसे बड़ी कुन्ती थी जो पाण्डु को व्याही थी, जिसकी कथा महाभारत में गाई है। और वसुदेवजी पहले तो रोहन नरेश की बेटी-रोहिणी को व्याहि लाये। तिसके पीछे सत्रह। जब अठारह पटरानी हुईं तब मथुरा में कंस की बहिन देवकी को व्याहा। तहाँ आकाशवाणी हुई कि इस लड़की के आठवें गर्भ में कंस का काल उपजेगा। यह सुन कंस ने बहिन-बहनोई को एक घर में मूँद दिया और श्रीकृष्णजी ने वहाँ ही जन्म लिया। इतनी कथा सुनते ही राजा परीक्षित बोले कि महाराज! कैसे जन्म कंस ने लिया

किसने उसे महावर दिया और कौन रीति से कृष्ण उपजे आय, फिर किस विधि से गोकुल पहुँचे जाय, यह तुम मुझे कहो समुझाय।

श्रीशुकदेवजी बोले, मथुरापुरी का आहुक नाम राजा था, तिसके दो बेटे, एक का नाम देवक दूसरा उग्रसेन। कितने एक दिन पीछे उग्रसेन ही वहाँ का राजा हुआ जिसकी एक ही रानी, तिसका नाम पवनरेखा। सो अति सुन्दरी और पतिव्रता थी। आठों पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहे। दैवयोग से वह गर्भवती भई। जब दस महीने पूजे तब पूरे दिनों लड़का हुआ, तिस समय एक बड़ी आँधी चली कि जिसके मारे लगी धरती डोलने, अँधेरा ऐसा हुआ जो दिन की रात हो गई और लगे तारे टूट टूट कर गिरने, बादल गर्जने और बिजली कड़कने। ऐसे माघ सुदी तेरस १३ बृहस्पतिवार को कंस ने जन्म लिया तब राजा उग्रसेन ने प्रसन्न हो सारे नगर के मङ्गलामुखियों को बुलाय, मङ्गलाचार करवाये और सारे ब्राह्मण, पण्डित, ज्योतिषियों को भी अति मान सन्मान से बुलवा भेजा। वे आये, राजा ने बड़ी आवभगति से आसन दे बैठाये तब ज्योतिषियों ने लग्न साध, मुहूर्त्त विचार कर कहा पृथ्वीनाथ! यह लड़का कंस नाम तुम्हारे वंश में उपजा जो अति बलवन्त हो राक्षसों को साथ ले राज करेगा और देवता और हरिभक्तों को दुःख दे आप का राज्य ले निदान हरि के हाथ मरेगा।

व्याह दीं, सातवीं देवकी हुई जिसके होने से देवताओं को प्रसन्नता भई। और उग्रसेन के भी दशों पुत्रों पर सब से कंस ही बड़ा था। जब से जन्मा तब से यह उपाधि करने लगा कि नगर में जाय और छोटे छोटे लड़कों को पकड़ लावे और पहाड़ की खोह में मूँद मूँद कर मार मार डाले। जो बड़े होयँ तिनकी छाती पै चढ़ गला घोंट जी निकाले। इस दुःख से कोई कहीं न निकलने पावे। सब कोई अपने अपने लड़कों को छिपावे। प्रजा कहे दुष्ट यह कंस उग्रसेन का नहीं है वंश, यह कोई महा-पापी जन्म ले आया है, जिसने सारे नगर को सताया है। यह बात सुन उग्रसेन ने विसे बुलाय बहुत समझाया, पर उसका कहना इसके जी में कुछ भी न आया, तब दुःख पाय पछिताय के कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत ही क्यों न हुआ।

कहते हैं जिस समय कुपूत घर में आता है, विसी समय यश और धर्म्म जाता है। जब कंस आठ वर्ष का भया तब मगध देश पर चढ़ गया। वहाँ का राजा जरासन्ध बड़ा योद्धा था, तिससे मिल इसने मल्लयुद्ध किया, तो उसने कंस का बल लख लिया। तब हार मान अपनी दो बेटियाँ व्याह दीं। पहले मथुरा में आया, और उग्रसेन से वैर बढ़ाया। एक दिन कोप कर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो और महादेव का जप करो। विसने कहा मेरे तो कर्त्ता दुःखहर्त्ता वेई हैं; जो विनको ही नहीं भजूँगा तो अधर्म्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा? यह सुन कंस ने खुनसाय बाप को पकड़ कर सारा राज्य ले लिया और नगर में यों डौंड़ी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, धर्म्म, तप और राम-

नाम कहने न पावे। ऐसा अधर्म बढ़ा कि गो, ब्राह्मण, हरि के भक्त दुख पाने लगे और धरती अति बोझों मरने लगी। जब कंस सब राजाओं का राज ले चुका, तब एक दिन अपना दल ले राजा इन्द्र पर चढ़ चला। तहाँ मन्त्री ने कहा महाराज! इन्द्रासन विन तप किये नहीं मिलता, आप बल का गर्व न करिए, देखो गर्व ने रावण कुम्भकर्ण को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।

इतनी कथा कह शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा! जब पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा तब पृथ्वी दुःख पाय, घबराय, गाय का रूप बन, डकराती देवलोक में गई, और इन्द्र की सभा में जाय, सिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज! संसार में असुर अति पाप करने लगे, तिनके डर से धर्म तो उठ गया, यदि मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल जाऊँ। तब इन्द्र सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा सुन सब को महादेव के निकट ले गये। महादेव भी सुन सबको साथ ले वहाँ गये जहाँ क्षीर-समुद्र में नारायण सो रहे थे। उनको सोते जान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र सब देवताओं को साथ ले, खड़े हो, हाथ जोड़, विनती कर, देवस्तुति करने लगे—महाराजाधिराज! आपकी महिमा कौन कह सके, मत्स्यरूप हो वेद डूबते निकाले, कच्छप रूप बन पीठ पर गिरि धारण किया, वाराह बन भूमि को दाँत पर रख लिया, वावन हो के राजा बलि को छला, परशुराम अवतार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी कश्यप मुनि को दी, रामावतार लिया तब महा दुष्ट रावण का वध किया, और जब जब तुम्हारे भक्तों को दैत्य दुःख देते हैं तब तब आप तिनकी रक्षा करते हैं।

चौपाई।

जो बैरी खैंचे तलवार। करै साधु ताकी मनुहार।
समझ मूढ़ सोई पछताय। जैसे पानी आग बुझाय॥

यह सोच समझ वसुदेव कंस के सन्मुख जा हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगा कि सुनो पृथ्वीनाथ! तुम सा बली संसार में कोई नहीं है और सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र करना यह अति अनुचित है, और बहन के मारने से महापाप होता है। तिस पर भी मनुष्य अधर्म्म तो करे जो जाने कि मैं कभी न मरूँगा। इस संसार की तो यही रीति है कि इधर जन्मा उधर मरा। करोड़ यत्न से पाप पुण्य कर कोई इस देह को पोषे, पर यह कभी अपनी न होयगी और धन यौवन राज्य भी न आवेगा काम, इससे मेरा कहा मान लीजै और अबला अधीन बहन को छोड़ दीजै। इतना सुन वह अपना काल जान घबरा कर और झुँझलाया। तब वसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुर-बुद्धि किये अपने हठ की टेक पर है जिससे इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिए। ऐसे विचार मन में कहने लगे अब तो इससे यों कह देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हें दूँगा, पीछे किसने देखी है, लड़का ही न हो, कै यही दुष्ट मरे, यह अवसर तो टरे, फिर समझी जायगी। इस भाँति मन में ठान वसुदेव ने कंस से कहा महाराज! तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ न होगी, क्योंकि मैंने यह बात ठहराई है कि देवकी के जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूँगा, यह वचन मैंने तुमको दिया। ऐसी बात जब वसुदेव ने कही तब समझ कर कंस ने मान ली और देवकी

माया उपजाई, सो हाथ बाँध सन्मुख आई। तिससे कहा तू अभी संसार में जा मथुरापुरी के बीच अवतार ले, जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुःख देता है और कश्यप अदिति, जो वसुदेव देवकी हो व्रज में गये हैं, तिनको मूँद रक्खा है। छः बालक तो तिन के कंस ने मार डाले, अब सातवें गर्भ में लक्ष्मणजी हैं, इनको देवकी की कोख से निकाल गोकुल में लेजा कर इस रीति से रोहिणी के पेट में रख दे जो कि कोई दुष्ट न जाने और सब वहाँ के लोग तेरा यश बखानें।

इस भाँति माया को समझाय श्रीनारायण बोले कि तू तो पहले जाकर यह कार्य्य करके नन्द के घर में जन्म ले, पीछे वसुदेव के यहाँ अवतार ले, मैं भी नन्द के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई और मोहिनी का रूप बन वसुदेव के गेह में पैठ गई।

चौपाई

जो छिपाय गर्भ हर लिया। जाय रोहिणी को सो दिया॥
जाने सब पहला आधान। भये रोहिणी के भगवान॥

इस रीति से श्रावण शुदी चौदस बुधवार को बलदेवजी ने गोकुल में जन्म लिया, और माया ने वसुदेव देवकी को जा स्वप्न दिया कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ में लेजा रोहिणी को दिया है, सो किसी बात की चिन्ता मत कीजो। सुनते ही वसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस में कहने लगे कि यह तो भगवान् ने भला किया पर कंस को इसी समय जताया चाहिए, नहीं तो क्या जानिए पीछे क्या दुख दे। यों सोच समझ रखवालों से बुला कर कहा, तिन्होंने कंस को जा सुनाया कि महाराज देवकी का गर्भ अधूरा गया, बालक कुछ्छो न पूरा भया। सुनते

ही कंस घबरा कर बोला कि तुम अबकी बेर चौकसी करियो क्योंकि मुझे आठवें ही गर्भ का डर है, जो आकाशवाणी कह गई है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! बलदेवजी तो यों प्रकटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आये, तभी माया ने जा नन्द की रानी यशोदा के पेट में बास लिया। दोनों गर्भ से थीं एक पर्व में देवकी यमुना न्हाने गई। वहाँ संयोग से यशोदा भी आन मिली तो आपस में दुःख की चर्चा चली। निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा तेरा बालक मैं रक्खूँगी, अपना तुझे दूँगी ऐसे वचन दे यह अपने घर आई और वह अपने। जब कंस ने जाना कि देवकी का आठवाँ गर्भ रहा, तब जा वसुदेव का घर घेरा चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और वसुदेव को बुला कर कहा कि अब तुम मुझसे कपट मत कीजो, अपना लड़का ला दीजो, तब तो मैंने तुम्हारा ही कहला मान लिया था।

ऐसे कह वसुदेव देवकी को बेड़ी और हथकड़ी पहिराय एक कोठे में मूँद कर, ताले पर ताले दे निज मन्दिर में आ, मारे डर के उपवास कर सो रहा। फिर भोर होते ही वहाँ गया जहाँ वसुदेव-देवकी थे। गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा कि इसी यमगुफा में मेरा काल है; मार तो डालूँ पर अपयश से डरता हूँ, क्योंकि अति बलवान् हो स्त्री को हनना योग्य नहीं, भला इसके पुत्र ही को मारूँगा। यों कह बाहर आ गज सिंह श्वान और अपने बड़े बड़े योद्धा वहाँ चौकी को रखाए, और आप भी नित चौकसी कर आवे; पर एक पल भी कल न पड़े, जहाँ देखे तहाँ आठ पहर चौंसठ घड़ी कृष्ण रूप काल ही दृष्टि आवे, तिसके भय से रात दिन चिन्ता में गँवावे।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर वसुदेव और देवकी पूरे दिनों महाकष्ट में श्रीकृष्ण को ही मनाते थे, कि इसी बीच में भगवान ने आ तिन्हें स्वप्न दिया और इतना कह तिनके मन का सोच दूर किया कि हम वेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटते हैं, तुम अब मत पछिताओ। यह सुन वसुदेव देवकी जाग पड़े, तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक सब देवता अपने अपने विमान अधर में छोड़, अलख रूप बन, वसुदेव के गृह में आये और हाथ जोड़ जोड़ वेद गाय गाय गर्भस्तुति करने लगे। तिस समय तिनको तो किसी ने न देखा, पर वेद की ध्वनि सबने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचम्भे में रहे और वसुदेव देवकी को निश्चय हुआ कि भगवान वेग ही हमारी पीर हरेंगे।

चौथा अध्याय

श्रीशुकदेवजी बोले राजा! जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे, तिस काल सब ही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुःख नाम को भी न रहा। हर्ष से वन उपवन हरे हो हो फलने फूलने, नदी नाले, सरोवर, भरने, तिन पर भाँति भाँति के पक्षी कलोलें करने और नगर नगर गाँव गाँव घर घर मङ्गलाचार होने; ब्राह्मण यज्ञ रचने; दशों दिशा के दिग्पाल हर्षने; बादल ब्रजमण्डल पर फिरने; देवता अपने अपने विमानों में बैठे आकाश से फूल बर्षाने; विद्याधर, गन्धर्व, चारण, ढोल दमामे, भेरी बजाय बजाय गुण गाने; और एक ओर उर्वशी आदि सब अप्सरा नाचने लगी थीं; कि ऐसे समय भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधीरात को श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म

लिया और मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमलनयन हो पीताम्बर काछे, मुकुट धारे, वैजयन्तीमाल और रत्नजड़ित आभूषण पहिरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये वसुदेव देवकी को दर्शन दिया। देखते ही अचम्भित हो विन दोनों ने ज्ञान से विचारा तो आदि-पुरुष को जाना। तब हाथ जोड़ विनती कर कहा, हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया और जन्म का निवेड़ा किया।

इतना कह पहली कथा सब सुनाई, जैसे जैसे कंस ने दुःख दिया था। तहाँ श्रीकृष्णचन्द्र बोले, तुम अब किसी बात की चिन्ता मन में मत करो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दुःख के दूर करने ही के हेतु अवतार लिया है; पर इस समय मुझे गोकुल पहुँचा दो और इसी बिरियाँ यशोदा के लड़की हुई है सो कंस को ला दो। अपने जाने का कारण कहता हूँ सो सुनो।

दो०—नन्द यशोदा तप कियो, मोही सो मन लाय।
देखो चाहत बाल सुख, रहों कछुक दिन जाय॥

फिर कंस को मार आन मिलूँगा। तुम अपने मन में धैर्य्य धरो। ऐसे वसुदेव देवकी का ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दश सहस्र गाय मन में सङ्कल्प कर, लड़के को गोद में उठा, छाती से लगा लिया। उसका मुख देख देख दोनों लम्बी साँसें भर भर आपस में कहने लगे, जो किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजे तो कंस पापी के हाथ से बचे। वसुदेव बोले—

चौपाई

विधना बिन राखे नहिं कोई। कर्म लिखा सोई फल होई।
तब कर जोरि देवकी कहै। नन्द मित्र गोकुल में रहै॥
पीर यशोदा हरे हमारी। नारि रोहिणी तहाँ तिहारी॥

उस बालक को वहाँ ले जाओ। यों सुन वसुदेव अकुला कर कहने लगे कि इस कठिन बन्धन से छूट कैसे ले जाऊँ। जो इतनी बात कही, तो सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी, चारों ओर के किवाड़ खुल गये, पहरुए अचेत नींद-वश भये तब फिर वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख शिर पर धर लिया और झट पट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

सो०—ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गर्जई।
शोचत है वसुदेव, यमुना देख प्रवाह अति॥

नदी तीर खड़े हो वसुदेव विचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है और आगे अथाह यमुना बह रही है। अब क्या करूँ। ऐसा कह भगवान का ध्यान धर यमुना में पैठे, ज्यों ज्यों आगे जाते थे, त्यों त्यों नदी बढ़ती थी। जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराये। इनको व्याकुल जान, श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढ़ाया, हुँकार दिया, चरण छूते ही यमुना थाह हुई। वसुदेव पार हो नन्द की पौर पर पहुँचे वहाँ किवाड़ खुले पाये। भीतर धँस कर देखें तो सब सोए पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लड़की के होने की भी सुधि न थी। वसुदेवजी ने कृष्ण को तो यशोदा के निकट सुला दिया और कन्या को ले चट अपना पन्थ लिया। नदी उतर फिर आये जहाँ, बैठी देवकी शोचती थी तहाँ। कन्या दे वहाँ की कुशल कही। सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली हे स्वामी! हमें कंस अब मार डाले तो कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से कहने लगे कि जब वसुदेव लड़की को ले आये, तब किवाड़

धनुषाकार पटी थी और इनके जोड़ बहुत प्राचीन होने के कारण अति कठोर हो गये थे।

यद्यपि यह राजमन्दिर सैकड़ों वर्ष का बना हुआ था तथापि आकाश की वृष्टि और मध्य देश की आँधियों से किञ्चित् मात्र भी नहीं बिगड़ता था, यहाँ तक कि उसके जीर्णोद्धार की कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती थी।

यह मन्दिर ऐसा विस्तीर्ण था कि इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त उन वृद्ध अधिकारियों के अतिरिक्त, जिनको कि इस स्थान के गुह्य वार्त्ताओं के भेद अपने से पूर्व क्रमानुसार अधिकारियों के द्वारा ज्ञात होते थे दूसरा कोई भी न जानता था, मानो इसके निर्माण की रीति की स्थूलालेख्य-शङ्का से निज हस्त से लिखी थी। प्रत्येक गृह में जाने के हेतु एक प्रत्यक्ष और एक गुप्त मार्ग था। प्रत्येक चतुष्क अप्रकट छज्जों से, जो ऊपर के खण्ड में थे वा भूम्यन्तर्गत मार्ग से जो नीचे के गृहों में थे परस्पर मिले हुए थे, बहुत से स्तम्भों के अभ्यन्तर भाग पाते थे। पर देखने वाले अनुमान भी न कर सकते थे, जिसमें कि पूर्व समय के अनेक महाराजों ने अपने अपने धन का सञ्चय कर एकत्र किया था। इसका छिद्र सङ्गमरमर से बन्द रहता था और प्रजासम्बन्धी अत्यावश्यक प्रयोजन के अतिरिक्त और कदापि नहीं खुलने पाता था। इस धन का व्योरा एक पुस्तक में लिखा जाता था, जो स्वयं एक ऊँचे दुर्ग में गुप्त की जाती थी और जिसमें कि राज्याधिकारी कुमार के साथ केवल महाराजा ही जाते थे।

दूसरा परिच्छेद

सुखमयी घाटी में धैर्यसिन्धु की अप्रसन्नता।

मकरन्द के राजकुमार और राजकन्याएं रात्रि दिवस ऐसे गुणियों से सम्पन्न थे जो दूसरों के प्रसन्न करने में अति निपुण थे। वे सब प्रकार सांसारिक सुख और चैन का अनुभव करते हुए इन पूर्वोक्त स्थानों में वास करने लगे। सब प्रकार की वस्तुओं का, जो मनुष्य को किसी भाँति प्रफुल्लित-चित्त कर सकती हैं वे स्वेच्छापूर्वक भोग करते थे। सुगन्धमयी वाटिकाओं में विचरा करते और सुदृढ़ अगम्य दुर्गों में शयन किया करते थे। उनको अपनी वर्त्तमान दशा में हर्षित करने के निमित्त सब भाँति के प्रयत्न किये गये थे। वृद्धजन जो उनकी शिक्षा के हेतु नियत किये गये थे, वहिर्वर्ती तुच्छ मनुष्यों के जीवन में अत्यन्त क्लेश और दुःख हैं इसके अतिरिक्त और कुछ उन्हें न बतलाते थे, सदैव यही कहा करते थे कि इन पर्वतों के दूसरी ओर के प्रदेश आपत्ति और क्लेश से पूरित हैं, जहां परस्पर ईर्ष्या, द्रोह और वाक्-कलह आदि बातें निरन्तर मची रहा करती हैं और जो स्थान आधि और व्याधि से पूर्ण हैं, जहाँ मनुष्य ही मनुष्य का प्राणघातक होता है, उन्हें अपने सुख की उत्कर्षता जनाने के हेतु उनके सम्मुख अनेक प्रकार के कीर्त्तन और गीतों का गान हुआ करता जिन गीतों में केवल सुखमयी उत्पत्ति ही का वर्णन रहता। अनेक प्रकार के खेल और सुखदायक वस्तुओं के नाम लेने से उन्हें उनके भोग करने की इच्छा सर्वदा ही बढ़ा करती, यहां तक कि सूर्योदय

से सूर्य्यास्त तक उन लोगों के प्रति मुहूर्त के कार्य्य केवल आनन्द और विलास से परिपूर्ण रहते थे।

ये उपाय प्रायः उन लोगों के प्रसन्न करने में फलीभूत होते थे। कभी ऐसे ही किसी राजकुमार को अपनी दशा-परिवर्त्तन की अभिलाषा होती, नहीं तो वे इस बात का पूर्ण विश्वास कर, कि हम लोग संसार तथा स्वर्ग की सब वस्तुओं से आच्छादित हैं, अपना जन्म बिताते और करुणा से आर्द्रचित्त होकर उन लोगों की दशा पर तरस खाते जो उनके निकट दैवात् ऐसी सुखदायी भूमि से बहिर्मुख थे और भाग्य के अधीन हो आपदा के अनुचर बन रहे थे।

इस प्रकार वे हृष्ट-मन हो परस्पर प्रीति-पूर्वक काल बिताते, प्रातःकाल उठते और रात्रि को यथासुख शयन करते थे। पर धैर्य्यसिन्धु की चाल इनसे न्यारी थी। उसके ढङ्ग कुछ और ही थे। वह छब्बीस वर्ष की अवस्था से अपने को औरों के खेल और समाज से दूर रख प्रायः अकेले घूमने और गुप्त विचार में मग्न हो, अपने समय को व्यतीत करने लगा। अपने में इतना मग्न रहता कि अमूल्य खाद्य पदार्थ उसके सम्मुख लाये जाते तो खाने की कौन कहे, उनको निज हस्त से स्पर्श भी न करता। नृत्य, गीत, वाद्य के समय वह एकाएक उठ खड़ा होता और इतनी दूर पर चला जाता जहां कि उनका शब्द भी उसके कर्णगोचर न होता था। उसके अनुयायी वर्ग अपने राजकुमार की यह दशा देख उसको प्रसन्न कर इन्हीं गीत वाद्य के आनन्द पर उसका चित्त स्थिर करने का १ कुछ यत्न किया करते थे, पर वह उनकी ओर तनिक भी

न देता और उसके आह्वान और प्रार्थना को क्रुद्ध हो तिरस्कार करता।

वह प्रति दिन नदियों के तट पर अपना कालक्षेप किय करता जहाँ सुन्दर सघन वृक्षों की श्रेणी उसके मन को अति सुखदायिनी थी। कभी वह शाखाओं पर बैठे हुए पक्षियों की ओर ध्यान देता, कभी जल में क्रीड़ा करती हुई मछलियों को देखता, कभी तुरन्त अपने नेत्रों को सब ओर से फेर पुरोवर्ती पर्वत और हरित भूमि पर प्रक्षेपण करता, जिनमें नाना भाँति के जीव जन्तु विचर रहे थे, जिनमें से कोई हरित तृण से अपने अपने उदर पूर्ण कर रहे थे और कोई आच्छादित स्थानों में सुखपूर्वक शयन करते थे।

उसके चित्त की यह प्रवृत्ति देख लोगों का सन्देह दिन दिन उसकी जिज्ञासा में अधिकतर प्रवृत्त होने लगा। एक दिन एक विज्ञ पुरुष जिसके वार्त्तालाप से वह प्रथम अति प्रसन्न होता था, उसकी अप्रसन्नता का कारण जानने की आशा से चुप चाप उसके साथ हो लिया। धैर्य्यसिन्धु, जो समझता था कि मेरे समीप कोई पुरुष नहीं है कुछ देर तक उस अजसमूह को जो सामने की शिला पर चर रहा था एकाग्र नेत्र से अवलोकन कर पश्चात् उसकी दशा से अपनी दशा की तुलना करने लगा। वह यों कहता था—वह कौनसी वस्तु है जिसमें मनुष्य और अन्य अन्य जीवधारियों का तारतम्य ज्ञात होता है? ये सब जन्तु जो हमारे निकट चर रहे हैं उन्हीं दैहिक आवश्यकताओं से पीड़ित होते हैं जिनसे कि मैं। जब ये क्षुधित होते हैं, तब लता आदिकों से अपनी क्षुधा निवारण करते हैं; जब ये पिपासाकुलित होते हैं तब पर्वतों के झरनों से जलपान करते

हैं। इस भाँति इनकी जब भूख और प्यास दूर हो जाती है, तब सम्यक् तृप्त हो सुखपूर्वक विश्राम करते हैं। दूसरे दिन उठ कर पुनः ये क्षुधापीड़ित होते हैं और इस रीति से अपनी क्षुधा के शान्त होने पर पुनः विश्राम करते हैं। मुझ को भी इन्हों के समान क्षुधा और पिपासा की आवश्यकता होती है, पर इनके नाश होने पर मुझको किञ्चित् भी विश्राम नहीं मिलता। इनके सदृश आवश्यक कर्तव्य कार्यों से मैं भी क्लेशित होता हूँ। उनके निष्पादन करने से मुझको इनकी नाईं सुख की प्राप्ति नहीं होती। मुझे अवकाश का समय उदासीन, क्लेशद और दुर्गम जान पड़ता है, यहाँ तक कि मैं अपने चित्त की वृत्ति को दूसरी ओर फेरने के हेतु फिर क्षुधित होने की अभिलाषा करता हूँ। ये पक्षी फलादिकों को इधर उधर से चुन उपवनों में चले जाते हैं और वहाँ वृक्ष की शाखाओं पर बैठ हर्षपूर्वक एक ही अपरिवर्त्तित मधुर ध्वनि से गान कर अपना समय व्यतीत करते हैं। मैं भी आह्लाद-पूर्वक अपना समय बिताने की आशा से अनेक उत्तमोत्तम वादक और गवैयों को बुलवाता हूँ पर वे सब उनको मनोहर शब्द जिसमें कि मैं प्रमुदित हुआ था, आज अति दुखद मालूम होते हैं और मैं समझता हूँ कि कल और भी अधिक दुखद होते जायँगे। मेरे कर्ण, नेत्र आदि शारीरिक इन्द्रियों की वृत्ति अपने अपने अशेष यथोचित सुखदायक पदार्थों की प्राप्ति से सुखमय हो रही हैं। अब उनके भोग के हेतु कोई वस्तु शेष नहीं, तथापि मुझको आनन्द का लेश भी नहीं दीखता। निःसन्देह मनुष्य के शरीर में कोई ऐसी गुप्त इन्द्रिय है जिसकी तृप्ति के हेतु इस स्थान कोई भी लभ्य वस्तु उपयुक्त नहीं है अथवा इन्द्रियों को छोड़

ऐसी आवश्यक पूरणीय अभिलाषा हैं जिनका पूर्ण होना उनकी प्रसन्नता के पूर्व ही अति आवश्यक है।

तदनन्तर वह अपना शिर इधर उधर फेर देखने लगा और चन्द्रोदय का प्रारम्भ जान वासस्थान की ओर बढ़ा। मार्ग में अनेक जीवों को देख वह यों कहता था "तुम सब सुख से अपना कालक्षेप करते हो, तुमको उचित है कि तुम हमसे जिसको अपना जीवन स्वयं अपार हो रहा है और जो तुम्हारे मध्य इस भाँति सदा विचार करता है कुछ ईर्ष्या न करो। और हे साम्य प्राणधारियो! मैं भी तुम्हारे इस सौख्य का द्वेषी नहीं हूँ क्योंकि यह कुछ मनुष्य-योनि का सुख नहीं। मुझ को ऐसे अनेक क्लेश हैं जिनसे कि तुम मुक्त हो परन्तु मुझ को उससे पीड़ित होने का भय जान पड़ता है। यद्यपि वास्तव में वे कुछ भी नहीं। मैं कभी विपत्तियों का स्मरण कर काँप उठता हूँ और कभी भविष्य विपत्तियों का अनुमान कर चौंक पड़ता हूँ। निःसन्देह उस न्यायी विधाता ने विशेष दुःख-समूहों को योजित कर रक्खा है।"

फिरती समय ऐसे वाक्यों से वह राजकुमार अपना चित्त-विनोद करता था। दुःखबोधक शब्दों से उनका उच्चारण करता पर अपने नेत्रों की ऐसी चेष्टा बनाता जिससे कि वह अपनी बुद्धिमत्ता के कारण हर्षित ज्ञात होता और जिससे कि वह इस जीव की विपत्तियों से उनका सरलता से ज्ञान होने और वाक्-पटुता से उनके विलाप हेतु कुछ आश्वासित सा दीख पड़ता। प्रदोषकाल में वह हर्षपूर्वक जा मिला और उसका हृदय किञ्चित् प्रसन्न देख अति आनन्दित हुए।

सुयश से अधिकतर और कोई मधुर प्रिय वस्तु संसार में नहीं

सब छोटे और बड़ों के जी में सुयश और कीर्त्ति प्राप्त करने की लालसा ईश्वर ने उत्पन्न की है परन्तु ऐसे बहुत कम पुरुष हैं जो भली भाँति जानते हैं कि उसके मिलने के कौन कौन से सच्चे द्वार हैं। बहुधा तत्त्वज्ञानी (फ़िलासफ़र) लोग कहते हैं कि सुयश और सत्कर्म्म पृथक् वस्तु नहीं हैं। जहाँ एक होगा वहाँ दूसरा अवश्य होगा । सुयश और सत्कर्म्म का फल धुआँ और आग की नाईं परस्पर सम्बन्ध रखता है। जो महात्मा सच्चे परोपकार और पुरुषार्थ को विचार कर संसार में सत्कर्म करते हैं, यद्यपि उन्हें सिवाय अपने ईश्वर को प्रसन्न और अपने धर्म्मशील चित्त के सन्तुष्ट करने के और किसी बात की आकांक्षा नहीं होती, तो भी वे उनसे अधिकतर कीर्त्तिमान् होते हैं जो केवल यश के निमित्त ही यत्न करते हैं। भला जो कुछ हो, यश की अभिलाषा चाहे किसी हेतु से क्यों न हो परन्तु वह मनुष्य को हर घड़ी दूसरों के उपकार की ओर प्रेरणा किया करती है। धन्य हैं वे सत्पुरुष जिनके चित्त में इसका अंकुर जमा हुआ है। कीर्त्ति पाने की आशा जीते जी वा शरीरान्त के पीछे मनुष्य को बारम्बार मन ही मन में प्रफुल्लित और हर्ष से मग्न किया करती है। यदि कीर्त्ति प्राप्त करने की पूरी आशा न हो तो क्या कोई शूरवीर अपनी जान को हथेली पर धर कर अपनी प्रतिष्ठा, अपना वंश, अपनी देश-रक्षा करने के हेतु, अथवा अपने स्वामी और उपकार के कार्य्य-सिद्धि के लिए रणभूमि में बढ़ता ? यदि यह न होती तो क्या कोई अपना

जो उसने वा उस के पुरुखों ने बड़े बड़े परिश्रमों से सञ्चय किया है, घर से परोपकार के लिए निकाल देता? यदि यह न होता तो क्या कोई जीवन पर्य्यन्त कठिन श्रम करके मनुष्य-जाति के लाभ के लिए सुन्दर ग्रन्थों की रचना करता, तथा लाभकारक विद्या निकालता ? यदि यह न होती तो क्या कोई राजा व देशाधिकारी अपनी प्रजाओं के सुख-चैन बढ़ाने के निमित्त अपने ऊपर कठिन भार लेता और अपने अपने जीवन को कष्ट में डालता ? यदि यह न होती तो क्या कोई पुण्यशील धर्म्मोपदेशक दूसरों के उपकार के अर्थ अपना तन, मन, धन अर्पण कर देता ? कदापि नहीं। यदि मनुष्य की आत्मा को यह दृढ़ विश्वास न होता कि मेरे सत्कर्म्मों की चर्चा इस अनित्य शरीर के नाश के पीछे भी संसार में बनी रहेगी; तो क्या वह मनुष्य को धर्माचरण की प्रेरणा करती ? नहीं, कभी नहीं।

एकता

अहा हा! एकता भी इसी पृथ्वी पर ईश्वर ने जीवों को ऐसा गुण दिया है कि जिसके अवलम्बन से मनुष्य को कोई भी पदार्थ असम्भूत नहीं होता, अर्थात् सब करतलगत होते हैं। परन्तु इस ऐक्य वृक्ष की भूमि परम विलक्षण है, क्योंकि वृक्ष एक स्थल में भी बहुत होते हैं और यह ऐसा है कि बहुत स्थल में एक होता है। इसकी भूमि अन्तःकरण है परन्तु आजकल के दिनों में निरुत्साह रूप कीड़ों से यह बहुत बिगड़ गई है। इससे पहले उन कीड़ों को निर्बीज करके उत्साहरूपी मसाला देना उचित है जिससे

यह वृक्ष बहुत अच्छी भाँति बढ़े। उसकी शाखा नाम रूप से फैले। इस वृक्ष को युक्ति रूप जल से सींचना चाहिए। इसकी यश रूप मुख्य शाखाएँ हैं। अनन्तर कुछ काल बीते मनोभिलाष पूर्ति रूप फल लगता है।

अब सब कोई इन दोनों के नाम सुनते ही कहेंगे कि ठीक है; जो यही इसके फल और फूल हैं तो हम लोगों को भी इसके संग्रह करने का उपाय ढूँढ़ना और करना चाहिए। परन्तु इसमें जो मसाला मुख्य उत्साह है वह कहां से वे लावेंगे, क्योंकि यह मसाला कहीं बिकता ही नहीं और बिना मसाला वृक्ष को और रीति से बढ़ाना चाहे तो बढ़ नहीं सकता। इसलिए उस भूमि के ढूँढ़ने से वृक्ष ही का ढूँढ़ना सुलभ होगा। यदि यह मसालेदार न मिली तो उसको मसाला दे दे के सुन्दर करना चाहिए। परन्तु ऊपर यह कह आये हैं कि इस वृक्ष की कुछ चाल ही विलक्षण है, क्योंकि यह बहुधा मनोरूपी भूमि में होता है; तो इस हेतु जितनी भूमि हो वह सब परम यत्न से परिष्कृत की जाय। कदाचित् कोई कहे कि हम किस की भूमि में मसाला दें और हमें इससे क्या लाभ है? तो उनको यही समझना चाहिए कि यदि सब कोई भूमि के स्वामी ऐसा ही कहेंगे तो उस में हानि केवल उन्हीं की नहीं किन्तु सब की है और अकेला यद्यपि इस सब पूर्वोक्त सामग्री से युक्त भी है, तथापि वह वृक्ष बना कर न आप फल खा सकता न दूसरे को खिला सकता है। इस हेतु सब लोगों को उचित है कि थोड़ी सी भूमि में स्वल्प लोगों के बोये हुए इस वृक्ष बढ़ा के फलभागी हों।

देखिये ! इस एकता से कितने लाभ होते हैं। (१) प्रथ तो चार लोगों में आने जाने, बैठने उठने, बोलने चाल से ज्ञान होता है। (२) विविध प्रकार का वार्त्तालाप सुनने से बुद्धि तीक्ष्ण होती है। (३) चतुरता आदि गुणों की प्राप्ति होती है। (४) बहुतों से मित्रता होती है जो कि सब रीति से मनुष्य को आनन्ददायिनी है। (५) नाना देश और विषय व्यवहार आदि का ज्ञान होता है। (६) इनके अतिरिक्त ऊपर कहे हुए फूल और फल मिलते हैं। बहुत लोगों ने सुना होगा कि पांडव पाँच भाई थे। जब कि राजसूय यज्ञ हुआ और वहाँ दुर्योधन को जल में स्थल, स्थल में जल का भ्रम हुआ, तब दुर्योधन परम खिन्न होकर शकुनि से पूछने लगा कि मेरी अप्रतिष्ठा का बदला लेना आपको अवश्य उचित है। उस पर शकुनि ने कहा ठीक है, द्यूतक्रीड़ा से पहले उनका सब द्रव्य हरण करना, पुनः द्रव्य हरण होने से अवश्य ही दरिद्र होंगे। दरिद्र होते ही परस्पर बिगाड़ होगा जिससे ये नष्ट होंगे और लज्जित होकर विदेश भाग जायँगे। सारांश यह है कि यदि शकुनि के ही वाक्य के अनुसार पांडव अपनी एकता छोड़ देते तो कितने दुःख के भागी होते। परन्तु उन्होंने यद्यपि केवल अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर की प्रतिज्ञारूपी बन्धन में पड़ कर वनवासजनित क्लेश भोगे, तो भी कभी एकता का छोड़ना अन्तःकरण से भी नहीं चाहा, और इसी के प्रभाव से १३ वर्ष के अनन्तर युद्ध करके सब पृथ्वी के स्वामी हुए। अब इसी दृष्टान्त से विचारिए कि एकता कितनी लाभदायक वस्तु है। दूसरा दृष्टान्त—एक धनाढ्य के ५ लड़के थे। जब पिता के मरने के दिन निकट आये, तब सब भाई आपस

धर्मिष्ठ, पुण्यशील, माता, पिता, और गुरु से सत्यप्रिय, और हितकारी वचन बोलने की शिक्षा पाई हो। ऐसे सत्पुरुषों को दूसरों के साथ उपकार करने की बड़ी सामर्थ्य होती है। किसी बात से मनुष्यों का चित्त ऐसे न हरा जाता है न समझाया जाता है और न शिक्षित किया जाता है, जैसा कि एक सत्यवादी के सच्चे और प्रिय वचनों से। इस संसार के बड़े बड़े महात्माओं में प्रियवक्ता होने का बड़ा दैवी गुण अधिकतर न होता तो कदापि सम्भव न था कि वे अनन्त सांसारिक जीवों को ईश्वर के कठिन मार्ग पर ले जाते।

अब सत्य न बोलने के अनर्थों को सुनिए। हाय! कितने बड़े बड़े उपद्रव मिथ्या बोलने के कारण उठते हैं। यद्यपि कटु वचन देखने में एक छोटी सी बात जान पड़ती है, परन्तु अन्त में उसका परिणाम कैसा बुरा होता है। जिस प्रकार एक छोटे कीड़े के काटने से एक बड़ा हृष्ट पुष्ट जीव व्याकुल हो जाता है, वैसे ही एक व्यङ्गर वचन से एक बड़े स्नेही के चित्त को भी खेद हो जाता है। नीचे के वाक्य हम अपने पाठकगणों के चित्त-विनोदार्थ इङ्गलेण्ड देश के एक परम विशारद धर्मोपदेशक की पुस्तक से अनुवाद करते हैं। वह कटु और मिथ्या वचन के महा अवगुणों के विषय में यों लिखता है:—

"इससे ही स्नेहियों की प्रीति खट्टी हो जाती है। वे विवाह जो स्त्री-पुरुष के परस्पर सुख और प्रीति को बढ़ाते थे, इन ही के कारण प्राणलेऊ होगये थे। वे अधिकार जिनसे बहुत जीवों का उपकार और पालन होता था, इन्हीं के माहात्म्य से जाते रहे। वे उपदेश और शिक्षा जिनसे सैकड़ों प्राणियों को लाभ पहुँचता था, इन्हीं के प्रभाव से निष्फल हो गये।

इन्हीं की कृपा से बहुतेरी कुमारियों की प्रतिष्ठा में बट्टा लग गया। वे स्त्रियाँ जिनका सब आदर और सत्कार करते थे, इन्हीं के द्वारा निन्दित मान ली गईं। यही बहुधा माता, पिता और पुत्र के बीच में विष बो देते हैं। इन्हीं के कारण ऐसे ऐसे मित्र जो जीवन पर्य्यन्त एक दूसरे की सहायता करते आपस में फूट गये। जीवों को इनके कारण बड़े दुःख होते हैं। कटु वचन और विष अदृश्य और अलक्ष्य होता है। बहुधा वह विष, जो मनुष्य के शरीर को नाश कर देता है, यत्नों से जान लिया जाता है, परन्तु कटु वचन का विष मनुष्य के चित्त पर ऐसा घाव मारता है कि वह किसी प्रकार से जाना ही नहीं जाता।

कठोर वचन जब एक बार मुख से निकल गया तब फिर कितना ही पछताओ नहीं लौटाया जा सकता। जैसे एक तीर वृक्ष में मारा जाय तो फिर उसके निकालने में बड़ा परिश्रम चाहिए। यदि निकल भी आवे तो चिरकाल तक उस में घाव बना रहता है। इसी प्रकार कटु वचन कभी कभी एक बड़े स्नेही के चित्त में खेद डाल देता है। बहुधा देखा गया है कि बड़े नामी और प्रसिद्ध जनों को एक अन्यथा वचन निकल जाने का पछतावा वर्षों तक रहा परन्तु वह कहा अनकहा क्योंकर हो सकता है। जब ऐसी बातों का हम विचार करते हैं तब हाय, कैसा पश्चात्ताप होता है कि मनुष्य के चित्त को पाप ने कैसा वश में कर लिया है और सत्य कैसा लोप हो गया है। लाभकारी और सुन्दर विद्या के प्रसङ्ग और उपदेश तो चाहे भूल जायँ, परन्तु कड़ुवे वचन सदा ध्यान में बने रहते हैं। कितना ही समय क्यों न बीत जाय,

ही द्रव्य क्यों न व्यय किया जाय, परन्तु कठोर वचन का घाव कभी नहीं मिटता । कटु वचन का विष सब ग़रीब और अमीर के समान ही चढ़ता है । सम्भव है कि जब तुम इसे पढ़ रहे हो, कोई तुम्हारी निन्दा कर रहा होगा और तुम्हारी बुद्धिमानी को क्रूरता, वीरता और साहस को ढिठाई, मृदुता और कोमलता को यश-प्राप्ति करने का दिखावा कहते होंगे । अहो ! वाक्शक्ति मनुष्य को ईश्वर ने कैसी कृपा करके दी है । अहो ! कैसा अचम्भा है ! कौन बता सकता है कि किस प्रकार से मन में तरङ्ग उठती है और फिर किस ढङ्ग से वह चित्त की वृत्ति मानुषी वचन बन के मुख से निकलती है । निस्सन्देह यही बड़ी ईश्वरीय कृपा है और सत्कर्मों के लिए दी गई है । हम अपने वचन के द्वारा दुःखित जनों की आत्मा को सन्तोष दिला सकते हैं, अज्ञानियों को शिक्षा कर सकते हैं, थके हुओं का जी बढ़ा सकते हैं, बलहीनों को पुष्ट कर सकते हैं, दुविधा करने वालों को ढाढ़स बँधा सकते हैं और मरते हुए के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं ।

यदि हम ईश्वर की ऐसी परम कृपा को व्यर्थ और असत् कामों में लगावें तो महापाप होगा । हाय ! यह अवगुण बहुधा सांसारिक मूर्ख मनुष्यों में पाया जाता है, परन्तु विद्या के प्रचार से कहीं कहीं अब घटती पर है । निस्सन्देह सब सत्कर्मों और धर्मों का मूल अपने मुख के वचन का निर्वाह और सत् असत् का विचार है । क्या बिना इसके आपस का मेल, विश्वास और भरोसा हो सकता है, जो मनुष्य जाति की उन्नति और वृद्धि के लिए आवश्यक है ?

नीति

इस निम्नलिखित लेख में बुरी प्रकृति का विचार किया है। परन्तु सब प्रकृति चार भाँति की हैं ऐसा नियम रक्खा है।

१—चार प्रकृति ईश्वर के प्रसन्न करने की हैं—

(१) माता, पिता और गुरु की सेवा।
(२) जीवन पर्य्यन्त ईश्वर के उपकारों को न भूलना।
(३) अपने सर्व व्यवहारों को ईश्वराधीन जानना।
(४) जो कुछ कर्म करना तो जितेन्द्रिय होकर करना।

२—चार प्रकृति ईश्वर के अप्रसन्न करने की हैं—

(१) वृथा किसी सत्पुरुष को कलङ्क देना।
(२) माता, पिता और गुरु को कष्ट देना।
(३) धर्मच्युत पुरुष की साक्षी देना।
(४) कुलधर्म्म के विरुद्ध जीविका करना।

३—चार प्रकृति बड़े पुरुषार्थियों की हैं—

(१) सत्यवादी होना।
(२) संसार को असार जानना।
(३) भिक्षुक को दान देने में नेत्रों को सम्मुख करना।
(४) दुख सुख में समान धैर्य्य रखना।

४—चार प्रकृति असन्तोषियों की हैं—

(१) बिना बुलाये किसी के घर जाना।
(२) मित्र, शत्रु और ज्ञान-हीन से अपने घर का रोना रोना।
(३) धनियों के सम्मुख अपने को धनी सा मान

(४) आधी रोटी अपनी छोड़ कर दूसरे की सारी रोटी पर ध्यान देना ।

५—चार प्रकृति सूमड़ों की हैं—

(१) मित्रों से मुँह छिपाना ।
(२) किसी को देते देख कर दुःखी होना और चिन्ता करना ।
(३) अतिथि को देख कर मुँह फेर लेना ।
(४) निज सर्वस्व यत्न और आयु स्वधन-संचय में बिताना ।

६—चार प्रकृति निर्धन होने की हैं—

(१) आलसी होना ।
(२) सब कार्यों में मूर्खता होनी ।
(३) हित को अहित समझना ।
(४) हर एक के देखने की अदेखा करना ।

७—चार प्रकृति पाण्डित्य की हैं—

(१) विद्या में प्रेम करना ।
(२) वृद्ध और साधु की सेवा में सावधान होना ।
(३) भोजन करना और मित्रवर्गों को उदारतायुक्त कराना ।
(४) जो कोई अतिथि आवे तो उसके आतिथ्य अर्थात् सेवा में तत्पर होना ।

८—चार प्रकृति मूर्ख की हैं—

(१) विद्या में निरुत्साही होना ।
(२) नीच का सङ्ग करना ।
(३) चाकरों के होते हाट हाट वस्तु खरीदते फिरना ।
(४) अहङ्कार में लिप्त रहना ।

९—चार प्रकृति सन्तों की हैं—

(१) लघु भोजन।
(२) लघु शयन।
(३) लघु वार्तालाप करना।
(४) हरि-नाम-स्मरण अष्ट प्रहर करना।

१०—चार प्रकृति दानवों की हैं—

(१) नित्यशः भोजन अधिक करना।
(२) अभक्ष्य-भक्षण में प्रीति करना।
(३) निष्प्रयोजन विश्वद्रोही होना।
(४) मनुष्य मात्र को दुष्ट उपदेश से भ्रष्ट करना।

११—चार प्रकृति पशुओं की हैं—

(१) भगवत्-स्मरण से सदा विमुख होना।
(२) हित अनहित वास्तव में न जानना।
(३) लोलुप होना।
(४) अश्लील भाषा में अभ्यास करना जिसमें प्रायः निन्द्य हो।

१२—चार प्रकृति नम्रता की हैं—

(१) सर्वदा सज्जनों का भय करना।
(२) मनुष्यमात्र के अधीन होना।
(३) दीनों की चित्तवृत्ति पर सर्वदा ध्यान देना।
(४) विद्वानों का संग करना।

१३—चार प्रकृति अहङ्कारियों की हैं—

(१) वृद्धों के वाक्यों का खण्डन करना।
(२) अपने कहे को श्रेष्ठ मानना।

(३) अपने को संसार भर में भला समझना ।
(४) औरों के प्रणाम का उत्तर न देना ।

१४—चार प्रकृति सत्यवादी की हैं—

(१) अपना वचन पूर्ण करना ।
(२) गणित करने में उत्साही होना, अर्थात् जिनका लेन देन हो उसको गणित करके समझा देना ।
(३) समझ करके खर्चा चलाना ।
(४) गुप्त और प्रकट वस्तु में समानशील होना ।

१५—चार प्रकृति मिथ्यावादी की हैं—

(१) मिथ्या शपथ करना ।
(२) भरोसा देकर विश्वासघात करना ।
(३) लिखे पर प्रतीति नहीं करना ।
(४) बलपूर्वक मिथ्या साक्षी ढूँढ़ना ।

१६—चार प्रकृति लज्जा की हैं—

(१) मधुरभाषी होना ।
(२) सर्वदा धैर्य्ययुक्त रहना ।
(३) चातुर्य्ययुक्त रहना ।
(४) गलियों में, मेलियों में, स्त्रियों में बहुधा न जाना ।

१७—चार प्रकृति निर्लज्जों की हैं—

(१) पनघट में बैठना ।
(२) धनिकों के निकट बिना प्रयोजन बैठना ।
(३) बिना विचारे हर एक से बोल बैठना ।
(४) स्त्री गणों से वाक्युद्ध करना और उनको देखना ।

१८—चार प्रकृति बहुत भली हैं—

(१) किसी से माँगना नहीं।
(२) गम्भीर हृदय होना।
(३) लज्जा में प्रेम रखना।
(४) अपने भाग का भोजन भी बाँट कर खाना।

१९—चार प्रकृति बहुत बुरी हैं—

(१) सूम होना।
(२) अहङ्कारी होना।
(३) निर्लज्ज होना।
(४) अपूर्ण मित्रता में पूर्ण भरोसा करना।

२०—चार प्रकृति अदब की हैं—

(१) अपने वृद्धों का मान रखना।
(२) सद्गुरु की शोभा को बढ़ाना।
(३) सभा में बिन पूछे नहीं बोलना।
(४) सर्व समय में शरीर शुद्ध रखना।

२१—चार प्रकृति शुद्ध हैं—

(१) मुख धोकर ताम्बूल भक्षण करना।
(२) भोजन के पश्चात् खरका करना।
(३) उज्ज्वल वस्त्र पहनना।
(४) शरीर को पवित्र रखना, हुक्का नहीं पीना।

२२—चार प्रकृति पुरुष को प्रतिष्ठित करती हैं—

(१) गूढ़ वार्त्ता किसी से न कहना।
(२) परधन और परदारा पर दृष्टि न देना।

(३) गुरु लोगों से मान न चाहना।
(४) जिह्वा से दुर्वचन ग्रामीण शब्द न कहना।

२३—चार प्रकृति कठोर हृदय की हैं—

(१) मित्रों को दुःख देना।
(२) बिना अधिकार प्रवेश करना।
(३) बिना बुलाये बोलना।
(४) जो बहिरङ्ग है, अपना हाल नहीं जानता, उसके घर जाकर सब गृह का चरित्र कहते रहना।

२४—चार प्रकृति चातुर्य्य की हैं—

(१) जो कोई बोले उसके एक ही अक्षर से जो उसके जी में है सब जान जाना।
(२) और जो कुछ गुप्त पाण्डित्य है उसको भी समझ जाना।
(३) मित्रों की चित्तवृत्ति को समय-अनुसार जान कर उचित अनुमति देना।
(४) जो कुछ सन्देश किसी से कहना हो तो प्रथम उस को समझ कर जिसके पास जाना उसको दृष्टान्त-प्रमाण से समझाय देना।

२५—चार प्रकृति अज्ञानता की हैं—

(१) साधुओं और परदेशियों से हास्य करना।
(२) सभा में अनधिकार बैठना।
(३) वृथा अपवाद में तत्पर होना।
(४) छोटे बड़े का ध्यान न करके मनमानी बकना।

२६—चार प्रकृति प्रतिष्ठित पुरुषों की हैं—

(१) बहिरङ्ग को कदापि अन्तरङ्ग न होने देना।

(२) किसी से किसी तरह की चाह न करना।
(३) नातेदार और धनियों के घर में कम जाना।
(४) जिस घर में दरिद्र हो उसकी सहायता करना।

।—चार प्रकृति अप्रतिष्ठित पुरुषों की हैं—

(१) पुत्र और मित्र को दुःखी, अशन और वसनादिकों से विमुख, रख कर आप चैन उड़ाना।
(२) नाते गोते के भरोसे अपने को संसारी धनी मान कर गर्व करना।
(३) घर की वस्तु बेच कर जुआ खेलना।
(४) जो अपना भेद नहीं जानता उसे अपना भेद सुनाना।

नीति

क्योंकि धर्म्म ही सब प्राणियों का राजा व पालक है, उसी के द्वारा मनुष्य शासित होता है। यह जीव धर्म्म ही के होने से मनुष्य गिना जाता है, अन्यथा आहार, निद्रा, भय इत्यादि सांसारिक सुखों में पशुओं के समान है। यह धर्म्मयुक्त नीति मनुष्यत्व का मूल है। मनुष्य संसार में चाहे जितने पाप पुण्य करे, चाहे जिस उच्च पदवी को पहुँच जाय, परन्तु विना धर्म्म के वह फीका है। नेपोलियन, जो बड़ा प्रतापी व बलवान् राजा था, जिसने अपने प्रताप-मार्तण्ड से सम्पूर्ण पश्चिमी राजाओं को अपनी बलरूपी किरणों के द्वारा तेज-हीन कर दिया; उसने अपनी सम्पूर्ण आयु देशों के विजय करने में विताई। उसने किसी अवसर पर अपनी यह उत्तमता

नहीं प्रकट की जो उदारता व परोपकार-जनित वृत्तियों से होती है। केवल विजयी सेनापति और देशाधिकारी जब धर्मच्युत होने के कारण मानुषी महत्त्व को न पा सके। हार्टनी साहब का वचन है कि जितना अहङ्कार और ईर्ष्या, गणित और दर्शन शास्त्रों के जानने वालों में पाया जाता है उतना और किसी में नहीं। यह बात कुछ आश्चर्य्यमूलक नहीं। पवन के समान इन्द्रियों के वेग को रोक कर उन्हें अपने अधीन करना महा कठिन है, क्योंकि इन्द्रिय-वेग असह्य और दुराराध्य है। क्योंकि सब कर्म्म इन्द्रियों ही के द्वारा होते हैं, इसलिए इन्द्रियों के वेग को रोक कर नीति-धर्म्म में कीर्त्ति का पाना सहज नहीं। जब मनुष्य उस उत्तमता को प्राप्त करके अत्यन्त आदरणीय और शोभायमान होता है। लार्ड बैरन के लिए कवि होना सहज था, धूम-यन्त्र का शीघ्रगामी होना प्राकृतिक गुण था, परन्तु उस कवि को ज्ञानवान् होना, असन्तोष को चित्त से दूर रखना, अपने मन को वश करना, ज्ञानी सुजन के समान आचरण रखना; यह कठिन था। इसका उसने कभी तृणमात्र भी विचार न किया। ऐसा कुशाग्र-बुद्धि और श्रेष्ठ कवि होने पर भी वह नीति-धर्म से विमुख रहने के कारण परम दुःखी रहा और उनके लिए उपदेश का हेतु हुआ जो दूसरों की दशा देख कर उपदेश पाने की इच्छा किया करते हैं। उन सब मनुष्यों को जो जीवनरूपी समुद्र में डूबने से बचा चाहते हैं, योग्य है कि धर्मशास्त्र के इस उपदेश को चित्त की पटरी पर सदैव लिखे रहें। मनुष्य को एक बात अत्यन्त आवश्यक है—इतना आवश्यक धन, सामर्थ्य, बल और चातुरी नहीं, यश और स्वतन्त्रता वरन् आरोग्यता तक नहीं; जैसा शुद्ध

आचरण और वश किया हुआ मन है। केवल यही हमें सांसारिक तापों से बचा सकता है। यदि हम इसकी सहायता से न बचें तो फिर कोई उपाय बचने का नहीं। इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं कि जब एक मनुष्य आलस्य कर के यह विचार कर कुछ न करे कि "मैं अधिकतर न सुधरूँगा तो बिगड़ूँगा भी नहीं" तो वह अवश्य बिगड़े बिन न रहेगा। मानुषी स्वभाव के सद्गुण जब तक भली भाँति न शोधे जायँ, तो और बिसराये हुए कामों के समान वह भी व्यर्थ, हततेज और निर्जीव हो जाते हैं। इस कारण हमें उचित है कि सत् पुरुषों के समान कमर बाँधें और श्रद्धा रख सुखपूर्वक जीवन समाप्त करें।

अब हमको इस लेख के समाप्त करने के प्रथम यह विचारना बहुत उचित है कि नीतिधर्म्म और ईश्वरभक्ति में क्या सम्बन्ध है। इस बात को बहुधा मनुष्य नहीं समझते। कितने विदेश-मतवादी उपदेशकों का नीति-विषय में यह मत है कि उसको ईश्वराराधन से मानों कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। यह महा अनर्गल और उनकी अल्पबुद्धि तथा अज्ञानता का चिह्न है जिनका कि ऐसा शास्त्रविरुद्ध बुद्धि से अग्राह्य खोटा मत है। निःसन्देह अशोकादि राजाओं के समान बुद्धिमान् जन सांसारिक विषयों में भले और सुजन हो सकते हैं। बुद्धि और पवित्रता में अपना जीवन काट सकते हैं, यह विश्वास करते हुए कि संसार की अद्भुत रचना अपने आप स्वयम् हो गई है इसका कोई उत्पादक नहीं है। जो भौतिक प्रकृति के नियम उनके फल, उनके स्वाभाविक चुनाव, यथायोग्य दशा, बाह्य संयोगों का यथोचित मेल, और ऐसी ही और नास्तिकता के प्रमाण यह

सिद्ध करने के लिए दिया करते हैं कि सृष्टि की रचना २४ तत्त्वों के द्वारा होना प्राकृतिक है। परन्तु तत्त्वदर्शी ज्ञानवान् मनुष्य ऐसे ज्ञानियों के विचारों को तुच्छ बुद्धि का फल समझते हैं और उनके नीति-धर्म्म एक ऐसे मनुष्य की नाई हैं जो अपने सब राज पर प्रसन्नतापूर्वक देखे, राजा की सेना में उत्साहयुक्त काम करे और अपने नगर के निमित्त वीरतापूर्वक युद्ध करे, परन्तु अपने राजा के सन्मुख आने पर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम न करे। यदि ऐसा जन राजद्रोही न माना जायगा तो बेढङ्गा, असभ्य, उजड्ड और शीलहीन तो गिना ही जायगा। ठीक इसी प्रकार वे नास्तिक हैं जो विना ईश्वर को माने नीति-धर्म्म को मुख्य समझते हैं। ऐसे नर ठीक उस मूर्ख के समान हैं जो अपने गले में फाँसी लगाने के लिए रेशम को बटता है। वे अज्ञानी ऐसे हैं जिनको सदा अपनी विद्या का मद बना ही रहता है। उसके अतिरिक्त किसी को नहीं मानते जिसको कि वे नेत्रों से देख सकें और हाथ से छू सकें; परन्तु वे अल्प-बुद्धि नर नहीं जानते कि हमारी विद्या और ज्ञान से परे कोई दूसरा पदार्थ है, और वह अनन्त जीवन है, जीवन केवल बलवती बुद्धि है और बुद्धि ईश्वर का दूसरा नाम है। इस सर्वोत्कृष्ट तत्त्व को त्याग करके नीति की शिक्षा ऐसी नितान्त व्यर्थ है कि विना जेम्सवाट साहब* की बुद्धि के धुएँ की गाड़ी बन गई। यह कहना ऐसा है कि जैसे कोई एक नगर भर के पानी के नलों का चित्र तो उतार ले और यह न लिखे कि उनमें जल कहाँ से आता है; अथवा कोई सब देह का चित्र उतारे और शिर न उतारे। इस कारण हमारे पाठकों को उचित है कि विना

*प्रथम इन्हीं ने इंजन निकाला है।

अपने सनातन सद्धर्म्म के अनुयायी हुए वर्त्तमान काल के फीके नीति-धर्म्मों को न मानें। चित्त का निर्मल और सद्भाव रखना यही सब धर्म्मों का मूल जनक है जो देवाराधन के बिना मिल ही नहीं सकता।

अब हम थोड़े उन सद्धर्म्मों का वर्णन करेंगे जिनके पाने के निमित्त उन युवा नरों को सद्भाव से अभिलाषी होना योग्य है जो आनन्दपूर्वक धर्म्मसहित अपना सांसारिक जीवन बिताना चाहते हैं; इस सांसारिक जीवनरूपी रणभूमि में ऐसे दैवी अवसर और काल आ जाते हैं जिनमें धैर्य्य और वीरतायुक्त काम करने से सुन्दर जय मिलती है, और तनिक ही चूकने पर उलटी मुँह की खानी पड़ती है। गुलाब वसन्त ऋतु में फूलते हैं इसी भाँति कोई कोई उत्तम गुण और धर्म्म ऐसे हैं जो बाल्यावस्था में न प्रकट हुए तो दीर्घायु होने पर उनके होने की कोई आशा हो ही नहीं सकती।

आज्ञापालन।

प्रथम गुण और धर्म्म जो सब प्राणियों में होना योग्य है, अपने माता, पिता, गुरु तथा मान्य पुरुषों की आज्ञा का पालन करना है। आज कल, बहुधा नवशिक्षित पुरुष स्वतन्त्रता को बहुत प्रिय समझते हैं, परन्तु पहले यह समझ लेना अवश्य है कि इस शब्द का अर्थ क्या है। स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है—स्वतन्त्रता का यह अर्थ है कि एक जन सम्पूर्ण सामाजिक कृत्रिम दुःखदायी बन्धनों से मुक्त रहे, ऐसी स्वतन्त्रता निस्सन्देह बहुत ही अच्छी वस्तु है, परन्तु उस की भी यथोचित सीमा है। जीवन की दौड़ में वह चलने का स्थान है। वह मनुष्य के लिए

नाट्यशाला बनाती है, परन्तु यह कुछ नहीं प्रकाश करती कि वहाँ क्या खेल खेलें। अन्त में जीवन भर के सब काम स्वतन्त्रता के बदले धन की श्रेणी होते हैं, सब ऐहिक नियम बन्धन ही के हेतु होते हैं। परन्तु नियमानुसार चलना ज्ञानी महात्मा जनों के सदृश रहना है। बहुधा नियम जिनके अनुसार चलना मनुष्य का परम धर्म्म है वे ही नहीं होते जिन्हें उसने हर्षपूर्वक अपने निमित्त नियत किये हों, वरन् वे रहते हैं जिन्हें दूसरे महात्मा पुरुषों ने मनुष्य जाति की उन्नति, सुख और भलाई के लिए बाँधे हों। बस यह सिद्ध है कि वह जो समाज का सुशील, हितकारक और प्रिय सभासद होना चाहे प्रथम आज्ञापालन के धर्म्म को सीखे। देश-व्यवस्था, राजप्रबन्ध, नियमित धर्म्म और जीवन के सब काम इसी सिद्धान्त के मूल पर ठहरे हुए हैं। एक मनुष्य को केवल अपने ही विषय में स्वतन्त्रता हो सकती है। उसको इतनी स्वतन्त्रता न देनी उनकी मनुष्यता नष्ट करनी है। इसके बिना वह केवल एक यन्त्र के सदृश होगा। परन्तु समय पर वह उन नियम और बन्धनों से पृथक् नहीं हो सकता जो सबको बाँध कर एकत्रित किये हुए हैं। यद्यपि वह समाज में सबसे उच्च पदवी पर पहुँच गया हो, परन्तु तो भी इन बन्धनों से स्वतन्त्र नहीं हो सकता, वरन् उस दशा में वे बन्धन और नियम और अधिक वेग से अपना बल और प्रभाव उस पर प्रकट करते हैं जैसा पाँव पर उनके आनन्दित और सुखी होने का प्रभाव होता है वैसा ही प्राणी के शिर तथा सर्वाङ्ग में होता है। समाज में प्रत्येक सभ्य का उसकी रक्षा के निमित्त यह परम धर्म्म है कि नियमित व्यवस्थाओं का पालन करे।

महात्मा 'पाल' ने इस धर्म्म का बड़ी गम्भीरता और बुद्धिमानी से प्रतिपादन किया है । जब कभी तुम्हारे मन में सामाजिक नियमों के उल्लंघन करने की इच्छा हो आवे और वे तुम्हें असह्य मालूम होवें, तो मेरी सम्मति है कि तुम कारनेथियन के १२ अध्याय के १४ से ३१ पद तक ध्यानपूर्वक पाठ करो । नियम के विरुद्ध अपनी इच्छा के अनुसार काम कर बैठना द्वार की सन्धि के समान है, जो इस प्रकार चौड़ी होती होती कालान्तर में बड़े क़िलों के समान हो जायगी । एक रोमी इतिहास-लेखक बड़े यूनिक युद्ध के सेनापति से इस गुण को बड़ी प्रशंसा के साथ कहता है कि वह आज्ञापालन और आज्ञा देना दोनों जानता था । इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि आज्ञापालन और आज्ञा देना दोनों परस्पर एक दूसरे से परम विरुद्ध बातें हैं, परन्तु तथापि एक के भली भाँति साधन करने से दूसरा गुण प्राप्त होता है । वह जो केवल आज्ञा ही करने की प्रकृति रखता है, और जिसने प्रथम आज्ञापालन करना नहीं सीखा, उन नियमों को नहीं जानता जो बल और सामर्थ्य के साथ उसके लाभ के अर्थ लगाये रहते हैं । बालकों को योग्य है कि प्राचीन रोमन लोगों की भाँति अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन करें, यह गुण बालकों में अत्यन्त प्रशंसनीय होता है; जिस काम को बड़े करने की आज्ञा करें उसको यथावत् पालन करना योग्य है । माता, पिता, गुरु और स्वामी किसी की बात से इतना प्रसन्न नहीं होते जितना कि उनके नियमानुसार सत्यतापूर्वक निर्धारित समय पर नियमित काम करने से होते हैं, इसमें कुछ अचरज नहीं । क्योंकि प्रत्येक जन को अपना अपना बन्धेज और सत्यता के साथ करने से सब समाज

में आनन्द और एकता का सुख बना रहता है। घड़ी के ठीक ठीक चलने से निश्चित समय जान लिया जाता है। यदि तुम्हारा नियत कार्य्य दूसरे मनुष्य के काम के अन्तर्गत आवश्यक जोड़ है तो तुम उसके हेतु घड़ी हो, और उसको तुम्हारे ऊपर भरोसा करना पड़ता है।

एक समाज के किसी सभ्य के लिए इससे अधिकतर कुछ भी प्रशंसासूचक नहीं हो सकता कि वह काम जिसके करने की उससे आज्ञा की जाय तन, मन से करे और सदैव उसी समय पहुँचे जब उसके पहुँचने की आशा की जाय।

जनमेजय और वैशम्पायन का संवाद।

भरतखण्ड के मध्यवर्ती विन्ध्याचल के समीप एक विन्ध्यानन नाम वन है। उसके मध्य में गोदावरी नदी के तट पर अगस्त्य ऋषि का आश्रम था जहाँ त्रेतायुग में श्रीभगवान् रामचन्द्र पिता की आज्ञा मान कर, सीता-लक्ष्मण-सहित पञ्चवटी में पर्णशाला बना कर कुछ दिन टिके थे; जहाँ दुष्ट रावण-प्रेरित मारीच नाम निशाचर ने सोने का मृग बन कर सीताहरण कराया था, जहाँ जानकी-वियोग-ग्रसित राम और लक्ष्मण सजल नयन और गद्गद वचन से नाना प्रकार का विलाप और सन्ताप करते थे, जिसको अवलोकन कर वहाँ के पशु, पक्षी और लता द्रुमादिक भी दुःखित होते थे। उसी आश्रम के समीप एक पम्पा नाम सरोवर था, जहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने एक ही तीर से सात ताल को वेध कर बालि को मारा था। उस स्थान के बहुत निकट एक बड़ा भारी शालमली का वृक्ष है, उसकी जड़ में एक बड़ा अजगर बहुत दिनों से

रहता था, उस वृक्ष की शाखा इतनी लम्बी और छतनार थी, माने गगनमण्डल के नापने के लिए हाथ फैलाये है, और उसकी पेड़ी इतनी ऊँची थी जैसे कोई पृथ्वी के चतुर्दिक् देखने को सिर उठाये हो। उस वृक्ष के खोखलों में फुगनी पर भाँति भाँति के पत्तों का खोता बना कर अनेक प्रकार के शुक, सारिका और भाँति भाँति के पक्षी सुखपूर्वक वास करते थे। वह वृक्ष बड़ा पुरातन था और पतझाड़ होने पर भी उसमें रहनेवाले पक्षियों के बच्चों के रात्रि दिन उसमें रहने से वह पल्लवमय दीख पड़ता था; उस पर के पंखरहित शावक कभी कभी उसके फल समान जान पड़ते थे। पक्षिगण अपने अपने खोते में सोते और प्रातःकाल आहार की खोज में गोल बाँध कर नभमार्ग में उड़ जाते; उस समय ऐसी शोभा मालूम होती थी जैसे कोई हरी दूब से विकसित खेत उड़ा चला जाता है। वे सब दिग्दिगन्त में आहार एकत्र कर आप भी खाते और अपने बच्चों के लिए मुँह में भर भर कर ले आते थे।

उसी प्राचीन वृक्ष के एक खोखले में मेरे माता-पिता भी रहते थे। दैवसंयोग से मेरी माता गर्भवती हुई और मेरे उत्पन्न होने के अनन्तर प्रसवपीड़ा से व्याकुल हो मर गई। पिता हमारे बड़े वृद्ध थे और स्त्री के मरने से यद्यपि अधिक शोकचित्त हुए, तथापि प्रीतिवश हो, शोक को छोड़ हमारे लालन पालन में समय काटने लगे। यद्यपि उनको चलने की कुछ शक्ति न थी, तब भी धीरे धीरे उस वृक्ष के नीचे उतर कर जो कुछ आहार पृथिवी पर गिरा हुआ मिलता उसे लाकर मुझे खिलाते और बचा खुचा आप खाते थे। एक समय प्रातःकाल चन्द्रमा के अस्त होने पर जब पक्षिगण कोलाहल

कर रहे थे, और बाल-अरुण के उदय होने से गगनमण्डल रक्तवर्ण हो रहा था और आकाशस्थित तिमिररूपी धूलि सूर्य की किरणरूपी झाड़ू से परिष्कृत हो गई, और सप्तर्षि लोग स्नानादि आह्निक कर्म्म के निमित्त मानसरोवर के तट पर उतरे, उसी समय उस वृक्ष में रहने वाले पक्षी भी सब अपनी अपनी इच्छानुसार देश-देशान्तर को चले। उनके बच्चे चुपचाप खोतों में बैठे थे, और मैं भी अपने पिता के पास बैठा था, कि अचानक मृगया का शब्द सुनने में आया। कहीं सिंह गम्भीर-स्वर से गर्ज रहे हैं, कहीं घोड़े, हाथी और मृग आदि वनैले पशु वन को मथन कर रहे हैं, कहीं बाघ, रीछ और सुअर आदि भयानक जीव दौड़ रहे हैं और कहीं महिष आदि बड़े बड़े जन्तु बड़े वेग से इधर उधर घूम रहे हैं, जिनके शरीर के धक्के से वृक्ष, लतादि टूट रहे हैं। हाथियों के चिक्कार और घोड़ों के हिनहिनाने से, तथा सिंह के गर्जन और पक्षियों के कलरव से, वन कोलाहलमय हो गया और पेड़ सब भय के मारे काँपने लगे। मैं उस कोलाहल को सुन कर बहुत डरा और काँपने लगा, पिता के पंख के नीचे जा छिपा, वहीं से व्याधा लोगों की बातें सुन रहा था। वे कहते थे कि देखो वह सुअर आता है, वह हरिण दौड़ता है और वह हाथी जाता है, इत्यादि।

जब आखेट का कोलाहल बन्द हुआ और जङ्गल में सन्नाटा हो गया, मैं धीरे धीरे पिता के पंख के नीचे से निकल कर खोते के बाहर शिर निकाल कर जिधर शब्द होता था उसी ओर देखने लगा तो क्या देखता हूँ कि कृतान्त के सहोदर के समान महाविकरालरूप एक सेनापति के सङ्ग यमदूत

की नाईं बहुत से व्याधा चले आते हैं; उनको देख कर साक्षात् भूतों के मध्य में स्थित भैरव अथवा दूत सहित कालान्तक यमराज का स्मरण होता था। मद्य की उन्मत्तता से दोनों नयन रक्तवर्ण हो रहे थे और समस्त शरीर में रुधिर लगा हुआ था और सङ्ग में बहुत से बड़े बड़े कुत्ते थे। उन्हें देखने से यह विदित होता था कि जैसे कोई भयङ्कर असुर वन-पशुओं को पकड़ पकड़ खाता चला आता है। व्याधों को देख कर मैंने मन में विचारा कि ये कैसे दुष्कर्म्मी और दुराचारी हैं, जङ्गल इनका घर है; मद्य और मांस आहार, धनुष धन, कुत्ते मित्र और बाघ, सिंह आदि हिंसक जन्तुओं के साथ वास और पशुओं की प्राणहत्या इनकी जीविका है। इनके हृदय में दया का लेश भी नहीं है और न अधर्म का कुछ भय है; और सत्कर्म तो जानते ही नहीं कि किसे कहते हैं; ये लोग सदा धर्म्मपथ को त्याग निन्दित और घृणित बने रहते हैं। मैं इस प्रकार तर्कना कर रहा था कि वे मृगया की थकावट को उतारने के लिए उसी वृक्ष के नीचे आ बैठे जिसमें मैं रहता था, और एक निकटवर्ती सरोवर से जल-मृणाल ला कर जलपान किया और फिर चले गये।

उस सेना में से एक वृद्ध को उस दिन कुछ आखेट नहीं मिला था, वह उनका साथ छोड़ उसी वृक्ष के नीचे खड़ा रहा। जब वे सब चले गये, उसने अपने लोहितवर्ण नेत्रों से एक बेर वृक्ष को नीचे से ऊपर तक देखा। उसके देखने ही से उसमें के बच्चों का प्राण उड़ गया। हाय! दुष्टों को कोई कर्म्म असाध्य नहीं है। जैसे निसेनी द्वारा अटारी पर चढ़ने में किसी को क्लेश नहीं होता, उसी तरह वह दुष्ट काँटों से घिरे हुए

वृक्ष पर वड़ी सरलता से चढ़ गया और एक एक खोते से बच्चों को निकाल निकाल उनका प्राण ले ले कर पृथिवी पर पटकने लगा। पिता हमारे वृद्ध तो थे ही, इस दैवी आपत्ति के आने से वड़े दुःखी हुए। भय से शरीर काँपने लगा और तालू सूख गया। इधर उधर देखते थे, परन्तु प्राण रक्षा का कोई उपाय देख नहीं पड़ता था। तब हमको अपने डैने के मध्य में लेकर छाती के नीचे छिपा कर बैठे। उस समय मैंने देखा कि उनके नेत्रों से आँसू की धारा का प्रवाह निरन्तर चल रहा था। उस व्याधा ने क्रमशः हमारे खोते के समीपवर्ती बच्चों को मारते हुए अपने करकराल-सर्प द्वारा मेरे पिता को भी पकड़ा। यद्यपि पिता ने उसको यथाशक्ति अपने टोंटों से भली भाँति मारा और काटा, परन्तु उसने छोड़ा नहीं, वरन् खोते से निकाल खूब मारा, और प्राणान्त कर के पृथिवी पर फेंक दिया। मैं भय से व्याकुल हो पिता के पंख में चिपट गया था, इससे उसने मुझे नहीं देखा। उस वृक्ष के नीचे सूखे पत्तों का एक ढेर लगा था, मैं उसी पर गिरा परन्तु कुछ चोट न आई।

जब तक बालक अधिक दिन का नहीं होता, स्नेह का सम्बन्ध उसको नहीं सताता, पर भय आजन्म से उत्पन्न हो जाता है; इस हेतु मुझको पिता के मरने का कुछ सोच न हुआ परन्तु डर से व्याकुल हो कर भागने की चेष्टा करने लगा। अपने कंपित चरण और छोटे छोटे पंखों की सहायता से गिरता पड़ता मन में यह सोचता चला जाता था कि अब तो कालग्रास से बचा, और जाकर एक निकटवर्ती तमाल-वृक्ष की जड़ में छिपा। इतने में वह व्याधा वृक्ष से उतर

उन पक्षिशावकों को एक लता से बाँध जिधर वह सेना गई थी उसी ओर चल दिया।

दूर से गिरने और भय के कारण मेरा शरीर थर थर काँपता था और पियास से कण्ठ सूखा जाता था; यह सोच कर कि अब वह व्याधा दूर चला गया होगा, मैंने सिर निकाल कर चारों ओर देखा और परम भयातुर होकर मैं धीरे धीरे चलने का यत्न करने लगा। गिरते पड़ते चलते चलते शरीर धूर से भर गया और साँस फूलने लगी; उस समय मैंने मन में सोचा कि चाहे किसी को कितना ही क्लेश हो, परन्तु वह अपने जीवन की आशा नहीं छोड़ता; मैंने अपने नेत्रों से देखा कि मेरे पिता स्वर्गलोक को सिधारे और मैं स्वयं इतने ऊँचे से विकलेन्द्रिय होकर गिरा, पर अभी तक जीने की आशा कैसी मन में बनी है। हाय! मुझसा निर्दयी कौन है, कि माता मेरे जन्म लेते ही मर गई; पिता मेरी माता के वियोग से विकल हमारे लालन पालन में तत्पर थे और जीर्णावस्था में भी हमारे लिए इतना क्लेश सहते थे; परन्तु मैं सब भूल गया। मुझसा कृतघ्न और दूसरा नहीं; और मैं अपने समान निर्दयी और दुराचारी भी किसी को नहीं देखता। कैसे आश्चर्य्य की बात है, ऐसी अवस्था में मुझको प्यास लगी। दूर से सारस और हंस का शब्द सुन कर मैंने अनुमान किया कि सरोवर दूर है, कैसे वहाँ पहुँचूँगा और जलपान करके अपनी पिपासारूपी अग्नि को शान्त करूँगा।

इसी सोच विचार में मध्याह्न हो गया और सूर्य्य अग्निमय किरणों से संसार को सन्तप्त करने लगे। मार्ग

की चद्दर" की भाँति उष्ण हो गया और बालू में मेरा पाँव भुनने लगा।

यद्यपि मरने की कोई इच्छा न थी, पर उस समय के क्लेश से व्याकुल होकर वारंवार ईश्वर से यही प्रार्थना थी कि प्राण ले ले। आँख के सामने अँधेरा छा गया, प्यास से कण्ठ सूख गया और अङ्ग शिथिल हो गये। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर जाबालि नामक महात्मा ऋषि रहते थे, उनके वीर पुत्र हारीत उसी ओर से सरोवर में स्नान करने जाते थे। उन का तेज ऐसा था जैसे सूर्य्य। मस्तक पर जटा, ललाट में त्रिपुण्ड्र, कान में स्फटिक-माला, बाएँ हाथ में कमण्डलु, दाहिने में दण्ड, कन्धे पर कृष्ण मृगछाला और गले में यज्ञोपवीत सुशोभित था। उनकी शान्त मूर्त्ति देख कर ऐसा जान पड़ता था जैसे शान्तिसागर श्रीपार्वतीवल्लभ महादेवजी मेरी रक्षा को चले आते हैं। साधु लोगों का चित्त कृपालु तो होता ही है, मेरी वह दशा देख कर उनको दया आई और उन्होंने मेरी ओर सङ्केत करके टहलू से कहा, देखो यह एक सुए का बच्चा मार्ग में पड़ा है, ऐसा जान पड़ता है कि इसी शाल्मली के वृक्ष पर से गिरा है; उसकी साँस फूल रही है और नेत्र बंद हो रहे हैं, जान पड़ता है कि बड़ा प्यासा है। यदि थोड़ी देर तक जल न मिलेगा तो अवश्य मर जायगा; चलो हम इसी सरोवर में इसको लेकर जल पिलावें; सम्भव है कि बच जाय। यह कह कर मुझको मार्ग में से उठा लिया। उनके छूने ही से मेरा शरीर शीतल हो गया। अनन्तर इसके मुझे मानस के निकट ले जाकर मेरा मुँह खोल अपनी उङ्गली से जल पिलाया। जल पीने से पिपासाग्नि

शान्त हुई। फिर मुझे स्नान करा के नलिनी-पत्र की शीतल छाया में बैठा दिया। आप भी स्नान कर सूर्य्य को अर्घ्यदान दे भीगा वस्त्र उतार पुनीत शुष्क नवीन वस्त्र धारण कर, मुझको अपने साथ ले, तपोवन की ओर सिधारे। तपोवन के निकट पहुँच कर मैंने देखा कि वहाँ के वृक्ष सब कुसुमित और पल्लवित हो रहे थे और लवंग की सुगन्धि चारों ओर छा रही थी और मधुप पुष्पों पर भ्रमण कर रहे थे। अशोक, चम्पक, किंशुक, मल्लिका और मालती आदि नाना प्रकार के वृक्ष और लता के एकत्र होने और उनकी डालियों के मिल जाने से स्थान स्थान पर सुन्दर सुन्दर रमणीक गृह बन गये थे और उनमें सूर्य्य की किरणें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। बड़े बड़े ऋषि लोग मन्त्र पढ़ पढ़ कर होम कर रहे थे और अग्नि की ज्वाला से वृक्षों की पत्ती मलिन हो रही थी और वायु होम के गन्ध से व्याप्त होकर धीरे धीरे बह रही थी। कोई मुनि-कुमार उच्च स्वर से वेद और कोई शान्तभाव से धर्म्मशास्त्र पढ़ रहे थे। मृगसमूह निःशङ्क चारों ओर भ्रमण कर रहे थे। ऐसे तपोवन को देख मैं बड़ा आह्लादित हुआ। भीतर उस के देखा कि रक्त पल्लव से सम्पन्न लोहितवर्ण अशोक-वृक्ष के नीचे एक पवित्र स्थान में बेत के आसन पर महातपस्वी जाबालि ऋषि बैठे हैं और उनके निकट और और मुनि लोग विराजमान हैं। जाबालि ऋषि बड़े बूढ़े थे और उनके बाल और रोएँ सब पक गये थे, ललाट में बली पड़ गई थी, शिर नीचा हो गया था, पञ्जर और मस्तक की हड्डी निकल आई थी और श्रवणसम्पुट श्वेत लोम से ढक गया था। उनकी मूर्त्ति देखने से जान पड़ता था कि वे करुणारस के प्रवाह, क्षमा

और सन्तोष के आधार, शान्तिरूपी लता के मूल, क्रोध-भुज
के महामन्त्र, सत्पथदर्शक और सत्स्वभाव के आश्रय हैं
उनको देख कर मेरे मन में एक वेर भय और विस्मय दो
उत्पन्न हुए और मैंने कहा कि इनका कैसा प्रभाव है। इन
प्रभाव से वन में हिंसा, द्वेष, वैर और मात्सर्य्य आदि का ना
भी नहीं है। हरिण के बच्चे सिंह के बच्चों के संग सिंही
दूध पीते हैं; हाथी और सिंह परस्पर प्रेम से खेल रहे हैं और
सब धीर-चित्त हो कर शृगालों के संग निर्भय चर रहे हैं और
सूखे वृक्ष भी कुसुमित हो रहे हैं, मानो सतयुग कलियुग
भय से भाग कर इसी तपोवन में आ छिपा है। वृक्षों की शाखा
मुनियों के मृगचर्म, कमण्डलु और मालाएँ लटक रही थीं और
नीचे वैठने के लिए वेदी बनी थीं मानो उस वन के सब वृ
तपस्वियों का वेष धारण कर तपस्या करते थे।

ऋषिकुमार मुझको उसी रक्तवर्ण अशोक के नीचे रख
अपने पिता के चरणकमल की वन्दना कर स्वतन्त्र हो प
आसन पर बैठे। सब ऋषिकुमारों ने मुझको देख कर बड़
आश्चर्य्य माना और हारीत जी से पूछा कि हे सखे, उस शुव
के बच्चे को तुमने कहाँ पाया? उन्होंने कहा कि जब मैं
स्नान करने को जाता था तब इसको देखा कि अपने खोते
से गिर कर भूमि पर लोट रहा था, इसकी वह अवस्था
देख कर मुझे दया आई, परन्तु जिस वृक्ष पर से वह गिरा
था उस पर का चढ़ना कठिन समझ अपने संग लेता आया।
अब चाहिए कि हम सब यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करें। हारीत
की यह बात सुन कर जाबालि ऋषि ने मेरी ओर देखा। उनकी
दृष्टि पड़ते ही मैंने अपने को कृतार्थ जाना। उन्होंने

रिचित की भाँति बारंबार मेरी ओर देख कर कहा कि
ह अपने किये का फल भाेग रहा है। महर्षि त्रिकालदर्शी
, तपस्या के बल से उनको भूत, भविष्य और वर्त्तमान सब
ाल समान ही जान पड़ता था और ज्ञानदृष्टि द्वारा
पूर्ण संसार उनको करतल पदार्थ की भाँति था। सब लोग
नका प्रभाव जानते थे, इसलिए किसी को अविश्वास नहीं
ुआ, वरन् सब व्यग्र होकर पूछने लगे कि महाराज! इसने
या दुष्कर्म और पाप किया है जिसका कि फल अब भोग रहा है!
ूर्व जन्म में यह कौन जाति था और इसने किस प्रकार पक्षी कुल
ं जन्म लिया? कृपा कर इन सब बातों का वर्णन करके हमारी
द्वेगाग्नि को शान्त कीजिए।

महर्षि ने कहा कि निस्सन्देह इसकी कथा उद्वेगजनक
है, परन्तु थोड़े समय में समाप्त नहीं हो सकती; अब सन्ध्या
होती है, मुझको स्नान करना है, और तुम लोगों को भी
देवार्चन का समय हो गया है, आहारादि संपूर्ण नित्यक्रिया
समाप्त करके निश्चिन्त हो कर बैठो तो मैं उसका आद्योपान्त
वर्णन करूँ। ऋषि की यह बात सुन कर मुनिकुमार सब स्नान
पूजा आदि कर्मों में नियुक्त हुए।

अब सन्ध्या समय व्यतीत हो गया; मुनिकुमारों ने रक्त
चन्दन से अर्घ्य दिया था वह उसके अङ्ग में लग कर कैसी
शोभा देता था जैसे लोहित-वर्ण सूर्य्य। तमारि दिनेश की
किरणों ने धीरे धीरे पृथ्वी से कमलवन में और कमलवन से
वृक्षों के शिखर पर और वहाँ से पहाड़ों की चोटी को जाकर
स्वर्ण-वर्ण किया। वायुसञ्चलित पत्ररूप पाणि के द्वारा वृक्ष

सब पक्षियों को अपने अपने खोतों में बुलाने लगे और विह
ने भी कलरव करके उत्तर दिया। मुनि सब ध्यानावस्थित होक
और हाथ बाँध कर सन्ध्यान्वंदन करने लगे और कामधे
के दुहे जाने का शब्द चतुर्दिक् सुनाई देने लगा। हरी ह
कुश अग्निहोत्र की वेदी पर बिछाई गई। तिमिरनाशक के भ
से छिपा हुआ तिमिर प्रकट हुआ। सन्ध्या के क्षय होने
शोक से दुःखित रात्रि अन्धकाररूपी चोर भी, जो सूर्य
प्रताप से छिपे थे; बाहर आये। पूर्व दिशा में चन्द्रमा क
थोड़ा थोड़ा प्रकाश होने लगा, उसकी शोभा ऐसी जान पड़त
थी जैसे प्रियतम के मिलने से पूर्व दिशा मुसकरा रही हो
पहले कलामात्र, फिर आधा, और क्रमशः समस्त मण्ड
सुधाधर का प्रकाश हुआ और अन्धकार का नाश हुआ
कुईं फूली और मन्द मन्द समीर के बहने से मृग आह्लादि
हुए। जीव लोग आनन्दमय, कुमुद गन्धमय और तपोव
प्रकाशमय हुआ।

हारीत भोजन आदि समाप्त करके मुझे ले ऋषिकुमार
के साथ पिता के सन्निकट जा पहुँचे और देखा कि वे ए
बेत के आसन पर बैठे हैं और जलपाद नामक शिष्य पंखा
कर रहा है। पिता के सम्मुख हाथ जोड़ कर खड़े हुए और
बोले कि हे पिता जी! हम लोगों को इस सुए के बच्चे का
वृत्तान्त सुनने की बड़ी इच्छा है, यदि आप कृपा कर वर्णन
करें तो हम बड़े कृतार्थ हों।

महाभारत सभापर्व

नीतिसम्बन्धी प्रश्न

वैशम्पायन जी बोले कि राजन्! एक समय राजा युधिष्ठिर अपनी सभा में बैठे थे। उसी समय नारदजी सौम्य ऋषियों सहित उस सभा में पाण्डवों के देखने को अकस्मात् आ पहुँचे और युधिष्ठिर को प्रीतिपूर्वक जय का आशीर्वाद दिया। नारदजी को देखते ही सब पाण्डव खड़े हो गये और विनययुक्त, दण्डवत करके उनको सुन्दर आसन पर बैठा, अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क इत्यादि से उनकी पूजा की। नारद जी प्रसन्न हो पूछने लगे कि कहो तुम्हारे अर्थ तो सिद्ध होते हैं? मन तो धर्म में लगा रहता है और अन्तरात्मा में ध्यान लगाने पर वह इधर उधर तो नहीं जाता। तुम्हारे पूर्व पुरुषाओं के अर्थ, धर्म व काम तीनों से युक्त आचरणों में तुम्हारी वृत्ति रहती है, अथवा उससे निवृत्त हो गये हो? तुम्हारे अर्थ से धर्म और धर्म से अर्थ और काम और प्रीति से अर्थ और धर्म दोनों को बाधा तो नहीं पहुँचती? तुमने अर्थ, धर्म और काम के करने के लिए काल का विभाग किया है या नहीं अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त्त में धर्म करना; दिन में अर्थ उपार्जन, और रात्रि में विश्राम करने का नियम किया है? दूत और मन्त्रियों को उपदेश करना, शत्रु को दबाने में उत्कृष्टता दिखाना, तर्क में कुशल होना, भूत को शास्त्र से और भविष्य को बुद्धिबल से और नीतिशास्त्र का जानना इत्यादि गुणों को धर्मपूर्वक निर्वाह करते हो? तथा साम, दाम, दण्ड, भेद, मन्त्र, औषध और अपने शत्रु के बलाबल का

विचार इत्यादि सात उपायों की साधना करते हो ? नास्ति-
कता, असावधानी, दीर्घसूत्रता, इन्द्रियों के वश में रहना,
किसी प्रयोजन को अकेला चिन्तवन करना, परम अर्थ रखने
वाले मनुष्यों के साथ विचार करना, क्रोधी रानियों का दर्शन
न करना, निश्चित किये हुए काम को आरम्भ न करना, भेद
को सबसे कह देना, मङ्गल न करना, सब शत्रुओं पर एक
साथ चढ़ाई करना, झूठ बोलना, आलस्य यदि दीखे तो परीक्षा
करते हो ? घोड़ा, हाथी, क़िला, योद्धा, देश, कोष, अधिकारी,
शत्रु, शास्त्र, व्यवहार, दूत, महल, जमाख़र्च, रथ आदि की
गणना, राज्य का प्रबन्ध, अपने शत्रुओं के बलाबल को देखते
रहते हो ? खेती का प्रबन्ध, व्यापार का उपाय, सड़कें, क़िले
और पुल बनवाना, हाथियों को बहुत खाने के कारण से
ग्राम ग्राम में बँधवाना, सोना चाँदी, आदि की खानों पर कर
बाँधना, और उजड़े हुए अथवा शून्य देश को बसाना इत्यादि
सब करते हो ? तुम्हारी सब प्रकृतियाँ अर्थात् क़िले के रक्षक
सेनापति, धर्म्माध्यक्ष, चमूपति, पुरोहित, वैद्य, ज्योतिषी,
अमात्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना, नष्ट तो नहीं हैं,
अर्थात् ऐसा तो नहीं है कि धन का लोभ देख कर तुम्हारे
शत्रुओं ने उनको अपने वश में कर लिया हो ? तुम्हारा सलाह
को तुम्हारे विश्वासी दूत व मन्त्री प्रकाश तो नहीं करते ?
तुम अपने मित्र, शत्रु, और उदासीन मनुष्यों तथा काल के
अनुसार सन्धि और विग्रह को जानते हो ? जो मनुष्य न तुम्हारे
शत्रु हैं न मित्र, अर्थात् तुमसे और तुम्हारे शत्रु दोनों से मिले
हुए हैं उनके कर्तव्य को देखते रहते हो या नहीं ? और
तुमने अपने आत्मा के समान शुद्ध अन्तःकरण वाले, समर्थ

द्धिमान्, वृद्ध, कुलीन और प्रीतिमान् मनुष्यों को मन्त्री कया है या नहीं ? मन्त्री ही विजय का मूल गिना जाता है। और तुम्हारे राज्य को ऐसे मन्त्री जो मन्त्र को किसी से न कहें और शास्त्र में पण्डित हों, रक्षा करते हैं या नहीं ? कहीं राज्य को तुम्हारे शत्रु नष्ट तो नहीं करते हैं ? तुम समय पर जागते हो और अपने कार्य्य का विचार ब्राह्म मुहूर्त में करते हो या नहीं ? तुम स्वयं किसी कार्य्य में बिना सभा की सम्मति के उपस्थित तो नहीं हो जाते ? अथवा तुम्हारे गूढ़ मन्त्र तो प्रकाशित नहीं हो जाते ? ऐसे कर्म्मों के शीघ्र करने में जिन में परिश्रम थोड़ा और फल बहुत हों विघ्न तो नहीं होता है ? तुम्हारे राज-काज करनेवाले अविश्वासी और ऐसे तो नहीं हैं जिनको तुम न जानते हो ? ऐसा तो तुम नहीं करते कि कभी किसी मनुष्य को किसी अधिकार पर कर दिया और कभी उसी को दूसरा अधिकार दे दिया ? तुम्हारी खेती आदि विश्वासी और वृद्ध मनुष्यों के द्वारा होती है ? तुम्हारे पुत्रों को सर्वशास्त्र और धर्म के उपदेशक आचार्य्य लोग धनुर्वेद की उत्तम शिक्षा करते हैं ? राजाओं को उचित है कि सहस्र मूर्खों की अपेक्षा एक पण्डित को मुख्य समझें क्योंकि पंडित ही सब कामों में कल्याण का करने वाला है। तुम भी ऐसा करते हो या नहीं ? तुम्हारे सब क़िले, धन, धान्य, आयुध, जलयन्त्र और शिल्पविद्या के जानने वाले उत्तम धनुर्धारी योधाओं से पूर्ण हैं या नहीं ? जिस राजा के एक मंत्री भी बुद्धिमान्, शूर, जितेन्द्रिय और चतुर होता है उसकी लक्ष्मी की बहुत वृद्धि होती है; तुम्हारे मन्त्री भी ऐसे ही हैं या नहीं ? तुम अपने शत्रु, मन्त्री, पुरोहित, युवराज, चमूपति, द्वारपाल, अन्तर्देशिक कारा

गृहाधिकारी, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष, धर्म्माध्यक्ष, सभापालक, दण्डपाल, क़िले का रक्षक, दृष्टान्तपालक, अटवीपालक, इत्यादि अङ्गों एवं मन्त्री, युवराज और पुरोहित को छोड़ कर अपने शेष अङ्गों की ख़बर गुप्त दूतों के द्वारा रखते हो या नहीं? तुम अपने शत्रुओं के नित्य उद्योगी और सावधान दूतों के बिना जाने अपने शत्रुओं के मन की बात को जानते हो या नहीं? तुम्हारा पुरोहित शिक्षायुक्त, अच्छे कुल में उत्पन्न, बहुत से शास्त्रों का जानने वाला, शास्त्रचर्चा में कुशल, श्रौत स्मार्त्त अग्नियों से युक्त, विधि का जानने वाला, बुद्धिमान्, सीधा और समय पर हुत और होम के योग्य वस्तु का बताने वाला है या नहीं? तुम्हारा ज्योतिषी सब ज्योतिष के अङ्गों में कुशल है या नहीं! और तुमको ग्रहों की बाधा का हाल जताता रहता है या नहीं? तुम उत्तम कामों में मुख्य मुख्य और मध्यम कामों में मध्यम और नीच कामों में नीच मनुष्यों को नियत करते हो या नहीं? और श्रेष्ठ कामों के करने को तुम अपने छल-हीन सम्बन्धियों को नियत करते हो या नहीं? तुम अपनी प्रजा को कठिन दण्ड दे कर दुःख तो नहीं देते हो? और हिंसा करके राज्य करने से याचक लोग इस प्रकार से तुम्हारा अपमान तो नहीं करते हैं जैसे स्त्रियाँ उस पति का अपमान करती हैं जो स्वेच्छाचारी होता है? तुम्हारा सेनापति, शूरवीर, बुद्धिमान्, धैर्यवान्, युवा, पवित्र, कुलीन, प्रीतिमान्, और दक्ष और सेना के मुख्य मुख्य योद्धा सब युद्धों के जानने वाले, निष्कपट विजय करने वाले तुमसे सत्कृत हैं या नहीं? तुम अपनी सेना आदि का वेतन यथासमय देते हो या नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं करते कि समय बहुत बीत

जावे और वह लोग अपना वेतन न पावें ? ऐसा करने से सब चाकर बड़ा अनर्थ करते हैं क्योंकि उनकी जीविका और कुछ नहीं होती है। तुम्हारे मन्त्री तुमसे प्रीति रख कर समय पर युद्ध में तुम्हारे लिए अपने प्राणों के देने में उद्यत रहते हैं या नहीं ? तुम ऐसा तो नहीं करते कि शास्त्रों की आज्ञा को उल्लंघन करके अपनी इच्छा के अनुसार योद्धाओं को जो चाहो सो आज्ञा दे देते हो ? और जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से कोई बड़ा काम करे उसका तुम आदरपूर्वक धन से सन्मान करते हो या नहीं ? और ज्ञानी और विद्यावानों को पारितोषिक आदि देते हो या नहीं ? और जो मनुष्य तुम्हारा काम करने को दुःख पा रहे हैं अथवा तुम्हारे काम में उनके प्राण जाते रहे हैं, उनके कुटुम्ब का पालन करते हो ? और जो शत्रु भय से, अथवा धनहीन होने से, अथवा युद्ध में हार जाने के कारण से, तुम्हारी शरण में आता है उसका पालन तुम पुत्र की नाईं करते हो ? और अपने शत्रु को व्यसनी अर्थात् स्त्री, जुआ, अहेर, मद्य, नाच, गीत, वृथा फिरना, नाट्य, निन्दा और दिन में सोना आदि व्यसनों में लिप्त सुन कर और अपने को तीनों बल, अर्थात् मन्त्री, कोष और सेना से युक्त देख कर, वेग उस शत्रु के जीतने को जाते हो या नहीं ? और तुम अपने ज्योतिषियों के द्वारा अपने को हराने वाले पाँच दैवी, अर्थात् अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष और मरण और पाँच मानुषी अर्थात् अयुक्त, चोर, शत्रु, राजवल्लभ और राजा के लोभ से प्रजा को भयभीत होना, आदि व्यसनों को जान कर काल के अनुसार मांगल कृत्य करके यात्रा करते हो या नहीं ? और सेना का वेतन आगे से देकर, शत्रु के

मुख्य सेनापतियों को यथायोग्य रत्न आदि देकर अपनी ओर गुप्त रीति से फोड़ लेते हो या नहीं ? आप जितेन्द्रिय हो कर अजितेन्द्रिय शत्रु को जीतने का उपाय करते हो या नहीं ? और जब तुम शत्रु के ऊपर चढ़ कर जाते हो तब साम, दाम, भेद, दण्ड इनका अच्छी तरह बर्ताव करते हो या नहीं ? राजा को चाहिए कि अपनी जड़ को पक्का करके दूसरे पर चढ़ाई करे और युद्ध में अच्छे प्रकार से पराक्रम करे और विजय होने पर सब की यथायोग्य रक्षा करे, तुम भी ऐसा करते हो या नहीं ? और तुम्हारी सेना में आठ अङ्ग अर्थात् रथ, हाथी, घोड़ा, योद्धा, पत्ती, कर्म्म-कारक, चार और मुख्य दैशिक, और चार प्रकार का वल अर्थात् मौल, मैत्र, भृत्य और आटविक हैं या नहीं जिसमें वह सेनापतियों के ले जाने पर शत्रुओं का नाश करे ? कोई राजा ऐसा नहीं है जो खेती काटने और खेती रखाने वा दुर्भिक्ष के समय को छोड़ कर और समय में युद्ध करके शत्रु को जीते; तुम्हारी भी यही वृत्ति है या नहीं ? तुम्हारे अधिकारी लोग अपने देश की तरह शत्रु के देशों में भी रह कर परस्पर रक्षा और तुम्हारे अर्थ की साधना करते हैं या नहीं और तुम्हारे भक्ष्य, वस्त्र व चन्दनादि पदार्थों की रक्षा विश्वासी मनुष्य करते हैं या नहीं ? और तुम्हारे कोश अन्न के रखने का स्थान, वाहन, हथियार और लाभ-स्थानों पर ऐसे मनुष्य नियत हैं या नहीं जो तुम से प्रीति रखते हों, तुम्हारा कल्याण चाहते हों ? और तुम अपनी रक्षा महल के भीतर और बाहर रहने वाले मनुष्यों से और उन मनुष्यों की रक्षा अपने पुत्र और मंत्रियों से और पुत्र की रक्षा मंत्री

से, और मंत्री की पुत्र से, करते हो या नहीं? और पान, द्यूत, क्रीड़ा और स्त्रियों के लिए जो तुम्हारा ख़र्च होता है, वह तुम्हारे चाकर लोग तो नहीं करते हैं? और तुम्हारा ख़र्च लाभ से आधा, चौथाई अथवा तीसरे हिस्से में अच्छे प्रकार से हो जाता है या नहीं? और तुम दरिद्री, जातीय, गुरु, वृद्ध, व्यापारी और शिल्पविद्या जानने वालों पर धन-धान्य देकर कृपा रखते हो या नहीं? और आय-व्यय अर्थात् जमा-ख़र्च के रखने वाले गणक और लेखक अर्थात् हिसाब करने वाले मुतसद्दी लोग तुमको समय समय पर हिसाब समझाते रहते हैं या नहीं? चतुर और हितकारी मनुष्यों को निरपराध अपने अधिकार से अलग तो नहीं कर देते हो? और उत्तम, मध्यम नीच पुरुषों के साथ यथायोग्य वर्त्ताव करते हो या नहीं? और तुम्हारे काम करने को ऐसे मनुष्य तो नियुक्त नहीं हैं जो लोभी, चोर और तुम से वैरभाव मानते हों? और तुम्हारा देश लोभी, चोर, कुमारों अथवा तुम से पीड़ा तो नहीं पाता है? और तुम्हारे किसान दुष्ट तो नहीं हैं? तुम्हारे देश में तड़ाग जल-पूर्ण बड़े बड़े और यथा स्थानों पर हैं या नहीं? तुम्हारे किसानों की आजीविका और बीज को कोई मनुष्य नष्ट तो नहीं करता है? और तुम किसानों को अनुग्रह-धन, अर्थात् तक़ावी चौथाई वढ़ोतरी पर देते हो या नहीं। और तुम्हारी वार्त्ता अर्थात् खेती, वाणिज्य, पशुपालन, व लेन देन के व्याज का व्यौहार अच्छे मनुष्यों के द्वारा रहता है या नहीं? क्योंकि "वार्ता" के प्रचार से बड़ी वृद्धि होती है और तुम्हारे सम्पूर्ण राज्य में एक एक स्थान पर पाँच पाँच मनुष्य जो शूरवीर और बुद्धिमान्

हों शान्ति रखने के लिए नियत हैं या नहीं ? तुमने नगर की रक्षा के लिए ग्रामों को नगर के समान, व बस्तियों को ग्रामों के समान कर दिया है या नहीं ? और वहाँ के रहने वाले तुमको कर देते हैं या नहीं ? और तुम्हारे राज्य में शूरवीर लोग सेना को ले कर सब देश और नगरों में भ्रमण अर्थात् दौरा करते हैं या नहीं ? और चोरादिकों को मारते हैं या नहीं ? और तुम स्त्रियों से मीठी बोली बोल कर उनकी रक्षा करते हो या नहीं ? स्त्रियों की बात पर विश्वास तो नहीं करते और कहीं उनसे गुप्त बात तो नहीं करते ? और ऐसा तो नहीं करते कि अपने देश में किसी विघ्न को सुन कर उसका बिना उपाय किये हुए महल में सो रहते हो ? रात्रि को दोपहर सोकर पिछले पहर में उठ कर अपने हित की वार्ता का विचार करते हो या नहीं ? और समय पर मन्त्रियों सहित बाहर आकर सब मनुष्यों की फ़र्याद सुनते हो या नहीं ? और चलते और बैठते समय तुम्हारे चारों ओर रक्त वस्त्र पहिरे हुए और हाथ में नङ्गी तलवारें लिये हुए मनुष्य तुम्हारी रक्षा के लिए रहते हैं या नहीं ? और दण्डनीय मनुष्यों को तुम यमराज के समान दण्ड देते हो या नहीं ? और अपने प्रिय अप्रिय और पूज्यों के साथ यथायोग्य बर्ताव रखते हो या नहीं ? और शरीर के दुःख को ओषधियों से और मन की बाधा को वृद्धों की सेवा से दूर करते हो या नहीं ? तुम्हारे वैद्य तुम से प्रीति रखने वाले हितकारी और आठों प्रकार की चिकित्साओं में प्रवीण हैं या नहीं ? तुम अपने सम्मुख आये हुए याचकों को प्रीतिपूर्वक देखते हो या नहीं ? और लोभ से आश्रित मनुष्यों की आजीविका को बन्द तो नहीं करते हो, और कहीं ऐसा तो

नहीं है कि तुम्हारे देश और पुरवासी तुम्हारे शत्रुओं के अधीन होकर तुम से विरोध रखते हों? और तुम्हारा कोई शत्रु जो निर्बल और तुम्हारी सेना से पीड़ित था, अब बहुत सी सेना इकट्ठी करके तुम से बलवान् तो नहीं हो गया है? और तुम से और प्रधान राजाओं से प्रीति है या नहीं? और जो राजा तुम्हारे स्वाधीन हैं वे तुम्हारे काम में अपने प्राण देने को तत्पर हैं या नहीं? और तुम गुणवान वा विद्वान् ब्राह्मण और साधुओं की पूजा करते हो या नहीं? क्योंकि यह तुम्हारे कल्याण की वार्त्ता है। और अपने पुरुषों की रीति पर अर्थ, काम और मोक्ष का प्रयत्न करते हो या नहीं? और तुम गुणवान् ब्राह्मणों को सुन्दर स्वादिष्ट भोजन करा के दक्षिणा देते हो या नहीं? और एकाग्र चित्त होकर वाजपेय और पुण्डरीकादि यज्ञों के करने में तुम्हारी बुद्धि रहती है या नहीं? और अपने वृद्ध और बड़े स्वजातीय देवता और ब्राह्मणों को देख कर नमस्कार करते हो या नहीं? और आप हीन जातियों के शोक और उत्तम पुरुषों के क्रोध को दूर करते हो या नहीं? और पुरोहित आदि मांगलिक जन तुम्हारे पास स्वस्त्ययन पढ़ते रहते हैं या नहीं? तुम्हारी बुद्धि, यश, काम, धर्म्म और अर्थ के देने वाले कामों में रहती है या नहीं? क्योंकि जिस राजा की ऐसी बुद्धि रहती है उसके देश में पीड़ा कभी नहीं होती और वह राजा पृथिवी को जीत कर बड़ी वृद्धि पाता है। और किसी विशुद्धात्मा और श्रेष्ठ पुरुष को जिसका धन चोर ले गये हों, तुम्हारे मंत्री लोभ से मारते तो नहीं? और ऐसा तो नहीं होता है कि कोई चोर जो चोरी के कारण पकड़ा गया हो, धन

सीयस्वयंवर

दोहा

उठे लषन निशि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान।
गुरु के पहिले जगत-पति, जागे राम सुजान॥

चौपाई

सकल शौच करि जाय अन्हाये, नित्य निवाहि गुरुहिं शिर नाये।
समय जानि गुरु आयसु पाई, लेन प्रसून चले दोउ भाई।
भूप बाग वर देखेउ जाई, जहँ वसंत ऋतु रहै लोभाई।
लागे विटप मनोहर नाना, वर्ण वर्ण वर बेलि विताना।
नवपल्लव फल सुमन सुहाये, निज संपति सुरतरुहिं लजाये।
चातक कोकिल कीर चकोरा, कूजत विहग नचत कल मोरा।
मध्य बाग सर सोह सुहावा, मणि सोपान विचित्र बनावा।
विमल सलिल सरसिज बहु रङ्गा, जलखग कूजत गुञ्जत भृंगा।

दोहा

बाग तड़ाग विलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

चौपाई

चहुँदिशि चितै पूछि माली गन, लगे लेन दल फूल मुदित मन।
तिहि अवसर सीता तहँ आई, गिरिजा पूजन जननि पठाई।
सङ्ग सखी सब सुभग सयानी, गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर समीप गिरिजा गृह सोहा, वरणि न जाय देखि मन मोहा।
मज्जन करि सर सखी समेता, गई मुदित मन गौरि निकेता।
पूजा कीन अधिक अनुरागा, निज अनुरूप सुभग वर मांगा।
एक सखी सिय सङ्ग विहाई, गई रही देखन फुलवाई।
त्यइ दोउ बन्धु विलोकयउ जाई, प्रेम विवश सीता पहँ आई।

दोहा

तासु दशा देखी सखिन, पुलक गात जल नयन।
कहु कारण निज हर्ष कर, पूछहिं सब मृदु बयन॥

चौपाई

देखन बाग कुँवर दोउ आये, वय किशोर सब भाँति सुहाये।
श्याम गौर किमि कहौं बखानी, गिरा अनयन नयन विनु बानी।
सुनि हर्षीं सब सखी सयानी, सियहिय अति उत्कण्ठा जानी।
एक कहहिं नृप सुत ते आली, सुने जे मुनि संग आये काली।
जिन निज रूप मोहनी डारी, कीन्हें स्ववश नगर नर नारी।
वरणत छवि जहँ तहँ सब लोगू, अवशि देखिये देखन योगू।
तासु वचन अति सियहिं सुहाने, दरश लागि लोचन अकुलाने।
चली अग्रकरि प्रिय सखि सोई, प्रीति पुरातन लखै न कोई।

दोहा

सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकलदिशि, जनु शिशुमृगी सभीत॥

चौपाई

कंकण किंकिणि नूपुर धुनि सुनि, कहत लषन सन राम हृदयगुनि।
मानहु मदन दुन्दुभी दीन्ही, मनसा विश्व विजय कहं कीन्ही।
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा, सियमुखशशि भये नयन चकोरा।
भये विलोचन चारु अचंचल, मनहु सकुचि निमि तज्यउ दृगंचल।
देखि सीय शोभा सुख पावा, हृदय सराहत वचन न आवा।
जनु विरंचि सब निज निपुणाई, विरचि विश्वकहं प्रगट दिखाई।
सुन्दरता कहं सुन्दर करई, छविगृह दीपशिखा जनु बरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरिय विदेह कुमारी।

दोहा

सिय शोभा हिय वरणि प्रभु, आपनि दशा बिसारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, वचन समय अनुहारि॥

चौपाई

तात जनक-तनया यह सोई, धनुष-यज्ञ ज्यहि कारण होई।
पूजन गौरि सखी लै आई, करति प्रकाश फिरति फुलवाई।
जासु विलोकि अलौकिक शोभा, सहज पुनीत मोर मन क्षोभा।
सो सब कारण जान विधाता, फरकहिं सुभग अङ्ग सुनु भ्राता।
रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ, मन कुपंथ पग धरैं न काऊ।
म्वहिं अतिशय प्रतीत जिय केरी, जिन सपनेहु परनारि न हेरी।
जिनके लहहिं न रिपु रण पीठी, नहिं लावहिं परतिय मन डीठी।
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं, ते नर वर थोरे जग माहीं।

दोहा

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।
मुख सरोज मकरन्द छवि, करत मधुप इव पान॥

चौपाई

चितवत चकित चहूँ दिशि सीता, कहँ गये नृप किशोर मन चीता।
जहँ विलोकि मृगशावकनयनी, जनु तहँ बरष कमल सित श्रयनी।
लता ओट तब सखिन लखाये, श्यामल गौर किशोर सुहाये।
देखि रूप लोचन ललचाने, हर्षे जनु निज निधि पहचाने।
थके नयन रघुपति छवि देखी, पलकनहूँ परिहरिय निमेषी।
अधिक सनेह देह भइ भोरी, शरदशशिहि जनु चितव चकोरी।
लोचन मगु रामहिं उर आनी, दीन्हें पलक कपाट सयानी।
जब सिय सखिन प्रेमवश जानी, कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी।

दोहा

लता भवन ते प्रगट भे, तिहिं अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग विमल विधु, जलद पटल बिलगाइ॥

चौपाई

शोभा शील सुभग दोउ वीरा, नील पीत जलजात शरीरा।
काक पक्ष शिर सोहत नीके, गुच्छा बिच बिच कुसुमकली के।
भाल तिलक श्रम बिन्दु सुहाये, श्रवण सुभग भूषण छवि छाये।
विकट भृकुटि कच घूँघरवारे, नव सरोज लोचन रतनारे।
चारु चिबुक नासिका कपोला, हास विलास लेत जनु मोला।
मुख छवि कहि न जाय मोंहि पाँहीं, जो विलोकि बहु काम लजाहीं।
उर मणिमाल कम्बु कल ग्रीवा, काम कलभ कर भुज बलसीवा।
सुमनसमेत बाम कर दोना, साँवर कुँवरि सखी सुठि लोना।

दोहा

केहरि कटि पट पीत धर, सुखमा शील निधान।
देखि भानुकुल भूषणहि, बिसरा सखिन अपान॥

चौपाई

धरि धीरज यक सखी सयानी, सीता सन बोली गहि पानी।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू, भूप किशोर देखि किन लेहू।
सकुचि सीय तब नयन उघारे, सन्मुख दोउ रघुवंश निहारे।
नख शिख देखि राम की शोभा, सुमिरि पिता प्रण मन अति क्षोभा।
परवश सखिन लखी जब सीता, भई गहरु सब कहहिँ सभीता।
पुनि आउब इहिँ बिरियाँ काली, अस कहि मन बिहँसी यक आली।
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी, भयउ विलम्ब मातु भय मानी।
धरि बड़ धीर राम उर आनी, फिरि आपन प्रण पितु वश जानी।

दोहा

देखन मिसु मृग विहँग तरु, फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढ़ी प्रीति न थोरि ॥

चौपाई

जानि कठिन शिव चाप बिसूरति, चली राखि उर श्यामल मूरति।
प्रभु जब जात जानकी जानी, सुख सनेह शोभा गुण खानी।
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही, चारु चित्र भीतर लिखि लीन्ही।
गई भवानी भवन बहोरी, बन्दि चरण बोली कर जोरी।
जय जय जय गिरिराजकिशोरी, जय महेश मुखचन्द्र चकोरी।
जय गजवदन षडानन माता, जगत जननि दामिनि द्युति गाता।
नहिँ तव आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाव बेद नहिँ जाना।
भव भव विभव पराभव कारिणि, विश्व विमोहनि स्ववशविहारिणि।

दोहा

पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिँ, सहस शारदा शेष ॥

चौपाई

सेवत तोहिँ सुलभ फल चारी, वरदायिनि त्रिपुरारि पियारी।
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे, सुर नर मुनि सब होहिँ सुखारे।
मोर मनोरथ जानहु नीके, बसहु सदा उर पुर सब ही के।
कीन्हेउ प्रगट न कारण तेही, अस कहि चरण गहे वैदेही।
विनय प्रेम वश भई भवानी, खसी माल मूरति मुसुकानी।
सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ, बोली गौरि हर्ष हिय भरेऊ।
सुनु सिय सत्य अशीष हमारी, पूजिहि मन-कामना तुम्हारी।
नारद वचन सदा शुचि साँचा, सो वर मिलहि जाहि मन राँचा।

छन्द

मन जाहि राच्यो मिलहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो।
करुणानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो।
इहि भाँति गौरि अशीष सुनि सिय सहित हिय हर्षित अली।
तुलसी भवानिहिं पूजि पुनि पुनि मुदित मन मन्दिर चली।

सोरठा

जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जाय कहि।
मंजुल मङ्गल मूल, बाम अंग फरकन लगे॥

चौपाई

हृदय सराहत सीय लुनाई, गुरु समीप गवने दोउ भाई।
राम कहा सब कौशिक पाहीं, सरल सुभाव छुआ छल नाहीं।
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं, पुनि अशीष दोउ भाइन दीन्हीं।
सुफल मनोरथ होइ तुम्हारे, राम लखन सुनि भये सुखारे।
करि भोजन मुनिवर विज्ञानी, लगे कहन कछु कथा पुरानी।
विगत दिवस मुनि आयसु पाई, सन्ध्या करन चले दोउ भाई।
प्राची दिशि शशि उगेउ सुहावा, सियमुख सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं, सीय वदन सम हिमकर नाहीं।

दोहा

जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक॥

चौपाई

घटै बढ़ै विरहिन दुखदाई, ग्रसै राहु निज सन्धिहिं पाई।
कोक शोकप्रद पङ्कज-द्रोही, अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही।
वैदेही मुख पटतर दीन्हे, होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे।
सिय मुख छवि विधुव्याज बखानी, गुरु पहँ चले निशा बड़ि जानी।

करि मुनिचरण सरोज प्रणामा, आयसु पाय कीन्ह बिश्रामा।
विगत निशा रघुनायक जागे, बन्धु विलोकि कहन अस लागे।
उग्यउ अरुण अवलोकहु ताता, पङ्कज कोक लोक सुखदाता।
बोले लषन जोरि जुग पानी, प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी।

दोहा

अरुणोदय सकुचे कुमुद, उडुगण ज्योति मलीन।
तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति बलहीन॥

चौपाई

नृप सब नखत करैं उजियारी, टारि न सकै चाप तम भारी।
कमल कोक मधुकर खग नाना, हरषे सकल निशा अवसाना।
ऐसेहि सब प्रभु भक्त तुम्हारे, होइहहिँ टूटे धनुष सुखारे।
उदयभानु बिन श्रम तम नाशा, दुरे नखत जग तेज प्रकाशा।
रविनिज उदय व्याज रघुराया, प्रभु प्रताप सब नृपन दिखाया।
तव भुजबल महिमा उदघाटी, प्रगटी धनु विघटन परिपाटी।
बन्धु वचन सुनि प्रभु मुसकाने, होइ शुचि सहज पुनीत अन्हाने।
नित्यक्रिया करि गुरु पहँ आये, चरण सरोज सुभग शिर नाये।
सतानन्द तब जनक बुलाये, कौशिक मुनि पहँ तुरत पठाये।
जनकविनय तिन आय सुनाई, हर्षे बोलि लिये दोउ भाई।

दोहा

सतानन्द पद वन्दि प्रभु, बैठे गुरु पहँ जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाइ॥

चौपाई

सीयस्वयंवर देखिय जाई, ईश काहि धौं देहिँ वड़ाई।
लषन कहा यश-भाजन सोई, नाथ कृपा तव जापर होई।
हरषे सुनि सब मुनिवर बानी, दीन्ह अशीष सबहिँ सुख मानी।

पुनि मुनि वृन्द समेत कृपाला, देखन चले धनुष मखशाला।
रङ्ग भूमि आये दोउ भाई, अस सुधि सब पुरवासिन पाई।
चले सकल गृह काज बिसारी, बालक युवा जरठ नर नारी।
देखी जनक भीर भइ भारी, शुचि सेवक सब लिये हँकारी।
तुरत सकल लोगन पहँ जाहू, आसन उचित देहु सब काहू।

दोहा

कहि मृदु बचन विनीत तिन, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि॥

चौपाई

राजकुँवर तिहि अवसर आये, मनहु मनोहरता छवि छाये।
गुण-सागर नागर वर वीरा, सुन्दर श्यामल गौर शरीरा।
राज-समाज विराजत रूरे, उडुगण महँ जनु जुग विधु पूरे।
जिनकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महारण धीरा, मनहु बीर रस धरे शरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी, मनहु भयानक मूरति भारी।
रहे असुर छल जो नृप भेखा, तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरवासिन देखे दोउ भाई, नर-भूषण लोचन सुखदाई।

दोहा

नारि विलोकहिँ हरषि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत शृङ्गार धरि, मूरति परम अनूप॥

चौपाई

विदुषन प्रभु विराटमय दीशा, बहु मुख कर पद लोचन शीशा।
जनक जाति अवलोकहिँ कैसे, सजन सगे प्रिय लागहिँ जैसे।
सहित विदेह विलोकहिँ रानी, शिशु सम प्रीति न जाय बखानी।
योगिन परम तत्त्व मय भासा, सन्त शुद्ध मन सहज प्रकाशा।

अस कहि भूप भले अनुरागे, रूप अनूप विलोकन लागे।
देखहिँ सुर नभ चढ़े विमाना, वरषहिँ सुमन करहिं कल गाना॥

दोहा

जानि सुअवसर सीय तब, पठवा जनक बुलाय।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चली लिवाय॥

चौपाई

सिय शोभा नहिँ जाय बखानी, जगदम्बिका रूप गुणखानी।
उपमा मोहि सकल लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी।
सीय बरणि तेहि उपमा देई, को कवि कहै अजस को लेई।
जो पटतरिय तीय सम सीया, अस जग युवति कहाँ कमनीया।
गिरा मुखर तन अर्द्ध भवानी, रति अति दुखित अतनुपति जानी।
विष वारुणी बन्धु प्रिय जेही, कहिय रमासम किमि वैदेही।
जो छवि सुधा पयोनिधि होई, परम रूपमय कच्छप सोई।
शोभा रजु मन्दर शृंगारू, मथै पाणि पङ्कज निज मारू।

दोहा

इहि विधि उपजै लक्ष्मि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥

चौपाई

चली संग लै सखी सयानी, गावत गीत मनोहर वानी।
सोह नवल तनु सुन्दर सारी, जगत जननि अतुलित छवि भारी।
भूषण सकल सुदेश सुहाये, अंग अंग रचि सखिन बनाये।
रंगभूमि जब सिय पगुधारी, देखि रूप मोहे नर नारी।
हर्षि सुरन दुन्दुभी बजाई, वर्षि प्रसून अप्सरा गाई।
पाणि सरोज सोह जयमाला, औचक चितइ सकल महिपाला।

सीय चकित चित रामहि चाहा, भये मोह बस सब नरनाहा।
मुनि समीप बैठे दोउ भाई, लगे ललकि लोचन निधि पाई।

दोहा

गुरुजन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि।
लगी विलोकन सखिन तन, रघुबीरहिँ उर आनि॥

चौपाई

रामरूप अरु सिय छवि देखी, नर नारिन परिहरी निमेखी।
सोचहिँ सकल कहत सकुचाहीं, विधिसन विनय करहिं मन माहीं।
हरु विधि वेगि जनक जड़ताई, मति हमारि अस देउ सुहाई।
विन विचार प्रण तजि नरनाहू, सीय राम कर करैं विवाहू।
जग भल कहहि भाव सब काहू, हठ कीन्हें अन्तहु उर दाहू।
यहि लालसा मगन सब लोगू, वर सांवरो जानकी योगू।
तब बन्दीजन जनक बुलाये, विरदावली कहत चलि आये।
कह नृप जाइ कहहु प्रण मोरा, चले भाट हिय हर्ष न थोरा।

दोहा

बोले बन्दी वचन वर, सुनहु सकल महिपाल।
प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ विशाल॥

चौपाई

नृप भुजबल विधु शिवधनु राहू, गरुअ कठोर विदित सब काहू।
रावण बाण महाभट भारे, देखि शरासन गवहिँ सिधारे।
सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा, राजसमाज आजु ज्यहि तोरा।
त्रिभुवन जय समेत वैदेही, विनहिँ विचारि वरै हठि तेही।
सुनि प्रण सकल भूप अभिलाषे, भटमानी अतिशय मन माषे।
परिकर बाँधि उठे अकुलाई, चले इष्टदेवन शिर नाई।

दोहा

प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन युग, जनु विधु मण्डल डोल॥

चौपाई

गिरा अलिन मुख पङ्कज रोकी, प्रकट न लाज निशा अवलोकी।
लोचन जल रहु लोचन कोना, जैसे परम कृपण कर सोना।
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी, धरि धीरज प्रतीति उर आनी।
तन मन बचन मोर मन साँचा, रघुपति पदसरोज मन रांचा।
तौ भगवान सकल उर बासी, करिहहिँ मोहि रघुपति की दासी।
ज्यहि के ज्यहि पर सत्य सनेहू, सो त्यहि मिलत न कछु संदेहू।
प्रभु तन चितय प्रेम प्रण ठाना, कृपानिधान राम सब जाना।
सियहि विलोकि तक्यउ धनु कैसे, चितव गरुड़ लघु व्यालहिं जैसे।

दोहा

लषन लख्यउ रघुवंशमणि, ताक्यउ हर कोदण्ड।
पुलकि गात बोले वचन, चरण चापि ब्रह्मण्ड॥

चौपाई

दिशिकुञ्जरहु कमठ अहि कोला, धरहु धरणि धरि धीर न डोला।
राम चहहिं शङ्कर धनु तोरा, होहु सजग सुनि आयसु मोरा।
चाप समीप राम जब आये, नर नारिन सुर सुकृत मनाये।
सब कर संशय अरु अज्ञानू, मन्द महीपन कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गर्व गरुआई, सुर मुनि वरन केरि कदराई।
सिय कर सोच जनक पछितावा, रानिन कर दारुण दुख दावा।
शम्भुचाप बड़ बोहित पाई, चढ़े जाइ सब संग बनाई।
राम बाहुबल सिन्धु अपारा, चहत पार नहिँ कोउ कनहारा।

दोहा

राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विशेखि ॥

चौपाई

देखी विपुल बिकल बैदेही, निमिष बिहात कल्प सम तेही ।
तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा, मुये करै का सुधा तड़ागा ।
का बर्षा जब कृषी सुखाने, समय चूकि पुनि का पछिताने ।
अस जिय जानि जानकी देखी, प्रभु पुलके लखि प्रीति विशेषी ।
गुरुहिं प्रणाम मनहिं मन कीन्हा, अतिलाघव उठाय धनु लीन्हा ।
दमक्यउ दामिनि जिमि घनलयऊ, पुनि धनु नभमण्डल सम भयऊ ।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े, काहु न लखा देखिं सब ठाढ़े ।
त्यहि क्षण मध्य राम धनु तोरा, भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ।

छन्द

भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ।
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल विचारहीं ।
कोदण्ड भंज्यहु राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ।

सोरठा

शङ्कर चाप जहाज, सागर रघुवर बाहुबल ।
बूड़ी सकल समाज, चढ़े जे प्रथमहिं मोहवश ॥

चौपाई

प्रभु दोउ खण्ड चाप महि डारे, देखि लोग सब भये सुखारे ।
कौशिक रूप पयोनिधि पावन, प्रेमवारि अवगाह सुहावन ।
राम रूप राकेश निहारी, वढ़ी वीच पुलकावलि भारी ।
बाजे नभ गहगहे निसाना, देववधू नाचहिं करि गाना ।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा, प्रभुहिं प्रशंसहिं देहिं असीसा।
बरषहिं सुमन रङ्ग बहु माला, गावहिं किन्नर गीत रसाला।
रही भुवन भरि जय जय बानी, धनुष भङ्ग धुनि जात न जानी।
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी, भंज्यहु राम शम्भु धनु भारी।

दोहा

वन्दी मागध सूतगण, विरद वरहिं मति धीर।
करहि निछावर लोग सब, हय गज धन मणि चीर॥

चौपाई

झाँझ मृदंग शंख सहनाई, भेरि ढोल दुन्दुभी बजाई।
बाजहिं बहु बाजने सुहाये, जहँ तहँ युवतिन मंगल गाये।
सखिन सहित हर्षित अति रानी, सूखत धान परा जनु पानी।
जनक लह्यउ सुख सोच विहाई, पैरत थके थाह जनु पाई।
श्रीहत भये भूप धनु टूटे, जैसे दिवस दीप छवि छूटे।
सिय हिय सुख वर्णिय क्यहि भाँती, जनु चातक पायउ जल स्वाँती।
रामहिं लषन विलोकत कैसे, शशिहिं चकोर किशोरक जैसे।
सतानन्द तब आयसु दीन्हा, सीता गमन राम पहँ कीन्हा।

दोहा

संग सखी सुन्दरि चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार॥

चौपाई

सखिन मध्य सिय सोहति कैसी, छविगण मध्य महाछवि जैसी।
कर सरोज जयमाल सुहाई, विश्व विजय शोभा जनु छाई।
तन सकोच मन अधिक उछाहू, गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू।
जाइ समीप रामछवि देखी, रहि जनु कुंवरि चित्र अवरेखी।
चतुर सखी लखि कहा बुझाई, पहिरावहु जयमाल सुहाई।

सुनत युगल कर माल उठाई, प्रेम विवश पहिराइ न जाई।
सोहत युग जनु जलज सनाला, शशिहिं सभीत देत जयमाला।
गावहिं छबि अवलोकि सहेली, सिय जयमाल राम उर मेली।

सोरठा

रघुवर उर जयमाल, देखि देव वर्षहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु विलोकि रवि कुमुद गण॥

चौपाई

पुर अरु व्योम बाजने बाजे, खल भये मलिन साधु सब गाजे।
सुर किन्नर नर नाग मुनीशा, जय जय कहि सब देहिं अशीषा।
नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटी, बार बार कुसुमावलि छूटी।
जहँ तहँ विप्र वेद धुनि करहीं, बन्दी बिरदावलि उच्चरहीं।
महि पाताल नाक यश व्यापा, राम बरी सिय, भंज्यहु चापा।
करहिँ आरती पुर नर नारी, देहिं निछावरि वित्त विसारी।
सोहत सीय राम की जोरी, छबि शृङ्गार मनहुँ इकठोरी।
सखी कहहिं प्रभु पद गहु सीता, करति न चरण परस अति भीता।

दोहा

गातम तिय गति सुरति करि, नहिं परसति पद पानि।
मन विहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि॥

चौपाई

तब सिय देखि भूप अभिलापे, कूर कपूत मूढ़ मन माषे।
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे, जहँ तहँ गाल बजावन लागे।
लेहु छुड़ाय सीय कह कोऊ, धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ।
तोरे धनुष काज नहिं सरई, जीवत हमहिं कुँवरि को वरई।
साधु भूप बोले सुनि बानी, राजसमाजहिं लाज लजानी।

बल प्रताप बीरता बड़ाई, नाक पिनाकहिं संग सिधाई।
सोइ शूरता कि अब कहुँ पाई, अस बुधि तो विधि मुँह मसि लाई।

दोहा

देखहु रामहि नयन भरि, तजि ईर्षा मद मोहु।
लषण रोष पावक प्रबल, जानि सलभ जनि होहु।

चौपाई

वैनतेय बलि जिमि चह कागू, जिमि शशि चहहि नाग अरिभागू।
जिमि चह कुशल अकारण कोही, सुख संपदा चहहि शिवद्रोही।
लोभी लोलुप कीरति चहई, अकलंकता कि कामी लहई।
हरिपद विमुख परमगति चाहा, तस तुम्हार लालच नरनाहा।
कोलाहल सुनि सीय सकानी, सखी लिवाइ गईं जहँ रानी।
राम सुभाव चले गुरु पाहीं, सिय सनेह वरणत मन माहीं।
रानिन सहित शोच वश सीया, अबधों विधिहि कहा करणीया।
भूपवचन सुनि इत उत तकहीं, लषण राम डर बोल न सकहीं।

दोहा

अरुण नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन सकोप।
मनहुँ मत्त गजगण निरखि, सिंह किशोरहिं चोप॥

दोहा

साज साजि आवै सबै, सजै विख्यात बरात।
गोधूली वेला विमल, चलिहैं नृप अवदात॥ १॥
जे जे ज्यहि अधिकार में, सावधान सब होय।
करै जो आलस काज में, दण्डनीय है सोय॥ २॥
अस निदेश नरनाथ को, सचिवन सकल सुनाय।
भरि हुलास निज वास को, गवन कियो मुनिराय॥ ३॥

छाय गयो सिगरे नगर, राम विवाह उछाह।
घर घर मंगल गान तिय, लगी करन भरि चाह ॥ ४ ॥

छन्द चौबोला

कौशिल्या कैकयी सुमित्रा औरहु दशरथ रानी।
पूजन लागीं रंगनाथ को ईस गणेश भवानी॥
इष्ट देव कुल देव सबै मिल ग्राम-देव कह पूजैं।
कुशल लखहिँ दूलह दुलहिन कर मन अभिलाषा पूजैं ॥ १ ॥
कारज करहिँ नारि सब निज निज गावहिं मंगलगीता।
राम जानकी ब्याह गान सुर दश दिश करहिं पुनीता॥
व्यञ्जन विविध प्रकारन के रचि जाको जैसे योगू।
ते देवन कह देहिं तौन विधि पढ़ि पढ़ि मंत्रन भोगू ॥ २ ॥
फूली फिरत राम की माता नहिं सुख उरहिं समाता।
द्वार द्वार देवन को विनवति कहि कहि मंजुल बाता॥
गुरुजन को अभिवन्दन करती सहज स्वभाव सयानी।
हग भरि देखन दुलहिन दूलह तुम्हरी पुण्य महानी ॥ ३ ॥
महल महल मच रह्यो अवधपुर चहल पहल त्यहिँ रजनी।
कोउ गावें कोउ आवे जावें धामहिं धामहिं सजनी॥
धूम धाम पुर धाम धाम महँ काल्हि बरात पयाना।
आपु सजहिं औरन कहँ साजहिँ पट भूषण विधि नाना ॥ ४ ॥
दीपावली देव आलय महँ भवन बजारन माहीं।
करत बरात तयारी भारी नींद नयन महँ नाहीं॥
करहिं विनय पुरजन देवन सों सपदि होइ भिनुसारा।
चलै बरात राम ब्याहन हित आसु बजाय नगारा ॥ ५ ॥
परी खभँरी ताहि शर्वरी करैं हरबरी लोगू।
कहैं हर घड़ी मेटि कवँरी कब प्रभु करी संयोगू॥

राम विवाह प्रमोद पौर जन देहि सुजातिन दाना।
करहिं जनकपुर जान तयारी नारि करहिँ कल गाना ॥ ६ ॥
बाजि रहे घर घर बहु बाजन धरे कलश प्रति द्वारा।
नौबत भरत राजमन्दिर महँ नादहिँ निकर नगारा ॥
गायक गण गावहिँ गुण गर्वित मंजुल राग सुहाना।
अति उत्कर्ष हर्ष वश लेते तीन ग्राम की ताना ॥ ७ ॥
करहिँ नर्त्तकी नर्त्तक नर्त्तन सत्तन करि बिधि नाना।
विरदावली वदत बन्दी जम करि रघुवंश बखाना ॥
कहुँ रथ चक्र होत घर घर रव नादहि मत्त मतंगा।
कहुँ हय देखन शोर मच्यो अति कोउ नहिं हीन उमंगा ॥ ८ ॥
आये जे विदेह के धावन पृथक पृथक तिन काहीं।
सन्मानी रानी मुदमानी लिये कछुक तिन नाहीं ॥
पृथक पृथक पुनि अवध प्रजा सब दूतन को सत्कारैं।
लेत कोऊ की कछुक वस्तु नहिँ अपनो धर्म्म विचारैं ॥ ९ ॥
बढ़ी उमंग अयोध्या-वासिन क्षण क्षण शम्भु मनावहिं।
सो दिन बेग दिखाउ कृपा करि लखें लषण अरु रामहिं ॥
भरत शत्रुसूदन अति हर्षित नयन नींद बिसराई।
मुदित करहिं मातन को बातन मिलिहैं कब दोउ भाई ॥१०॥
यहि विधि देवी देवन पूजत करत बरात तयारी।
निरमानत भूषण पट बहु बिधि छानत सार असारी ॥
विविध बरातिन को पहिचानत सनमानत परिवारा।
नहिं आवत नींदहिं निज नयनन होत भयो भिनुसारा ॥११॥

दोहा

ब्रह्म मुहूरत जानिकै, उठ्यो सुकोशलपाल।
प्रात-कृत्य निर्वाहि के, करि मज्जन तत्काल ॥ १ ॥

अर्घ्य प्रदानादिक कियो, रंगनाथ पद बन्दि।
पहिरि विभूषण वसन वर, बैठ्यो सभा अनन्दि ॥ २ ॥

छन्द

मंत्रिन प्रजा महाजन सुभटन सरदारन कुलवारे।
पौर जानपद सभ्य सुजानन कोशलपाल हँकारे॥
आये सकल सभा-मन्दिर महँ दशरथ राज जुहारे।
सहित समाजन यथायोग्य तिन प्रतीहार बैठारे ॥ १ ॥
तब सुमन्त को पठै तुरन्तहिं गुरु वसिष्ठ बुलयावो।
राम काज को काज जानि तहँ मुनिवर हरवर आयो॥
पद अरविन्दन बन्दन करिके कनकासन बैठायो।
आजु जनकपुर चलन चाय चित चारु निदेश सुनायो॥ २ ॥
कनक रजत के रतन खचित जुत हैादन त्यों अम्बारी।
झूले जरतारिन की झूलैं दश हजार गज भारी॥
युगल दन्त के चारि दन्त के भूषण कनक समारे।
चलै दुरद्द विहद्द कद्द के मिथिलै संग हमारे ॥ ३ ॥
पंच लक्ष अति स्वच्छ साजि के गच्छहिं दक्ष सवारा।
मन्मथ कृत मनु तीन लक्ष रथ पथ पर रहहिँ तयारा॥
अहलादे दश लक्ष पयादे जादे नख शिख सोहे।
चलहिं विख्यात वरात संग महँ जिन लजात सुर जोहे॥ ४ ॥
वृषभ सकट अरु ऊँट जूट बहु खच्चर खेचर खासे।
रतन जाल की विविध पाल की तिमि नालकी कला से॥
पुहुप विमान समान विमानहुँ महाजान मनहारी।
ताम जाम अरु तख़्तर मानहुँ चलै समान तमारी ॥ ५ ॥
चलहिं धनिक सब अवध नगर के अर्ब खर्ब धन लीने।
थाली रतन विभूषण संयुत बड़ लघु नवल नगीने ॥

साजि साजि सब साजु समाजन चलहिं अवधपुरवासी ।
औरहु जाति ज्ञाति सम्बन्धी लेहु बोलि छवि रासी ॥ ६

रघुकुल के सब राजकुमारन सुकुमारनहि बोलाई ।
लेहु बरात संग करि सादर न्योता भवन पठाई ॥
देवलोक से गन्धर्वन को अरु अपसरन बोलाई ।
महि मंगलामुखिन सुखिन को दीजै प्रथम चलाई ॥ ४

जे प्रिय गायक लायक सब बिधि नाटक कर्म्म सुजाना ।
नर्त्तक अरु नृत्यकी अनेकन करनाटकी महाना ॥
औरहु जग के बिविध गुणी जन संगहिं करहिँ पयाना ।
पण्डित शास्त्र अखण्डित मण्डित संसदि सपदि चलाना ॥ ८ ।

कवि कोविद बन्दीजन सज्जन सुहृद सखा अति प्यारे ।
परजन पुरजन गुरुजन लघुजन चलैं स्वरूप सँभारे ॥
देहु समस्त वसन भूषण वर यथायोग्य सब काहीं ।
कौनहु वस्तु हीन नहिं कोई रहै बरात सदाहीं ॥ ९ ।

शिविका अश्व नाग रथ वाहन वाहन-हीन न दीजै ।
चलहि बजार अनेक सङ्ग महँ कौनिहु वस्तु न छीजै ॥
शिबिर अनेकन भाँति रंगावहु कनक रजत जरतारा ।
तिमि नेपथ्य वितान विशद बहु रवि शशि सम द्युति भारा ॥१०

राजासन अरु विविध सुखासन गुलगुल गिलिम गलीचे ।
फटिक फरस इव बृहद फरस बहु सुरभित सलिलन सीचे ॥
सभा साज सब सुखद सजावहु करन हेतु व्यवहारा ।
भोजन भाजन चलै विविध सब होन हेतु ज्यवनारा ॥११॥
चारिहु कुँवरन के विवाह की सामग्री लै चलिये ।
कौन समय क्यहि भाँति ईशगति जानि न जाय अतुलिये ॥

जब ते चलै बरात अवध ते आवत अवध प्रयन्ता।
तब ते बिमुख जाय नहिं कोऊ सन्त असन्त अनन्ता ॥१२॥

दोहा

एक यान गुरु हेतु वर, एक हमारे हेत।
अति उत्तम सब साज-युत, आनहु द्वार निकेत ॥ १ ॥
मार्कण्डेय मुनीश वर, कल्पान्तायुष सोय।
देहु तिन्हैं स्यन्दन विशद, मारग श्रम नहिं होय ॥ २ ॥
कात्यायन जाबालि मुनि, वामदेव मतिमान।
रथ दीजै सब कहँ वृहद, आगे करहिं पयान ॥ ३ ॥
औरो ऋषि मुनि द्विजनगण, आगे करहिं पयान।
चलहिं महाजन मध्य में, पुनि मम गुरु को यान ॥ ४ ॥
बीच बीच सेना सकल, निज निज वृन्द बनाय।
चलहिं सकल सतपन्थ गुनि, पन्थ पयान सोहाय ॥ ५ ॥

छन्द

सब के आगे सुतुर सवार अपार सिँगार बनाये।
धरे जमूरक तिन पीठन पर सहित निशान सोहाये॥
फेरि चलै बाजी मण्डल करि सजे सवार प्रवीरा।
शत्रुशाल तिन्ह के मधि सोहैं चढ़ि बाजी रणधीरा ॥ १ ॥
गज मण्डल पुनि चलैं अखण्डल बँधे हौद अम्बारी।
शत्रुञ्जय गज पै सवार ह्वै भरत चलैं सुभकारी॥
पुनि पैदर की भीर चलै सब वृन्दन वृन्द बनाई।
वरन वरन के यूथ यूथ सब सायुध सजें सोहाई ॥ २ ॥
जौन बरन को यूथ बरन स्वइ तहँ तहँ रहे निशाना।
गज मण्डल पीछे रथ मण्डल तहँ तुम होहु प्रधाना॥

तिनके पीछे पुरवासी सब सहित महाजन नाना।
सभ्य सभासद औरहु जन सब चलहिँ बजार महाना ॥ ३ ॥
गुरु वशिष्ट अब हम तिन के अनु लै परिचर प्रतिहारा।
नहिं गति मन्द न गति द्रुत चलिहै यहि विधि चलन विचारा॥
चलहि निषाद राज सेना के पीछे लै निज सैना।
सोधन करत सकल मनुजन को कोउ थकि कहीं रहैना ॥ ४ ॥

ऊँट जूट बड़वा वृषभादिक शकटादिक भरि भारा।
चलहिं निषाद-राज के संग में बालक वृद्धहु दारा॥
यहि विधि चलै बरात जनकपुर बीचहि चारि मुकामा।
यतन करहु यहि विधि सुमन्त सब चतुर सचिव तुव कामा ॥ ५ ॥

अहै मुहूरत शुभ गोधूली चलत बरात हुलासा।
ताते आजु तीर सरयू के होय सुपास निवासा॥
यहि बिधि शासन दै सुमन्त को उठन लगे महराजा।
आये चारि विदेह दूत तहँ विदा करावन काजा ॥ ६ ॥

कोशलपाल कमल पद बन्दे कहे कमल कर जोरी।
गवन विलम्ब अम्ब नृप राउरि आलस जनो न थोरी॥
तब पुनि कह्यो बिहँसि गुरु सो अस अब विलम्ब नहिं काजा।
जस जस मोहि बतावत धावन तस तस लागति लाजा ॥ ७ ॥

दूतन सों पुनि कहेउ अवधपति गोधूली शुभ वेला।
चली बरात जाय सरयू तट रहिहै अब नहिं झेला॥
जाहु दूत दीजै विदेह को आसुहि खबर जनाई।
चौथे दिवस दरस करिहैं हम मिथिलापुर महँ आई ॥ ८ ॥

सुन के दूत अकूत मोद लहि चले तुरत तिरहुता।
गये दान मन्दिर दशरथ इत बोल्यहु विप्रन पूता॥

हय गय भूमि कनक पट भूषण धेनु धाम धन वेशा।
किये दरिद्र हीन जग याचक राम लषन उद्देशा ॥ ९ ॥

फेरि गीत मंगल करवायो संयुत वेद-विधाना।
कौशल्या केकयी सुमित्रा नृप रानी तहँ नाना ॥
रंगनाथ को पूजन करिकै गौरि गणेशहु पूजी।
करिके सकल सिंगार सहचरी रति रम्भा जनु दूजी ॥१०॥

वृन्द वृन्द युवती तहँ गावत मंगल गीत स्वरीलो।
चली मृत्तिका लेन सरयूतट आनन्द अली रंगीलो॥
लै विधि सरयू तट ते मृदु गावत मङ्गल गीता।
लै आईं मण्डपहि मृत्तिका परिचारिका पुनीता ॥११॥
कौशल्या केकयी सुमित्रा कियो ब्याह को चारा।
इष्टदेव कुलदेव पूजि सब आनन्द भयो अपारा ॥१२॥

दोहा

खैर मैर माच्यो अवध, सुन्दर सजी बरात।
गोधूली वेला शुभग, आई अति अवदात॥ १ ॥

छन्द चौबोला

लै गुरु सकल पुरोहित जन को भूपति सदन सिधारे।
सुमिरि गौरिपति गणपति हरि सुन्दर बचन उचारे ॥
महाराज सुदिवस आयो अब करहु बिजय मिथिला को।
दधि दुर्बा तन्दुल घृत थारन दरस परस करि याको ॥ १ ॥

सुनि वसिष्ठ के बचन भूपमणि गुरुपद वन्दन कीन्हों।
सकल पुरोहित औारन विप्रन हेम दान वहु कीन्हों ॥
दधि दुर्बा तन्दुल कर परस्यो रंगनाथ कहँ ध्यायो।
लखिहौं राम चारि दिन बीते अस गुनि सुख न समायो ॥ २ ॥

उठ्यो चक्रवर्ती आसन ते मन्द मन्द पगु धारेउ।
पढ़त स्वस्त्ययन विप्रमण्डली स्वरयुत वेदन चारेउ॥
कनक कलश धर शीस सहस्रन आगे सधवा नारी।
करहिं मंगलामुखी गान बहु मंगल सुरन सँभारी॥३॥

रति रम्भा मेनका उर्वसी सरस चली नृप आगे।
जय जय शोर चारहू ओरन करहिँ पौरि अनुरागे॥
नारी वरषि वरषि लाजा सब गावहिँ मंगल गीता।
बिज्जु छटा सी चढ़ी अटा में कनक-लता छवि जीता॥४॥

गुरु वशिष्ठ आगू पगु धारेउ पाछे कोशल भूपा।
सोहत मनहुँ देव गुरु संयुत देव अधीश अनूपा॥
यहि विधि चारु चक्रवर्ती नृप चारु चाक पगुधारा।
भरत शत्रुहन सजे बड़े तहँ सुन्दर युगल कुमारा॥५॥

प्रथम वसिष्ठ चढ़ायो स्यन्दन दशस्यन्दन नृप राऊ।
लगी तोप तड़पन त्यहि अवसर परयो निशानन घाऊ॥
भयो सवार भूप निज रथ में मणि गण अमित लुटाई।
आठ आठ घोड़े रथ जोरे हीरन साज सजाई॥६॥

छाजत छत्र छपाकर की छवि चमर चलैं चहुँ ओरा।
शारद बारिद चलहिँ चारि दिशि मनु मधि अत्रिकिशोरा।
भरत शत्रुसूदन सुमन्त को कह्यो बुलाय नरेशा।
सेन चलावहु जौन भाँति हम प्रथमहिं दियो निदेशा॥७॥

करि अभिवन्दन दिगस्यन्दन पद तीनहु गये तुरन्ता।
रिपुहन हयगण भरत नाग गण रथ गण रह्यो सुमन्ता॥
चली बरात अवधपुर ते तव करि दुन्दुभी धुकारे।
नौवत भरत चली नागन महँ रव करनाल अपारे॥८॥

सकल अवधपुरनारि मनोहर गावहिं मंगल गीता।
दूलह दशरथलाल राम दुलहिन वैदेही सीता॥
छैल छबीले राजकुँवर सब सत्रुशाल के संगा।
क्षण क्षण क्षिति महँ नचत चलावहिं चंचल चारु तुरङ्गा॥ ९॥

मुकुट कनक कुण्डल हित हारन पीत पोशाक सँभारे।
पटुका पाग छोर छहरैं क्षिति झरैं मुकत जनु तारे॥
कहूँ धवावैं कहूँ कुदावैं बाजिन राजकुमारा।
झमकावैं असिकला दिखावैं रिपुहन पाय इसारा॥ १०॥

चमकावैं नेजा अति तेजा मेजा कहूँ मिलामैं।
रेजा रेजा किये करेजा जिन शत्रुन संग्रामै॥
बजे निशान वृन्द वृन्दन महँ फहरैं वृन्द निशाना।
राजकुमार देव सम सोहत रिपुहन जनु मघवाना॥ ११॥

यहि बिधि चल्यो तुरङ्गम मंडल सुतर सवारन पाछे।
राखे अभिलाखे अपने मन राम लषन कब आछे॥
नव यौवन की लसति अरुनिमा जिमि बीरी मुखलाली।
गोरे बदन दसन शोभा जनु उदित अमित उरमाली॥ १२॥

दोहा

छरे छबीले छैल सब, छन छन सुछवि अछाम।
छितिनायक के छोहरनि, छूटत छूटि ललाम॥ १॥

छन्द चौबोला

बाजी मण्डल के पीछे पुनि मण्डल चल्यो गयन्दा।
मनहुँ पवन पुरवाई पावत उदय श्याम घनवृन्दा॥
बारन बदन सदन्त बिराजहि हाटक बँधे मोहाले।
मनहुँ द्वैज शशि श्याम मेघ मधि उभय नीक छवि माले॥

सुण्ड वितुण्ड शुण्ड फहकारत साँकर लिहे पुरट की।
मनहुँ श्याम घन मण्डल में छवि छन छन में छन छटकी।
जटित जवाहिर हौद हेम के लसैं अमित अम्बारी।
मनहुँ विन्ध्य मन्दरशृङ्गन में सुरमन्दिर छविकारी॥ २

झेलन की झनकार मची तहँ घन घंटा घहनाने।
नदत नाग माते मग जाते दिग्गदन्ती सकुचाने॥
रघुवंशी सोहत अरिध्वंसी सिन्दुर सजे सवारा।
औरहु भूरि भूमि के भूपति केते राजकुमारा॥ ३।

ढालै करवालै कर लीन्हें कसी कमर महँ ढालै।
झूमत झुकत मुच्छ कर फेरत अति शोभित उर मालै॥
मन्द मन्द सब चलत पन्थ महँ हँसत बतात बराती।
एक एक सब लोकपाल सम राजत राजसजाती॥ ४॥

टूटत पन्थ तरुन की शाखा लागत हौद दरेरे।
मत्त मतङ्ग गण्ड मण्डल मण्डल मलिन्द करि घेरे॥
शत्रुजेय गजेन्द्र गजमण्डल मधि में भ्राजत भारी।
राजकुमार सवार भरत त्यहिं राजत जन मन हारी॥ ५॥

प्रमुदित मनहुँ मयंक उदित उदयाचल कर पसराई।
सकल शैल शृंगन पर सोहत तारागण समुदाई॥
गजमण्डल के पाछे सोहत रथ-मण्डल नहिं दूरे।
वर्ण वर्ण बाजिन की राजी राजि रहीं मगरूरे॥ ६॥

सुभट सूर सरदार सभ्य जन सज्जन सुकवि सुजाना।
चढ़े सकल स्यन्दन गमनत पथ भूषण भूषित नाना॥
पुनि रणधीर भीर प्यादन की सायुध चली अपारा।
चमकहि तेज अनी कुन्तन की सिन्धु तरङ्ग अकारा॥ ७॥

रथ-मण्डल पीछे पुनि सोहत परिकर भूपति केरो।
कनक दण्ड कर जटित हजारन रतनन होत उजेरो॥
हाटक के छोटे सोंटे कर पञ्चानन आनन के।
धरे कन्ध सोहत अति सुन्दर अवध जनन ज्वानन के॥ ८॥

सोहत बल्लम विविध प्रकारन छरी हजारन हाथा।
पीतवर्ण पहिरे पट भूषण चले जात प्रभु साथा॥
जे सेवक कोशल-नरेश के गमने राम बराता।
कड़े करन कठुला कंठन में कुण्डल कान सुहाता॥ ९॥

युग स्यन्दन सवार सोहत तहँ दिग स्यन्दन मुनिराई।
मनहुँ देवनायक सँग सोहत वाचस्पति सुख छाई॥
चारु चमर चहुँ ओर विराजैं छत्र छपाकर छाजैं।
अंसुमान इव आतपत्र युग विशद व्यजन बहु भ्राजैं॥१०॥

विविध किता के परम प्रभा के फहरैं विपुल पताके।
जिन ताके छाके सुर मानुष अरुझाते रवि चाके॥
कोशलपति पीछे पुनि गमनत राजत राज निषादा।
कीन्हे भीर निषाद भटन की हय चढ़ि विगत विषादा॥११॥

ऊट जूट ठट्टन सकटन की भरे साज के भारे।
खच्चर वृषभ अनेक जाति के लै सब साज सिधारे॥
यहि विधि चली बरात जनकपुर अवध नगर ते भारी।
कुशल कहहि लखि राम लषन को पूजी आश हमारी॥१२॥

सोरठा

उड़ी धूरि तहं झूरि, पूरि रही अति दूरि लौं।
भरी गगन लों भूरि, भूलि गये पथ गगनचर॥ १॥

छन्द

बाजन अनेक बाजहीं दश दिशन छाय अवाज।
तम्बूर ढोलक डुडुक डिंडिम प्रणव पटह दराज॥
मञ्जीर अरु मुरचङ्ग बेणु मृदङ्ग सलिल तरङ्ग।
बाजत विशालक हाल त्यों करनाल तालन सङ्ग॥ १॥
झल्लरि झर झर झाँझ सोहावनी झनकार।
रहि पूर ध्वनि शंखन असंखन सैन वारापार॥
बहु विधि विपंची सुर प्रपंची रची ध्वनि मनहारि।
बहु विगुल मुगुल बजावहीं जनु चुगुल स्वरंन उचारि॥ २॥
ध्वनि धरनि धांसनि की छई नौवत झरत मग जाति।
झिंझिन झनक श्रुति प्रिय अनक बाजत रवा बहु जाति॥
जाँगरे करत अलाप विरद कलाप भूप प्रताप।
अतिशय मिजाजी चढ़े बाजी करत अरि उर ताप॥ ३॥
बन्दी विदूषक बदन बहु विधि सुयश युक्ति समेत।
यह भानुकुल कीरति उदय जो स्वाति पुंथ समेत॥
हिम शैल सित हर शैल सित सित क्षीरनिधि सित चन्द।
भुवि भरत भरत सुगगन समिट्यो सुयश रघुकुल चन्द॥ ४॥
निकसी बरात अघात दल करि सकै कौन बखान।
कंपति धरणि शिर ते गिरनि की शेष उरनि सकान॥
लै लै विमानन विविध आनन विबुध वृन्द हँकारि।
नभ विबुधपति आयो विलोकन जक्यों विभव निहारि॥ ५॥
मन महँ कहत शत बाजि मख करि लहत जन पद मोर।
अब देखि दशरथ साहिवी मोहिं लगत स्वर्गहुँ थोर॥
त्रैलोकि सासन करन समरथ अहै दशरथ आज।
कहु कौन अचरज ताहि ज्यहि जगदीश सुत रघुराज॥ ६॥

अब चलहु संगहि सङ्ग वर्षत सुमन मन हरषात।
मोहि आजु आये काम नयन हजार लखत बरात॥
यहि विधि सुभाषत देवपति लै देवगण नभ आय।
सुरभित सलिल कन भारि मृदु वर्षत कुसुम समुदाय॥ ७॥

जब कढ़ी कोशल नगर ते मैदान माँहि बरात।
तब भयो देवन भोर मानहुँ सिन्धु द्वितीय देखात॥
उठती अनेक तरल तुङ्ग तरङ्ग तरल तुरङ्ग।
मातंग गण शिशुमार कच्छप नाव रथ बहु रंग॥ ८॥

राजत रतन भूषण रतन बहु भाँति जलचर जीव।
चहुँ ओर बाजिन शोर सत्य हिलोर शोर अतीव॥
अतिशय अपार बरात सिन्धु विख्यात विश्व सोहाय।
लखि राम पूरन बिधु बदन क्यतने अधिक अधिकाय॥ ९॥

सोरठा

यहि विधि चली बरात, रघुपति व्याहन जनकपुर।
सरयू तट नियरात, भूपति कह्यो सुमन्त सों॥ १॥

रामाश्वमेध ।

दोहा

विश्वामित्र वसिष्ठ सों, एक समय रघुनाथ।
आरम्भो केशव करन, अश्वमेध की गाथ॥ १॥

राम—

चामर छन्द

मैथिली समेत तो अनेक दान मैं दियो।
राजसूय आदि दे अनेक यज्ञ मैं कियो॥

सीय त्याग पाप ते हिये सों हौं महा डरौं।
और एक अश्वमेध जानकी बिना करौं॥ २॥

वसिष्ठ—

दोहा

धर्म कर्म कछु कीजई, सकल तरुनि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ ॥ ३॥

तोटक छन्द

करिये युत भूषण रूप रई, मिथिलेश सुता इक स्वर्ण मई।
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये, सुचिसों सब यज्ञ विधान किये ॥४॥
हय शालन तें हय छोरि लियो, शशि वर्ण सो केशव शोभरयो।
श्रुति श्यामल एक विराजत है, अलिस्यो सरसीरुह लाजत है ॥५॥

रूपमाला छन्द

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल।
भूषि भूषण शत्रु दूषण छोड़िया तिहि काल॥
संग लै चतुरङ्ग सेनहि शत्रुहन्ता साथ।
भाँति भाँतिक मान दे पठये सो श्रीरघुनाथ ॥ ६॥
जात है जित बाजि केशव जात हैं तित लोग।
बोलि विप्रन दान दीजत तत्र तत्र सभोग॥
वेणु बीन मृदङ्ग बाजत दुन्दुभी बहु भेव।
भाँति भाँतिन होत मङ्गल देव से नरदेव॥ ७॥

कमल छन्द

राघव की चतुरङ्ग चमू चय को गनै केशव राज समाजनि।
सूर तुरङ्गन के उरझैं पद तुरङ्गपताकनि की पट साजनि॥
टूटि परै तिन ते मुक्ता धरणी उपमा बरणी कविराजनि।
बिन्दकि धौं मुख फेनन के किधौं राजश्री स्रवै मङ्गललाजनि॥ ८॥

राघव की चतुरङ्ग चमू चय धूरि उठी जलहू थल छाई ।
मानो प्रताप हुताशन धूम सो केशवदास अकाशन भाई ॥
मेटि के पञ्च प्रभूत किधौं बिधि रेणुमई नव रीति चलाई ।
दुःख निवेदन को भवभार को भूमि किधौं सुर लोक सिधाई ॥ ९ ॥

दण्डक

नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूरि गिरि,
शोषि शोषि जल भूरि झूरि थल गाथ की ।
केशवदास आस पास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपत्ति सब आपने ही हाथ की ॥
उन्नत नवाइ नत उन्नत बनाइ भूप,
शत्रुन की जीविकाति मित्रन के हाथ की ।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित के,
आई दिशि दिशि जीति सेना रघुनाथ की ॥१०॥

दोहा

दिशि विदिशनि अवगाहि के, सुख ही केशवदास ।
बालमीकि के आश्रमहिं, गयो तुरङ्ग प्रकाश ॥ ११ ॥

दोधक छन्द

दूरहि ते मुनि बालक धाये । पूजित बाजि बिलोकन आये ॥
भाल को पट्ट जहाँ लव बाँच्यो । बाँधि तुरङ्गम जयरस राँच्यो ॥१२॥

श्लोक

एकवीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः ।
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली ॥

दोधक छन्द

घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी। कौनेहि रे यह बाँधिय बाजी।
बोलि उठे लव मैं यह बाँध्यो। यों कहि के धनुशायक साँध्यो।
मारि भगाय दिये सिगरे यों। मन्मथ के शर ज्ञान घने ज्यों ॥१४॥

धीर छन्द

योधा भगे वीर शत्रुघ्न आये। कोदण्ड लीन्हे महारोष छाये॥
ठाढ़ो तहाँ एक बालै विलोक्यो। रोक्यो तहीं जोर नाराच मोक्यो॥१५॥

शत्रुघ्न—

सुन्दरी छन्द

बालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरङ्गम। तोसों कहा करौं संगर संगम॥
ऊपर वीर हिये करुणा रस। वीरहि विप्र हते न कहूँ यश॥१६॥

लव—

तारक छन्द

कछु बात बड़ी न कहौं मुख थोरे। लव सों न जुरो लवणासुर भोरे॥
द्विजदोष नहीं बल ताको संहार्यो। मरिही जो रह्यो सो कहा तुम मार्यो॥

चामर छन्द

राम बन्धु बाण तीन छोड़िये त्रिशूल से।
भाल में विशाल ताहि लागियो ते फूल से॥ १८॥

लव—

घात कीन राजतात गात तैं कि पूजियो।
कौन शत्रु तैं हत्यो जो नाम शत्रुहा लियो॥ १९॥

निशिपालिका छन्द।

रोष करि बाण बहु भाँति लव छण्डियो।
एक ध्वज सूत युग तीन रथ खण्डियो॥

शत्रु दशरत्थ सुत अस्त्र कर जो धरै।
ताहि सिय पुत्र तिल फूल सम खण्डरै ॥२०॥

तारक छन्द

रिपुहा तब बाण वहै कर लीन्हों।
लवणासुर को रघुनन्दन दीन्हों॥
लव के उर मैं उरझ्यो वह पत्री।
मुरझाय गिरयो धरणी महँ क्षत्री॥ २१॥

मोटक छन्द

मोहे लव भूमि परे जबहीं। जय दुन्दुभि बाजि उठे तबहीं॥
भुव ते रथ ऊपर आनि धरे। शत्रुघ्न सो यों करुणानि भरे॥
घोड़ा तबहीं तिन छोरि लयो। शत्रुघ्नहिं आनन्द चित्त भयो॥
लैकै लव को तो चले जबहीं। सीता पहँ बाल गये तबहीं ॥२२॥

बालक—

झूलना छन्द

सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो वर बाजि।
चतुरङ्ग सैन भगाइ कै तब जीतियो वह आजि॥
उर लागि गो शर एक को भुव में गिरयो मुरझाइ।
बन बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुन्दुभीन बजाइ॥ २३॥

दोहा

सीता गीता पुत्र की, सुनि सुनि भई अचेत।
मनो चित्र की पुत्रिका, मन क्रम वचन समेत॥ २४॥

सीता—

झूलना छन्द

रिपु हाथ श्री रघुनाथ के सुत क्यों परे करतार।
पति देवता सब काल जो लव तो मिलै यहि बार॥

ऋषि हैं नहीं कुश हैं नहीं लव लेइ कौन छुड़ाइ।
वन माँझ टेर सुनी कहीं कुश आइयो अकुलाइ॥ २५॥

कुश—

रिपुहिं मार संहारदल, यम ते लेउँ छुड़ाइ।
लवहि मिले हैं। देखिहैा, माता तेरे पाइ॥ २६॥

सवैया

गहियो सिन्धु सरोवर सो ज्यहि बालि बली बर सो बर पेरयो
ढाहि दिये शिर रावण के गिरि से गुरु जात न जानत हेरयो।
शूल समूल उखारि लियो लवणासुर पीछे ते आइ सो टेरयो
राघव को दल मत्तकरी सुर अंकुश दै कुश कै सब फेरयो॥ २७।

दोहा

कुश की टेर सुनी जहीं, फूल फिरे शत्रुघ्न।
दीप बिलोकि पतङ्ग ज्यों, यदपि भयो बहु विघ्न॥ २८॥

मनोरमा छन्द

रघुनन्दन को अवलोकतही कुश। उरमाँझ हयो शर शुद्ध निरंकुश॥
ते गिरे रथ ऊपर लागत ही शर। गिरि ऊपर ज्यों गजराज कलेवर॥२९

सुन्दरी छन्द

जूझि गिरे जबहीं अरिहारन। भाजि गये तबहीं भट के गन॥
काढ़ि लियो जबहीं लव को शर। कंठ लग्यो तबहीं उठि सोदर॥३०॥

दोहा

मिले जो कुशलव कुशल सो, बाजि बाँधि तरुमूल।
रण महि ठाढ़े शोभिजे, पशुपति गणपति तूल॥३१॥

रूपमाला छन्द

यज्ञमण्डल में हते रघुनाथ जू तेहिं काल।
चर्म अङ्ग कुरङ्ग को शुभ स्वर्ण की सँगवाल॥
आस पास ऋषीस शोभित सूर सोदर साथ।
आइ भग्गुल लोग बरणे युद्ध की सब गाथ॥१॥

भग्गुल—

स्वागता छन्द

बालमीक थल वाजि गयो जू। विप्रन बालकन घेरि लयो जू।
एक बाँचि पट्ट घोटक बाँध्यो। दौरि दीह धनुशायक साँध्यो॥१॥
भाँति भाँति सब सेन संहारयो। आपु हाथ जनु ईस सँवारयो।
अस्त्र शस्त्र तव बन्धु जो धारयो। खण्ड खण्ड करि ताकहँ डारयो॥२॥
रोष, वेष वह बाण लयो जू। इन्द्रजीत लगि आपु दयोजू॥३॥
काल रूप उर माह हयो जू। वीर मूर्छि तव भूमि भयोजू॥४॥

तोमर छन्द

वहु बीर लै अरु बाजि। जब ही चल्यो दल साजि॥
तब और बालक आनि। मग रोकियो तजि कानि॥५॥
तिहि मारियो तव बन्धु। तव ह्वै गयो सब अन्धु॥
वह बाजि लै अरु बीर। रण में रह्यो रुपि धीर॥६॥

दोहा

बुधि वल विक्रम रूप गुण, शील तुम्हारे राम।
काकपक्ष धरि बाल द्वै, जीते सब संग्राम॥७॥

राम—

चतुष्पदी छन्द

गुणगण प्रतिपालक रिपुकुलघालक बालक ते रणरन्ता।
दशरथ नृप को सुत मेरो सोदर लवणासुर को हन्ता॥

कोऊ द्वै मुनिसुत काकपक्ष युत सुनियत हैं जिन मारे।
यहि जगत जाल के करम काल के कुटिल भयानक भारे ॥८॥

मरहट्टा छन्द

लक्ष्मण सुभलक्षण बुद्धि विचक्षण लेहु बाजि कर शोधु।
मुनिशिशु जनि मारहु बंधु उधारहु क्रोध न करहु प्रबोधु॥
बहु सहित दक्षिणा दै प्रदक्षिणा चल्यो परम रणधीर।
देख्यो मुनि बालक सोदर उपज्यो करुणा अदभुत बीर ॥९॥

दोधक छन्द

लक्ष्मण को दल दीरघ देख्यो। कालहु ते अति भीम विशेख्यो॥
दो में कहौ सो कहा लव कीजै। आयुध लेहौ कि घोटक दीजै॥१०॥
लव बूझत हो तो यहै प्रभु कीजै। मो असु दै बरु अश्व न दीजै॥
लक्ष्मण को दल सिन्धु निहारो। ताकहँ बाण अगस्त्य तिहारो॥११॥
कौन यहै घटि है अरि घेरे। नाहि न हाथ सरासन मेरे॥
नेकु नहीं दुचितो चित कीन्हों। सूर बड़ो इषुधी धनु दीन्हों॥१२॥
लै धनुवाण बली तब धायो। पल्लव ज्यों दल मारि उड़ायो॥
यों दोउ सोदर सेन सँहारैं। ज्यों वनपावक पौन बिहारैं॥१३॥
भागत हैं भट यों लव आगे। राम के नाम ते ज्यों अघ भागे॥
यूथप यूथ यों मारि भगायो। वात बड़े जनु मेघ उड़ायो॥१४॥

सवैया

अति रोष रसे कुश केशव श्रीरघुनायक सो रण रीति रचै।
त्यहि वारन वार भई बहु वारन खडग हनै न गणैं बिरचै॥
तहँ कुम्भ फटै गजमोति कटैं ते चले बहु शोणित रोचि रचै।
परिपूरण पूर पनारन ते जनु पीक कपूरन की किरचै॥१५॥

नाराच छन्द

भगे चये चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लक्ष्मणै।
भगे रथी महारथी गयन्द वृन्द को गनै।
कुशै लवै निरंकुशै बिलोकि बंधु राम को।
उठ्यो रिसाय कै बली बँध्यो सो लाज दाम को॥ १६॥

कुश—

मौक्तिकदाम छन्द

न हैां मकराक्ष न हैां इन्द्रजीत। बिलोकि तुम्हें रण होहुँ न भीत॥
सदा तुम लक्ष्मण उत्तम गात। करौ जनि आपनि मातु अनाथ॥१॥

लक्ष्मण—

कहै कुश जो कहि आवत बात। विलोकति हों उपवीतहिं गात॥
इते पर बाल बहिक्रम जानि। हिये करुणा उपजै अति आनि॥१८॥
विलोचन लोचन हैं लखि तोहिं। तजो हठ आनि भजौ किन मोहिं॥
क्षम्यो अपराध अजौ घर जाहु। हिये उपजाउ न मातहिँ दाहु॥१९॥

दोधक छन्द

हैां हतिहैां कबहूँ नहि तोहीं। तू बरु बाणन बेधहि मोहीं॥
बालक विप्र कहा हनिये जू। लोक अलोकनि में गनिये जू॥२०॥

कुश—

हरिणी छन्द

लक्ष्मण हाथ हथियार धरौ। यज्ञ वृथा प्रभु को न करौ॥
हैां हय को कबहूँ न तजौं। पट्ट लिख्यो सोइ बाँच लजौं॥२१॥

स्वागता छन्द

बाण एक तब लक्ष्मण छंड्यो। चर्म वर्म बहुधा तिन खंड्यो॥
ताहि हीन कुश चित्तहि मोहै। धूमभिन्न जनु पावक सोहै॥२२॥

रोष वेष कुश बाण चलायो। पवनचक्र जिमि चित्त भ्रमायो।
मोहि मोहि रथ ऊपर सोधे। ताहि देखि जड़ जंगम रोये ॥२३॥

नाराच छन्द

विराम राम जानि के भरत्थ सों कथा कहैं।
विचारि चित्त माँझ वीर वीर वे कहाँ रहैं॥
सरोष देखि लक्ष्मणै त्रिलोक्य तो विलुप्त ह्वै।
अदेव देवता ग्रसैं कहा ते बाल दीन ह्वै ॥ २४ ॥

राम—

रूपमाला छन्द

जाहु सत्वर दूत लक्ष्मण हैं जहाँ यहिवार।
जाय कै यह बात वर्णहु रक्षियो मुनिवार ॥
हैं समर्थ सनाथ वे असमर्थ और अनाथ।
देखिवे कहँ ल्याइयो मुनि बाल उत्तम गाथ ॥२५॥

सुन्दरी छन्द

भग्गुल आये गये तबहीं बहु। बार पुकारत आरत रक्षहु॥
वे बहु भाँतिन सेन सँहारत। लक्ष्मण तौ तिनको नहिं मारत॥२६
बालक जानि तजै करुणा करि। वे अति ढीठ भये दल संहरि॥
केहुँ न भाजत गाजत हैं रण। वीर अनाथ भये बिनु लक्ष्मण॥२७॥
जानहु जनि उनको मुनि बालक। वे कोउ हैं जगती प्रतिपालक॥
हैं कोउ रावण के कि सहायक। कै लवणासुर के हितदायक ॥२८॥

भरत—

बालक रावण के न सहायक। ना लवणासुर के हितदायक॥
हैं निज पातक वृक्षन के फल। मोहत हैं रघुवंशिन के बल ॥२९॥
जीतहि को रणमाँझ रिपुघ्नहि। को करे लक्ष्मण केवल विघ्नहि॥
लक्ष्मण सीय तजी जब ते वन। लोक अलोकन पूरि रहे तन ॥३०॥

छोड़ोइ चाहत ते तब ते तन। पाई निमित्त करेउ मन पावन॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि। पूत भये तजि पापसमाजनि॥३१॥

दोधक छन्द

पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता॥
दोषविहीनहि दोष लगावे। सो प्रभु ये फल काहे न पावै॥३२॥
हमहूँ त्यहिँ तीरथ जाइ मरेंगे। सतसंगति दोष अशेष हरैंगे॥
बानर राक्षस ऋच्छ तिहारे। गर्व चढ़े रघुवंशहि भारे॥
ता लगि यह कै बात विचारी। है प्रभु संतत गर्व-प्रहारी॥३३॥

चञ्चरी छन्द

क्रोध कै अति भरत अंगद संग संगर को चले।
जामवन्त चले बिभीषण और बीर भले भले॥
को गनै चतुरङ्ग सेनहि रोदसी नृपता भरो।
जाइ कै अवलोकियो रण में गिरे गिरि से करी॥ ३४॥

रूपमाला छन्द

जामवन्त विलोकि तहँ रणभीम भू हनुमन्त।
शोणि की सरिता वही सुअनन्त रूप दुरन्त॥
यत्र तत्र ध्वजा पताका दीन देहनि भूप।
टूटि टूटि परे मनो बहु वात वृक्ष अनूप॥ १॥
पुञ्ज कुञ्जर शुभ्र स्यंदन शोभिजै सुठि शूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि शोणित पूर॥
ग्राह तुङ्ग तुरङ्ग कच्छप चारु चर्म विशाल।
चक्र से रथ चक्र पैरत गृद्ध वृद्ध मराल॥२॥
केकरे कर बाहु मीन गयन्द शुण्ड भुजङ्ग।
चीर चौर सुदेश केश शिवाल जानि सुरङ्ग॥

बालका बहु भाँति हैं मणि माल जाल प्रकाश।
पैरि पार भये ते द्वै मुनि बाल केशवदास ॥ ३ ॥

दोहा

नाम वरण लघु वेश लघु, कहत रीझ हनुमन्त।
इतो बड़ो विक्रम कियो, जीते युद्ध अनन्त ॥ ४ ॥

भरत—

तारक छन्द

हनुमन्त दुरन्त नदी अब नाखौ। रघुनाथ सहोदरजी अभिलाखो ॥
तब जो तुम सिन्धुहिं नाघिगयेजू। अब नाघहु काहे न भीत भयेजू॥५॥

हनुमान—

दोहा

सीता पद सन्मुख हुते, गयों सिन्धु के पार।
विमुख भये क्यों जाहुँ तरि, सुनो भरत यहि बार ॥ ६ ॥

तारक छन्द

धनु बाण लिए मुनि बालक आये। जनु मन्मथ के युगरूप सुहाये॥
करिवे कह सूरन के मद हीने। रघुनायक मानहुँ द्वय वपु कीने॥७॥

भरत—

मुनि बालक हो तुम यज्ञ करावो। सुकिधौं वर वाजिहि बाँधन धावो।
अपराध क्षमौ सब आशिष दीजै। वर वाजि तजो जिय रोष न कीजै॥८॥

दोहा

बाँध्यो पट्ट जो शीश यह, क्षत्रिय काज प्रकाश।
रोष रचहु बिन काज तुम, हम विप्रन के दास ॥ ९ ॥

दोधक छन्द

कुश—

बालक वृद्ध कहौ तुम का को । देहनि को किधौं जीव प्रभा को ॥
है जड़ देह कहै सब कोई । जीव सो बालक वृद्ध न होई ॥१०॥
जीव जरै न मरै नहिं छीजै । ताकहँ शोक कहा करि कीजै ॥
जीवहि विप्र न क्षत्रिय जानो । केवल ब्रह्म हिये महँ आनो ॥११॥
जो तुम देहु हमैं कछु शिक्षा । तो हम देहिं तुम्हें यह भिक्षा ॥
चित्त विचार परै सोइ कीजै । दोष कछू न हमें अब दीजै ॥ १२ ॥

स्वागता छन्द

विप्र बालकन की सुनि बानी । क्रुद्ध सूर्य्य सुत भो अभिमानी ॥१३॥

सुग्रीव—

विप्र पुत्र तुम शीश सँभारौ । राखि लेहि अब ताहि पुकारौ ॥१४॥

लव—

गौरी छन्द

सुग्रीव कहा तुमसों रण माँड़ों । तोकों अति कायर जानि कै छाँड़ों ॥
बालि तुम्हें बहु नाच नचायो । कहा रणमंडन मोसन आयो ॥१५॥

तारक छन्द

फलहीन सो ताकहँ बाणचलायो । अति वात भ्रम्यो बहुधा मुरझायो ॥
तबदौरिके बाण विभीषण लीन्हों । लव ताहि विलोकतहीं हँसि दीन्हों ॥

सुन्दरी छन्द

आव विभीषण तू रण-दूषण । एक तुही कुल को कुल-भूषण ॥
जूझि जुरे जे भले भय जीके । शत्रुहिं आइ मिले तुम नीके ॥

दोधक छन्द

देववधू जबही हरि ल्यायो । क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो ॥
यों अपने जिय के उर आये । क्षुद्र सबै कुल छिद्र बताये ॥१॥

दोहा

जेठो भैया अन्नदा , राजा पिता समान ।
ता की पत्नी तू करी , पत्नी मातु समान ॥ १९ ॥
को जाने कै वार तू , कही न ह्वै है माइ ।
सोई तैं पत्नी करी , सुन पापिन के राइ ॥ २० ॥

तोटक छन्द

सिगरे जग माँझ हँसावत है । रघुवंशिन पाप नसावत है ॥
धिक तोकहँ तू अजहूँ जो जिये । खल जाइ हलाहल क्यों न पिये॥२१॥
कछु है अब तो कह लाज हिये । कहि कौन विचार हथ्यार लिये ॥
अब जाइ कै रोष की आग जरो । गरु बाँधि कै सागर डूबिमरो ॥२२॥

दोहा

कहा कहौं हौं भरत को , जानत है सब कोय ।
तो सों पापी सङ्ग है , क्यों न पराजय होय ॥२३॥
बहुत युद्ध भो भरत सों , देव अदेव समान ।
मोहि महारथ पर गिरे , मारे मोहन वान ॥२४॥

दोहा

भरतहिं भयो विलम्ब कछु , आये श्रीरघुनाथ ॥
देख्यो वह संग्राम थल , जूझि परे सब साथ ॥१॥

तोटक छन्द

रघुनाथहि आवत आइ गये । रण में मुनि वालक रूप रये ।
गुण रूप सुशीलन सों रण में । प्रतिविम्ब मनो निज दर्पण में ॥२॥

मधुतिलक छन्द

सीता समान मुख चन्द्र विलोकि राम ।
बूझ्यो कहाँ वसत हौ तुम कौन ग्राम ॥

माता पिता कवन कौन्यहि कर्म कीन ।
विद्या विनोद शिष कौन्यहि अस्त्र दीन ॥ ३ ॥

कुश—

रूपमाला छन्द

राजराज तुम्हैं कहा मम वंश सों अब काम ।
बूझि लीन्ह्यहु ईश लोगन जीति कै संग्राम ॥ ४ ॥

राम—

हौं न युद्ध करों कहे बिन विप्रवेश विलोकि ।
वेगि वीर कथा कहौ तुम आपनी रिस रोकि ॥ ५ ॥

कुश—

कन्यका मिथिलेश की हम पुत्र जाये दोइ ।
बालमीकि अशेष कर्म करे कृपा रस भोइ ॥
अस्त्र शस्त्र सबै दये अरु वेद भेद पढ़ाय ।
बाप को नहिं नाम जानत आजु लौं रघुराय ॥ ६ ॥

दोधक छन्द

जानकि के मुख अक्षर आने । राम तहाँ अपने सुत जाने ॥
विक्रम साहस शील विचारे । युद्ध कथा कहि आयुध डारे ॥७॥

राम—

अङ्गद जीत इन्हें गहि ल्यावो । कै अपने बल मारि भगावो ।
वेगि बुझावहु चित्त चिता को । आजु तिलोदक देहु पिता को ॥
अङ्गद तो अङ्ग अङ्गनि फूले । पवन के पुत्र कह्यो अति भूले ।
जाइ जुरे लव सों तरु लै कै । वात कही शत खण्डन कै कै ॥८॥

लव—

अङ्गद जो तुम पै बल हो तो । तो वह सूरज को सुत कोतो ।
देखत ही जननी जो तिहारी । वा संग सोवत ज्यों बरनारी ॥९॥

जा दिन ते युवराज कहाये । विक्रम बुद्धि विवेक बढ़ाये ।
जीवत पै कि मरे पहँ जैहें । कौन पिताहि तिलोदक दैहै ॥१०॥
अङ्गद हाथ गहे तरु जोई । जात तहीं तिल सो कटि सोई ॥
परवत पुञ्ज जिते उन मेले । फूल के तूल ले बाणन झेले ॥११॥
बाणन वेधि रही सब देही । बानर ते जो भये अब सेही ।
भूतल ते शर मारि उड़ायो । खेलि के कन्दुक को फल पायो ॥१२॥
सोहत है अध ऊरध ऐसे । होत बटा नट को नभ जैसे ।
जान कहूँ न इतै उत पावै । गोवल चित्त दशोदिशि धावै ॥१३॥
बोल घस्यो सो भयो सुर भङ्गी । ह्वै गये अङ्ग त्रिशंकु को सङ्गी ।
हा रघुनायक हौं जन तेरो । रक्षहु गर्व गयो सब मेरो ॥१४॥
दीन सुनी जन की जब बानी । तो करुणा लव बाणन आनी ।
छाँड़ि दियो गिरि भूमि परयोई । विह्वल ह्वै अति मानो मरयोई ॥१५॥

विजय छन्द

भैरव से भट भूरि भिरे बल खेत खड़े करतार करे कै ।
भारे भिरे रण भूधर भूप न टारे टरे इभ कोटि अरे कै ॥
रोष सों खडग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहूँ गरे कै ।
राम बिलोकि कहैं रस अद्‌भुत खाये परे नग नाग मरे कै ॥१६॥

दोधक छन्द

बानर रिच्छ जिते निशिचारी । सेन सबै एक बाण संहारी ॥
बाण बिधे सबही जब जोये । स्यन्दन में रघुनन्दन सोये ॥१७॥

गीतिका छन्द

रण जोइ कै सब शीश भूषण संग्रहे जे भले भले ।
हनुमन्त को अरु जामवन्तहि बाजि सो ग्रसि लै चले ॥
रण जीति कै लव साथ लै करि मातु के कुश पाँ परे ।
शिर सूँघि कंठ लगाय आनन चूँबि गोद दुवौ धरे ॥ १८ ॥

रूपमाला छन्द

चीन्हि देवर को विभूषण देखि के हनुमन्त ।
पुत्र हौं विधवा करी तुम कर्म कीन दुरन्त ॥
बाप को रण मारियो अरु पितृ भ्रातृ संहारि ।
आनियो हनुमन्त बाँधेरु आनियो महिगारि ॥ १ ॥

दोहा

माता सब काकी करी, विधवा एकहिं वार ।
मोसों और न पापिनी, जाये वंशकुठार ॥ २ ॥

दोधक छन्द

पाप कहाँ हति बापहि जैहौ । लोक चतुर्दश ठौर न पैहौ ।
राजकुमार कहै नहिं कोऊ । जारज जाइ कहावहु दोऊ ॥ ३ ॥

कुश—

मोकहँ दोष कहा सुनु माता । बन्ध लियो जो सुन्यो उन भ्राता ।
हौं तुमहूँ त्यहि बार पठायो । राम पिता कब मोहि सुनायो ॥४॥

दोहा

मोहि विलोकि विलोकि कै, रथ पर पौढ़े राम ।
जीवत छोड्यों युद्ध में, माता करि विश्राम ॥ ५ ॥

सुन्दरी छन्द

आइ गये तबहीं मुनिनायक । श्रीरघुनन्दन के गुणगायक ।
बात विचारि कही सिगरी कुश । दुःख कियो मन में कलि अंकुश ॥६॥

रूपवती छन्द

कीजे न विडम्बन संतत सीते । भावी न मिटे सु कहूँ जग जीते ।
तू तो पति देवन की गुरु वेटी । तेरी जग मृत्यु कहावत चेटी ॥७॥

तोटक छन्द ।

सिगरे रण मण्डल माँझ गये । अवलोकत ही अति भीत भये ॥
दुहुँ बालक को अति अद्भुत विक्रम । अवलोकि भयो मुनि के मन संभ्रम ॥८॥

दण्डक

शोणित सलिल नर वानर सलिलचर,
गिरि बालि सुत विष विभीषण डारे हैं ।
चमर पताका बड़ा बड़वा अनलसम,
रोग रिपु जामवन्त केशव विचारे हैं ।
बाजि सुरबाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहारे हैं ।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र कुश लव,
जीति कै समर सिन्धु साँचेहू सुधारे हैं ॥ ९ ॥

सीता—

दोहा

मनसा वाचा कर्मणा, जो मेरे मन राम ।
तो सब सेना जी उठे, होहि वरी न विराम ॥ १० ॥

दोधक छन्द

जीय उठी सब सेन सुभागी । केशव सोवत ते जनु जागी ।
त्यो सुत सीतहि ले सुखकारी । राघव के मुनि पायन पारी ॥११॥

मनोरमा छन्द

सुर सुन्दर सोदर पुत्र मिले जहँ । वर्षा वर्षे सुर फूलन की तहँ ॥
बहुधा दिवि दुन्दुभि के गण बाजत । दिगपाल गयन्दन के गण लाजत ॥१२॥

अङ्गद—

स्वागता छन्द

राम देव तुम गर्व प्रहारी। नित्य तुच्छ अति बुद्धि हमारी।
युद्ध देव भ्रमतै कहि आयो। दास जानि प्रभु मारग लायो ॥१३॥

रूपमाला छन्द

सुन्दरी सुत लै सहोदर बाजि लै सुख पाय।
साथ लै मुनि बालमीकहि दीन दुःख नशाय॥
राम धाम चले भये यश लोक लोक बढ़ाइ।
भाँति भाँति सुदेश केशव दुन्दुभीन बजाइ ॥ १४ ॥
भरत लक्ष्मण शत्रुहा पुर भीर टारत जात।
चमर ढारति हैं दुहों दिशि पुत्र उत्तम गात॥
छत्र है कर इन्द्र के सुर शोभिजै बहु भेव।
मत्त दन्ति चढ़े पढ़ै जय शब्द देवन देव ॥ १५ ॥

दोधक छन्द

यज्ञथली रघुनन्दन आये। धामनि धामनि होत बधाये।
श्रीमिथिलेशसुता बड़ भागी। स्यो सुत सासुन के पग लागी ॥१६॥

दोहा

चारि पुत्र द्वै पुत्रसुत, कौशल्या तब देखि।
पायो परमानन्द मन, दिग्पालन सम लेखि ॥१७॥

रूपमाला छन्द

यज्ञ पूरण कै रमापति देत दान अशेष।
हीर नीरज चीर माणिक वर्षि वर्षाविष ॥१८॥
अङ्गराग तड़ाग बाग फले भले बहु भाँति।
भवन भूषण भूमि भाजन भूरि बासर राति ॥१९॥

एक अयुत गज बाजि द्वै, तीनि सुरभि शुभ वर्ण।
एक एक विप्रहि दई, केशव सहित सुवर्ण॥२०॥
देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक।
मन भायो पायो सबन, कीन्हें सबन अशोक॥२१॥
अपने अरु सोदरन के, पुत्र विलोकि समान।
न्यारे न्यारे देश दै, नृपति किये भगवान॥२२॥
कुश लव अपने भरत के, नन्दन पुष्कर तक्ष।
लक्ष्मण के अङ्गद भये, चित्रकेतु रणदक्ष॥२३॥

भुजंगप्रयात छन्द

भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाये। सदा साधु शूरे बड़े भाग पाये॥
सदा मित्रपोषी हनै शत्रु छाती। सुबाहै बड़ो दूसरो शत्रुघाती॥२४॥

दोहा

कुश को दई कुशावती, नगरी कौशल देश।
लव को दई अवन्तिका, उत्तर उत्तम वेश॥२५॥
पश्चिम पुष्कर को दई, पुष्करवति है नाम।
तक्षशिला तक्षहिं दई, लई जीति संग्राम॥२६॥
अङ्गद कहँ अङ्गद नगर, दीन्हौं पश्चिम ओर।
चित्रकेतु चन्द्रावती, लीन्हौं उत्तर जोर॥२७॥
मथुरा दई सुबाहु को, पूरन पावन गाथ।
शत्रुघात को नृप कियो, देशन्हि को रघुनाथ॥२८॥

तोटक छन्द

यहि भाँति से रक्षित भूमि भई। सब पुत्र भतीजन बाँटि दई।
सब पुत्र महाप्रभु बोलि लिये। बहु भाँतिन के उपदेश दिये॥२९॥

बोलिये न झूँठ ईढ़ि मूढ़ पै न कीजई।
दीजिये जो बात हाथ भूलिहू न लीजई॥
नेह तोरिये न देहु दुःख मन्त्रि मित्र को।
यत्र तत्र जाहु पै पत्याहु जै अमित्र को॥ ३०॥

नाराच छन्द

जुवा न खेलिये कहूँ जुवा न वेद रक्षिये।
अमित्र भूमि माँह जै अभक्ष भक्ष भक्षिये।
करौ न मंत्र मूढ़ सों न गूढ़ मंत्र खोलिये।
सुपुत्र होहु जै हठी मठीन सों न बोलिये॥ ३१॥
वृथा न पीड़िये प्रजाहि पुत्र मानि पालिये।
असाधु साधु बूझि कै यथापराध मारिये॥
कुदेव देव नारि को न बाल वित्त लीजिये।
विरोध विप्रवंश सों सो स्वप्नहू न कीजिये॥ ३२॥

भुजङ्गप्रयात छन्द

परद्रव्य को तौ विषप्राय लेखौ। परस्त्रीनसों ज्यों गुरुस्त्रीन देखो।
तजौ कामक्रोधौ महामोहलोभै। तजौ गर्वको सर्वदा चित्तक्षोभै॥३३॥
यशै संग्रहौ निग्रहौ युद्ध योधा। करौ साधु संसर्ग जो बुद्धि बोधा।
हितू होइ सो देइ जो धर्मशिक्षा। अधर्मीन को देहु जैवाक भिक्षा॥१४॥
कृतघ्नी कुवादी परस्त्रीविहारी। करौ विप्रलोभी न धर्माधिकारी॥
सदा द्रव्य संकल्प को रक्षिलीजै। द्विजातीनको आपही दान दीजै॥३५॥

सवैया

तेरह मण्डल मण्डित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम साधै।
कैसेहु ताकहँ शत्रु न मित्र सु केशवदास उदास न बाधै॥
शत्रु समीप परे त्यहि मित्र से तासु परे जो उदास के जोवै।
वि ह सन्धिन दाननि सिंधु मिलै चहु ओरन तौ सुख सोवै॥३६॥

दोहा

राज श्री वश कैसेहूँ, होहु न उर अवदात ।
जैसे तैसे आपु वश, ताकहँ कीजै तात ॥ ३७ ॥
यहि विधि शिष दै पुत्र सब, विदा करे दे राज ।
राजत श्रीरघुनाथ संग, शोभित बन्धु समाज ॥३८॥

सभाविलास ।

परवाने

कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों वैर ।
जैसे बसि सागर विषे, करत मगर सों वैर ॥
अपनी पहुँचि विचारि कै, करतब करिए दौर ।
ते ते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर ॥
पिशुन छल्यो नर सुजनसों, करत विश्वास न चूकि ।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छाँछहि फूँकि ॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्योपार ।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥
करिये सुख को होत दुख, यह कहु कौन सयान ।
वा सोने को जारिये, जासों टूटै कान ॥
भले बुरे जहँ एक से, तहाँ न बसिये जाय ।
ज्यों अन्यायपुर में बिके, खर गुर एकै भाय ।
अति अनीति लहिये न धन, जो प्यारो मन होय ।
पाये सोने की छुरी, पेट न मारत कोय ॥
मूरख को पोथी दई, बाँचन को गुणगाथ ।
जैसे निरमल आरसी, दई अन्ध के हाथ ॥

अतिहठ मत कर हठ बढ़ै, बात न करिहै कोय।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय॥
लालच हूँ ऐसो भलो, जासों पूजै आस।
चाटेहूँ कहुँ ओस के, बुझत काहु की प्यास॥
जैसो गुण दीन्हों दई, तैसो रूप निबन्ध।
ये दोऊ कहँ पाइये, सोनो और सुगन्ध॥
प्रेम निबाहन कठिन है, समझ कीजियो कोय।
भाँग भषन है सुगम पै, लहरि कठिन ही होय॥
एक वस्तु गुण होत है, भिन्न प्रकृति के भाय।
भटा एक को पित करे, करै एक को वाय॥
विन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुये बयन।
लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू धयन॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावे कोय।
रोपै पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते होय॥
होय बुराई ते बुरो, यह कीन्हे निरधार।
खाड़ खनैगो और को, ताको कूप तयार॥
कन कन जोरे मन जुरै, खाते निबरै सोय।
बूँद बूँद सों घट भरै, टपकत रीते तोय॥
श्रमही सों सब मिलत हैं, विन श्रम मिले न काहि।
सीधी अँगुरी घी जम्यों, क्यों हूं निकरे नाँहि॥
होत न कारज मो विना, यहै कहै सो अयान।
जहाँ न कुक्कुट शब्द तहँ, होत न कहा विहान॥
यही बात सब ही कहैं, राजा करे सो न्याव।
ज्यों चौपर के खेल में, पांसो परे सो दाव॥

पर को अवगुण देखिये, अपनो दृष्टि न होय।
करै उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो होय॥
अपनी अपनी ठौर पर, सब को लागै दाँव।
जल में गाड़ी नाव पर, थल गाड़ी पर नाव॥

सुख दिखाय दुख दीजिये, खल सों लरिये काहि।
जो गुर दीन्हें ही मरत, क्यों विष दीजै ताहि॥
अनपूछे ही जानिये, मूढ़ देखि मन माहिं।
छलकै ओछे नीर घट, पूरे छलकै नाहिं॥

बिनशत बार न लागही, ओछे जन की प्रीति।
अंबर डंबर साँझ के, ज्यों बारू की भीति॥
कुल सपूत जान्यों परत, लखि सब लक्षण गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात॥

जो धनवन्त सुदेय कछु, देइ कहा धनहीन।
कहा निचोरै नग्न जन, न्हान सरोवर कीन॥
होत निबाह न आपनो, लीने फिरै समाज।
चूहा बिल न समात है, पूँछ बाँधिए छाज॥

बिना प्रयोजन भूलिहू, ठटिये नाहीं ठाट।
जानों नहिं जा नगर को, ताकी पूँछ न बाट॥
इंगित औ आकार ते, जान लेत जो भेद।
तासों बात दुरत नहीं, ज्यों दाई सों पेट॥

आप कहे नाहिन करे, ताको है यह हेत।
आप न जावे सासुरे, औरन को सिख देत॥
जो कहिये सो कीजिये, पहिले करि निरधार।
पानी पी कर पूँछनो, नाहीं भलो विचार॥

पाछे कारज कीजिये, पहिले यत्न विचार ।
बड़े कहत हैं बाँधिये, पानी पहिले वार ॥
ठीक किये बिन और की, बात साँच मति थर्प ।
होत अँधेरी रैन में, परी जेवरी सर्प ॥
ठौर देखि कै हूजिये, कुटिल सरल गति आप ।
बाहर टेढ़ो फिरत है, बाँबी सूधो साँप ॥
दोऊ चाहें मिलन को, तौ मिलाप निरधार ।
कबहूँ नाहिं न बाजिहै, एक हाथ ते तार ॥
आप अकारज आपनों, करत कुसंगति साथ ।
पायँ कुल्हारा देत है, मूरख अपने हाथ ॥
ताही को करिये यतन, रहिये जाकी ओर ।
कौन बैठि कै डार पर, काटै सोई डार ॥
परछत नीके देखिये, कह वर्णौं कोउ ताहि ।
कर कंकन को आरसी, को देखत है चाहि ॥
आये आदर ना करै, जात रहै पछिताय ।
आयो नाग न पूजिये, बाँबी पूजन जाय ॥
निवल सवल के पक्ष ते, सबलन सों अनखात ।
देत हिमायत की गधी, ऐराकी कै लात ॥
बहुत द्रव्य संचय जहाँ, चोर राज भय होय ।
काँसे ऊपर बीजुली, परत कहत सब कोय ॥
ओछे नर के पेट में, रहै न मोटी बात ।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात ॥

—:o:—

श्रीरामचन्द्र

श्रीमहाराज ब्रह्माजी के दो पुत्र थे। एक का नाम दक्ष, दूसरे का अत्रि था। दक्ष से सूर्य्य उत्पन्न हुए, जिनसे हिन्दुस्तान में सूर्य्य वंशी राजाओं का वंश चला; और अत्रि से सोम अर्थात् चन्द्रमा उत्पन्न हुए। उनकी सन्तान में जो लोग हुए वे चन्द्रवंशी कहलाते हैं। पहिले ही पहिले हिन्दुओं की राजधानी अयोध्यापुरी नियत हुई। इसमें सूर्य्यवंशी राजा लोग राज्य करते थे। उसके पीछे एक और राजधानी प्रयाग अर्थात् इलाहाबाद में नियत हुई। वहाँ के राजा चन्द्रवंशी अर्थात् चन्द्रमा के सन्तान कहलाते थे। सूर्य्यवंशी राजाओं में सब से प्रथम इक्ष्वाकु नाम राजा हुआ था और उसने अयोध्यापुरी को बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। राजा इक्ष्वाकु से पाँचवीं पीढ़ी में राजा अनरण्य अयोध्या की राजगद्दी पर सुशोभित हुए। उनके राज्य में चारों वर्ण निष्कण्टक निवास करते थे। और राजा भी पुत्र के समान प्रजा का पालन करते थे। कुछ काल के अनन्तर विश्रवा मुनि का पुत्र लङ्कापुरी का राजा रावण सम्पूर्ण राजाओं को विजय करता, अपने दिग्विजय का डङ्का बजाता, अयोध्यापुरी पर यकायक चढ़ आया और अयोध्याधिपति राजा अनरण्य के पास दूत द्वारा यह बात कहला भेजी कि आकर युद्ध कर, नहीं तो जयपत्र लिख दे। राजा अनरण्य इस बात के सुनते ही अग्नि समान जल उठे और दूत से कहा कि मैं क्षत्री हूँ। जो लड़ाई में मेरा प्राण जाय तो भले

जाय, पर यमराज भी आवें तो उन्हें भी मैं विना लोहा बजाये जयपत्र लिखने का नहीं। रावण क्या है; यदि वे मेरा राज्य लेना चाहें तो मैं दान देना चाहता हूँ, क्योंकि वे ब्राह्मण मेरे पूज्य हैं; मेरा राज्य, पाट, धन, जन, वरु प्राण भी उन्हीं का है जो चाहें लें मैं चूं नहीं करने का, कुछ भी मुँह खोलूँ तो खाल खिंचा लें, पर जो धमकावें तो मैं भी क्षत्री हूँ। इतना कह राजा ने दूतों को आदरपूर्वक बिदा किया और आप जा सभास्थान में बैठ गया। समाचार पाते ही मन्त्री, पुरोहित और सेनापति सभा में आ पहुँचे और अपने अपने स्थानों में यथाक्रम बैठ गये। उस समय महाराज की आँखें कुछ लाल सी हो रही थीं, भौंहें धनुष सी चढ़ी थीं, ओठ फरकते थे। यह देख और मन में अवरेख प्रधान मन्त्री जो बड़ा बुद्धिमान् और विद्वान् था, हाथ जोड़ महाराज के सोहीं हुआ। उसे देख अनरण्य महाराज कुछ शांत हुए और बोले, कहिए, आपने रावण का समाचार सुना है कि नहीं? वह बोला महाराज, सुना तो है। राजा ने पूछा, फिर कहिए क्या करना चाहिए? उसने हाथ जोड़ विनयपूर्वक उत्तर दिया कि महाराज, जहाँ तक बन पड़े लड़ाई बरा जानी चाहिए; रावण जो कुछ धन ले मान जाय तो अच्छी बात है, क्योंकि नीतिशास्त्र में लिखा है कि यदि शत्रु धन लेकर लौट जाय तो युद्ध कभी न करना चाहिए। प्रथम शत्रु को साम, दान, दण्ड, भेद से अपने अधीन करने का भरसक यत्न करना चाहिए, परन्तु यदि किसी प्रकार से भी शत्रु वश में न आवे तो अन्त में युद्ध करना योग्य है। विना समझे विचारे प्रजा के रुधिर से पृथ्वी को पूर्ण करना सर्वथा मूर्खता ही है।

हे कृपानिधान! शत्रु का और अपना बल तथा हानि लाभ बिना बिचारे युद्ध ठान बैठना, मुझे अच्छा नहीं जान पड़ता, आगे आपकी जैसी इच्छा, हम लोग सब प्रकार आप के अधीन हैं, जहाँ आपका एक बिन्दु भी पसीना गिरे वहाँ हम लोग घड़ा भर लोहू गिराने को उद्यत हैं। केवल आज्ञा पाने ही भर की देर है। इस बात को सुन पुरोहितजी भी बोले कि महाराज, यथार्थ है, जहाँ तक हो सके मेल ही करना उचित है; आजकल महाराज के दिन अच्छे नहीं हैं, युद्ध बचा जाना ही ठीक है। इन बातों को सुन राजा ने सेनापति क्षत्रियों की ओर आँखें फेरीं। उन सबों का रङ्ग और ही था, आँख लाल हो आई थीं, मोछें थर्रा रहीं थीं, क्रोध से सब अङ्ग डगमगा रहे थे, कटि की तलवार खड़खड़ा रही थी; दाँत पीस पीस मसोसते और रह रह उभक उभक उठते थे; सबके सब आपे से बाहर हो चले थे, मेल का मत देने वालों पर बिजुली सी पड़नी चाहती थी।

उनकी ऐसी गति देख महाराज ने पूछा—कहिए, आप लोगों की इच्छा क्या है? इतना सुनते ही सबके सब एक बार बोल उठे, युद्ध युद्ध! बस महाराज! आज्ञा हो युद्ध। महाराज सुनिए।

रावण जयपत्र लिखा माँगता है! वाह स्वामी, हम लोग राक्षस राजा के अधीन होंगे? अधीनता से बढ़ कर संसार में और कोई भी कठिन दुःख नहीं; तिस पर भी विधर्म्मी राक्षस की। महाराज, उसकी अधीनता मान लेने से हम लोगों की बड़ी दुर्दशा होगी। इह लोक पर-लोक दोनों बिगड़ेंगे, जीवन से मरण सहस्र गुण श्रेष्ठ है;

जीवन तो वही प्रशंसनीय है जो सुखपूर्वक प्रतिष्ठा से निभै, सो अधर्मी के अधीन रह कहाँ से होगा। मरना तो एक दिन है ही, किस दिन के लिए कुल में बट्टा लगावें। राजा के हित के लिए युद्ध में मरना ही अच्छा है। जो जीवेंगे तो स्वतन्त्र रहेंगे, अपनी जन्मभूमि बचेगी; किसी दूसरे से हाँहों हूँहूँ न करना पड़ेगा; जो लड़ाई में मरेंगे तो फिर क्या कहना है, उससे बढ़ कर क्या पा सकते हैं, झट विमान पर चढ़ इन्द्रपुर जायँगे और आनन्द भोग करेंगे। अब भला कौन ऐसा होगा जो आपकी आज्ञा न मान पराधीन हो जाना चाहेगा। जो अपने घर बैठ रावण कहला भेजता तो साम दान की बात थी; वह दल लेकर हमारे नगर पर चढ़ आया है, अब साम दान का नहीं पर बल ही का काम है। महाराज! हम लोग क्षत्रिय कहाते हैं, आपके सेवक हैं, जगत् की रक्षा के लिए ब्रह्मा ने हमें रचा है सो हम लोगों के जीते जी यह उत्पाती जो चाहता है करता है, पाप पुण्य को कुछ नहीं डरता, इसने सहस्रों ऋषियों को निरपराध नाश किया है और सैकड़ों कुलकामिनियों का सत भङ्ग किया है। हम लोगों को इसका उत्तर धर्म्मराज के पास देना पड़ेगा। हम लोग जान कर भी अनजान बने बैठे हैं। यह चाण्डाल अनाथों को सता रहा है। माना यह हमारे मान का नहीं, लड़ कर प्राण देना तो अपने हाथ में है। यद्यपि सूर्य्य बड़े प्रतापी हैं, पर जब वे मणि को तापित करते हैं तो मणि भी अपनी शक्ति भर ताप उगलती ही है, डर कर चुप नहीं रहा जाता। देखिए कोई राह की धूल पर पाँव देता है तो वह भी उड़ शिर पर चढ़ बैठती है। आग में पानी डालिए तो वह भी एक बार आप ही धधक उठती है तब बुझती है। और हमारा तो

यही दृढ़ निश्चय है कि आपकी आज्ञा के पालन में ही हमारा कल्याण है सो हे दीननाथ, सूर्य्यकुलतिलक! आप अपने वंश की ओर देखिए और अपनी ओर निहारिए। किस विचार में पड़े हैं। हम क्षत्रियों के लिए ऐसा शुभ दिन फिर अब आने को नहीं। अब विलम्ब न करना चाहिए। श्रीगणेशजी का नाम लीजिए और हम लोगों को आज्ञा दीजिए, हम जाकर आपके लिए अपना जन्म सफल करें। राजा की सेवा में ही प्रजा के जन्म की सफलता है।

दोहा

चलो चलो बहु दूर ते, रण भिक्षा के काज।
रावण पावन आयगो, हमरी पौरी आज॥ १॥
कुशकृपाण हाथहि लिए, लोहू नदी नहाय।
युद्ध दान हम देहिंगे, जीवन निज तिलनाय॥ २॥
जो रिपु को रणयज्ञ में, शस्त्र दान नहिं देहिं।
ते मूरख निज माथ पै, उभय लोक दुख लेहिं॥ ३॥

क्षत्रिय वीरों की इन बातों को सुन कर महाराज अनरण्यजी का भी जी उमग आया और बोले—मैंने आप लोगों का मत सुना। मुझे भी लड़ने ही में कल्याण देख पड़ता है, क्योंकि सच है, जो न लड़ने से अमर हो जायँ तो न लड़ें, पर जब एक दिन खाट पर निर्धन हो मरना ही है तो क्यों यश में झूँठा बट्टा लगावें।

जो मैं रावण को राज आज लिख दूंगा तो यह मेरा अपयश बहुत दिन तक रहेगा कि अनरण्य राजा ने राज दे अपना प्राण बचाया और उन्हीं से सूर्य्यवंशी राजाओं का

अन्त हुआ, और मेरी प्रजा रावण के कारबारियों के हाथ से दुख पायेगी तो मुझे क्या कहेगी ? निस्सन्देह वह यही कहेगी कि राजाजी ने अपना प्राण और बाल बच्चे बचाने के लिए हमें और हमारे बाल-बच्चों को राक्षसों के हाथ से सौंपा। माना कि सन्धि होने पर रावण हमारी प्रजा को हमारे ही अधीन रहने देगा, पर हम जब उसके अधीन रहे तो प्रजा उससे क्योंकर बाहर रह सकती है। इस कारण आप लोगों से निहोरा करता हूँ कि आज लाज आप लोगों के हाथ है। ऐसा काम करना चाहिये कि जिसमें नाम रहे। मैं तैयार होने जाता हूँ, आप लोग भी लड़ाई की तैयारी कीजिए। यह आज्ञा दे राजाजी सभा से उठ घर में गये। वहाँ जा बखतर झिलम टोप पहिन, अस्त्र शस्त्र बाँध, इष्ट देवता को प्रणाम कर बाहर निकलने को तैयार हुए। इतने में रानी की दाहिनी आँख कुछ फरक उठी। वह जी में दहल उठी। राजा के पास देव पितर मनाती चली आई। राजा को रणसाज किये देख मन में और डरी, पर उस घड़ी मनही मन में आगा पीछा कर रोक न सकी। पूछा, महाराज! आज किस पर यमराज रिसाया है ? आपकी आज्ञा तो सब सिरमाथों पर आपही मानते हैं, लड़ने का क्यों काम पड़ा? राजा ने मुसकुरा के रावण का समाचार कहा। रानी जी सुन चुप रहीं, पंचमुखी दीप बना राजा की विजय-आरती की। उस समय भी दीप की टेम बाईं ओर घूमी, उसे देख रानीजी के मन में और सन्देह हुआ, मुँह का रङ्ग जाता रहा, सुन्न हो गईं। मन में गुनने लगीं कि न जाने भगवान् आज क्या करने वाले हैं, सब असकुन ही होते हैं। राजाजी ने

उसके मन की बात जान ली और बोले, अयि क्षत्रिय इस संसार की सम्पत्ति, पुत्र, कलत्र वरु प्राण भी सब क्षणिक इनके लिए हम सरीखे लोग तनिक भी चिन्ता नहीं करते केवल अपयश और पाप से डरते हैं । रावण ने बड़ा उपद्रव मचाया है । उससे लड़ना हमको अवश्य है । आगे ईश्वरेच्छा। राजा अनरण्य इस प्रकार भवन में ठाट कर रहे थे कि इतने में सेनापतियों ने सेना की छावनी में रण-डंका बजवा दिया। सुनतेही जहाँ जो जैसा सोता बैठा खाता पीता था वैसे ही उठ धाया । छावनी भर में पुकार पड़ गई । अब कितने हाथी तैयार करते हैं, कितने घोड़े कसते हैं, कितने रथ जोतते हैं कितने अस्त्र शस्त्र बाँधते हैं, कितने किसी को पुकारते कि शीघ्र तैयार हो, कोई इधर दौड़ जाता है, कोई उधर बात की बात में चतुरङ्गिणी सेना तैयार हो गई। मारू बाजा बजने लगा । शतपति, सहस्रपति आदि सेनापतियों ने अपनी अपनी सेना अपने अधिकार में ली और आगे पीछे टहल अपने अपने गोलों को भली भाँति देख भाल लिया । जहाँ कहीं कोई कज पाई सुधार ली । सब सेना तैयार हो राजा की राह देखती खड़ी हुई ।

इतने में कड़खेतों ने कड़खा छेड़ा और कहा कि धन्य हैं वे जननी कि जिनके सपूतों ने आज राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए कमर बाँधी है । वाह वाह रणबाँकुरो ! वाह मार लिया है ! गीदड़ जाने नहीं पाता इतना कह ललकार कर चुनिन्दे कड़खों की तान टेरने लगे । सुनते ही वीर लोग मत्त हो गये, छाती दूनी हो गई रिस सब शरीर में व्याप गई, गोहुअन साँप सरीखे भन्ना उठे,

ाने और गाजने लगे; आँखें लाल लोहू सी हो गईं, मोछों के
ं खड़े टेकुए से, देह धुआँती सी। बस शूरता और क्रूरता के
ने मालूम पड़ते थे। लोहू के प्यासे, शेर से सब खड़े गूँजते थे।
क्षात् यम से मालूम देते थे। जिस किसी की ओर ताकते थे
ह सूख क्या जाता बिन मौत मर जाता था। उस समय कायरों
ो बड़ी दुर्दशा थी। मारे डर के थर थर काँपते थे। कड़खे की
ान बान सी लगती थी। कानों में उँगलियाँ देते थे। हृदय धक
क करता था। हाथों से अस्त्र गिरा पड़ता था। कमर खुली
ाती थी, आगे को पैर डाले तो पीछे पड़ता था। शूरवीरों
ी उमङ्ग उन्हें नहीं सोहाती थी। उस समय की सब बातें
न्हें विष सी लगती थीं। मन ही मन बरबराते कि ये सब
तिमारे बौराये हैं। मार काट छोड़ इन्हें दूसरी चाट ही
हीं। भले मनुष्यों की लड़ाई बात चीत की होती है। किसी
एक कहा तो मुँह न मोड़ा, बढ़ के दस सुनाया। इस पर
ो न माना तो कुछ मुँह बिरा कर अँगुलियाँ चमका दीं,
ार पर चढ़ बैठे; बस फिस हो गया। मुँह सा मुँह लिये
ह गया, और नानी के नाम रोता चला गया। फिर क्या
ामर्थ्य कि मुँह दिखावे और तब मुँह पर का पड़ना तो
र है। यह सब तो नहीं, बस मरने कटने चले, मनुष्य न
ए भेड़े बकरे हुए। यह नहीं जानते कि नर का चोला बड़े
प से मिलता है। जीते रहेंगे तो सब कुछ है। जब आपही
रहेंगे तो नाँव गाँव लेकर क्या करेंगे। "आप गये तो जग
ाया"। भाई हम तो बकरा कटते भी नहीं देख सकते।
िसी को लोहू कढ़ाते देखें तो घबरा जायँ। एक बार
ाहाने गये थे। एक जोंक देह में लग गई थी, तभी से हमें

तालाब और नदी को देख कर ज्वर आ जाता है। उस जोंक के डर से छः महीने तक खाट में पड़े थे। माँ बाप ने बहुत यन्त्र तन्त्र उतारा किए तो कहीं जाकर अच्छे हुए। पर अब तक आतङ्क जी से न गया। अब भी कभी कभी स्वप्न देखते हैं। खाट पर जोंक रेंगती देख पड़ती है, चौंक पड़ते हैं, फिर तो पहरों नींद नहीं आती। अरे बाप रे! लड़ाई में झनाझन तलवार चलेगी, खटाखट शिर कटेंगे, लोहू की धारा बहेगी। राम रे राम! जो चाहे सो हो, हम तो लड़ाई में न आवेंगे। राजा अपनी नौकरी लें, हमारी जान छोड़ दें, जो तलब दी है चाहे फिरता कर लें, लोटा थारी बाल बच्चा बेंच कर देंगे। बस अब वही बात है, कि "छोड़ बिलार मैं बाँड़ा हो जाऊँ"। कोई कतहा था कि हे शीतला माई! अब की बचूँ तो तुम्हारी पूजा गाँव जाकर करूँ। फिर तो नौकरी की ऐसी तैसी डोकिया ले घर घर भीख माँगूँगा तो माँगूँगा। नौकरी बेडकरी का नाम न लूँगा। कादर सब ऐसा कह कान चपा निकल जाने को बगल ताकने लगे। इतने में राजा अनरण्य का रथ झनझनाता आता देख पड़ा। वह लोहे का बना था। उसके पानी के आगे तीखी तलवार का भी पानी कुछ पानी न रखता था। छोटी छोटी घंटियाँ एक अनूठे प्रकार से बज रहीं थीं। आठ घोड़े जुते थे। देखने में वह जैसा सुहावना वैसा ही डरावना भी था। उस पर राजा जी ऐसे शोभते थे जैसे सूर्य्य। उनके आते ही सेना के सब लोग कमल सरीखे खिल उठे। सबों ने महाराज को एक एक कर प्रणाम किया। राजा ने भी सबों का सम्मान किया। किसी से तो पूछा कि आपके अधिकार के लोग लड़ने को तैयार हैं न?

किसी को देख कुछ मुसकरा भर दिया। किसी से कह दिया कि मुझे आपसे पूरा भरोसा है। महाराज ने इस प्रकार सबों के उत्साह को बढ़ाया। जिस किसी निर्लज्ज ने उस समय लड़ाई पर जाने से छुट्टी माँगी उसे मुसकरा के तुरन्त बिदा किया। चाकरी-चोर कपूत सेना भर में दसी पाँच निकले। और उसी पर ऐसे समय यह भी सुनने में आया कि वे यथार्थ में क्षत्रिय न थे। सत्य है क्षत्रियों से ऐसा काम कब होने को था।

जब कादर निरादर की गाँठ माथ पर ले, अस्त्र शस्त्र फेंक, ख़ाली हाथ सेना का साथ छोड़ कपूत कपूर हुए, तो जिस मण्डली से उन्होंने मुँह काला किया था उसके प्रधानों ने तीन तीन मुट्ठियाँ धूलि उठा अपनी मण्डली के सामने ओंइछ पीछे फेंकी और उन मण्डली के वीरों ने भी "धत्तेरे कादरों की" ऐसा कह धरती पर लात मारी।

इतने में प्रधान सेनापति ने ललकार कर व्यूह की आज्ञा दी। सुनते ही सब सेना पैतरा बदल अलग अलग हो बिरल हो गई। फिर सेनापति बोला "चक्रव्यूहं रचत सेना" चक्र व्यूह बन खड़ी हुई। सब के आगे कई पांतियाँ हाथियों की, उसके पीछे घोड़ों के दलों की, तब रथियों की, उसके पीछे पैदलों की, तब सेनापतियों की, उनके बीच बड़ा मैदान, उसमें राजा और प्रधान लोग जा रहे। सेना का वह व्यूह आश्चर्य्यजनक था। देखने वालों की बुद्धि दङ्ग होती थी। कुछ समझ में न आता था। जिस ओर देखो उसी ओर उसका मुँह दिखाता था। पर यथार्थ में सेना के सब लोगों का मुँह उसी ओर को था जिधर वे जाने को थे। सब हाथी, वाजी, पदाती और रथी पाँती बाँध बाँध कुछ तिरपट खड़े थे। इतनी पांतियों पर पांतियाँ थीं कि क्या सामर्थ्य

कि बाहर से पाँखी पर मार सके वा सौंक समाय। पर तो भी भीतर वालों के लिए ऐसी झाँझरियाँ थीं कि सबसे पिछली पाँति वाले भी बाहरवालों को भली भाँति देख और निशाना कर सकते थे। व्यूह क्या जादू का कोट था कि जिसके ओट में प्रधान का घवोट हो बैठे लड़ाई की बेंउत कर रहे थे। रण खेत को चलने की आज्ञा हुई। सेना व्यूह बनाये चली। कभी फैलती तो समुद्र सी जान पड़ती थी और जब सिमटती तो दस बीस लोगों की एक मण्डली सी बन जाती थी। जिस समय राजा जी सैन्य ले चले उस समय नाना प्रकार के बाजन बाजते थे, ध्वजा फर्रा रही थी। कड़खों की तान सुन वीर लोग प्राण को कुछ नहीं गिनते थे। हज़ारों अशकुन होते तो भी वीर लोग ऐसे वीर रस में पगे थे कि आगे बढ़ने की धुनि छोड़ और कुछ भी ध्यान नहीं करते थे। वे कहते थे कि:—

कोटिन फारि कटारि नहीं रण खेलन रावण को समुझैहैं।
तेग सिरोहिन राक्षस की सिर काट करोरन के उरझैहैं॥
तो मर्दान कहाइहैं जो यमलोकन दुष्टन पन्थ सुझैहैं।
रक्ष वधू हग वारि प्रवाह सों आपने क्रोध की आग बुझैहैं॥

सब यही लव लगाये थे कि कब शत्रु देख पड़े कि अपने मन की करें। थोड़ी देर में सेना नगर के बाहर रणखेत में जा पहुँची। तो क्या देखते हैं कि राक्षसों का दल मेघमण्डल सा नगर को घेरे खड़ा है। शस्त्र बिजुली से चमकते थे। धौंसे जो बाजते थे वही मेघ गर्जते थे। सैकड़ों झंडियाँ बकपाँति सी लखाती थीं। राजाजी की सेना जा खड़ी हुई। राक्षस सब बड़े प्रसन्न हुए, जाना कि हलुआ आया। इतने में प्रधान सेनापति ने तलवार काढी; कड़खेतों ने ललकारा और कड़खा गाया। क्षत्रिय वीर लोग तो इसके भूखे ही थे, राक्षसों से भिड़ पड़े। घमासान युद्ध होने लगा।

छन्द

डाटै लगै रणनाथ छाटै लगे परसाथ,
काटै लगै धर माथ कोप पूरि तीन छन ।
गिरैं अंग खण्ड थिरे लगे जङ्ग मुण्ड,
फिरै लगे संग चण्डभूत प्रेत मोद मन ।

मै लगे गाजि गज घूमै लगे बाजि, व्रज को चरै लगै ।
देखि भीरु लटै लगै, जूमै लगे माजि, मजबूती पत्ति ठान पल ॥

जूठै लगे यान भन, ऊटै लगे ज्वान जन,
छूटै लगे बाण घन, लूटै लगे प्राण तन ।

कर पग छटै लगे, सिर उर फटै लगे, सबलन को ठटै लगे ।
अंग खण्ड तटै लगे, सोबित हय गज कटै लगे, धरती पर पटै लगे ॥

स्यार कटकटै लगे मन मन घटै लगे,
पाछे पग हटै लगे क्रम क्रम नटै लगे ।
सर बढ़ि सटै लगे मारु शब्द रटै लगे,
चार ओर अटै लगे युद्ध ठाट ठटै लगे ॥

सोरठा

अब रण के मैदान, रुधिर नदों परगट भई ।
गज हय शुभग महान, छिन्न अंग ह्वै ह्वै गिरै ॥ १ ॥
यहि संसार के बीच अति, हर्षे सूर सुजान ।
चढ़ा वीर रस और हू, लगे करन घमसान ॥ २ ॥

इस प्रकार कुछ समय तक अच्छा लोहा बरसा । रुण्ड मुण्ड से धरती भर गई । क्षत्रियों ने अच्छी मनुसाई की । एक बार राक्षसों का दाँत खट्टा कर दिया, उनका छक्का छूट गया । धन्य है उन माई के सपूत पूत क्षत्रियों को जिन्होंने राक्षसों से ऐसा

१०

लोहा लिया। नहीं सच पूछो तो राक्षसों और मनुष्यों की लड़ा कैसी ? कहाँ वे आग कहाँ वे तिनके ? पर अन्त में राक्षसों ने ध दबाया। राजा के बड़े बड़े प्रधान सेनापति रावण के सेनापतिये से लड़ खेत आये। बची सेना बिचल चली। राक्षसों की सेना उनका पीछा किया। राजा यह देख बड़े क्रोधित हुए और अपन रथ आगे बढ़ाया। उन्होंने समुद्र की बढ़ती तरंग के समान राक्षसे के बल को ऐसा रोका कि जैसे समुद्र के तट का पर्वत ज्वार को रोके

छन्द

चले चन्द्रबान घनबान और कुहूकबान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रह्यो।
चली यमदाढ़े बाढ़वारी तलवारैं जहाँ,
लोहू आँच जेठ तरणि भानु आँच ह्वै रह्यो ॥
ऐसे समय फौजें बिचलाई देख अनरण्य,
अरि को दबायो अंग वीर रस च्वै रह्यो।
हय चले हाथी चले संग छाँड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली में वह राजसिंह अड़ि रह्यो ॥ १ ॥

उस समय काल का मारा जो सामने आया राजा ने उसे तुरन्त यमपुर पठाया और मन्दराचल के समान राक्षसों की सेना को मथने लगे। एक बार तो राक्षसों ने उन पर इतने अस्त्र चलाये कि उनका रथ ढक गया, पर थोड़ी ही देर में उन अस्त्रों को काट राजा ऐसे निकले कि जैसे मेघ मण्डल को छाँट सूर्य्य निकलते हैं। राजाजी को उस प्रकार युद्ध करते देख उनकी सेना जिसका जी टूट गया था फिर फिरी ; कहते ही हैं कि "खूँटे के बल बछरा नाचे" जब पीठ पर कोई रहता है तो साहस बढ़ता है। अनाथ का माथ नीचे रहता है। अब क्षत्रिय

लोग जी सङ्कल्प कर लड़ने लगे। फिर तो मरता क्या न करता। आँखें मूँदे हाथ मारते पिले चले जाते थे। जो जी पर खेलता है उसके सामने बिरला ही ठहरता है। अब तो राक्षसें की बाई पच गई। कोई सरीखे फटने और बग़ल ताकने लगे। कितनें ने भाग लङ्का की राह ली। कितने हाथियें के पेट तले जा छिपे। कितने लोथें में जा लेटे और दम खींच ली। किसी के पैर टूट गए, किसी के माथे फट गए, कोई बाई में मार मार बकता है, उठता बैठता है, कोई कहरता है, कोई रावण को कराहता और कहता है कि यहाँ हम को क्यों लाया और राजा के हाथ बधाया। कोई घायल हो धरती पकड़े है, उठना चाहता है पर फिर गिर पड़ता है। कोई अपना पटका फार घाव बाँधता है, कोई चिमटियें से अंग में घुसे तीरें को काढ़ता है। चारें ओर घायल पानी पानी चिल्ला रहे हैं, लोहू बह रहा है, सियार सियारिनियाँ लोथ फाड़ फाड़ खाती और कटकटाती हैं। गिद्ध कौवें की बन पड़ी है। भर भर पेट खाने पर भी लोथ ही पर बैठे आपस में लड़ते हैं, मांस खाने और रुधिर पीने वाले भूत प्रेत योगिनी डाकिनी सब आ जमी हैं।

इस प्रकार राजा ने जब भयावन और घिनावन रणभूमि कर दी तब तो रावण के प्रधान सेनापति विकरालवेष प्रहस्त, मारीच, सुमाली आदि अनेक राक्षस राजा से आ भिड़े। राजा एक और वे अनेक थे, तो भी राजा ने मारे बाणें के उनके छान उड़ा दिये। उन सबें का जी टूट गया। अब सब राजा के आगे ऐसे भाग चले जैसे बढ़ती दावानल से बन के हिरन भागते हैं, उनको भागते देख बचे बचाये क्षत्रिय वीरें ने जय-शङ्ख बजाया। उसको सुन रावण बहुत रिसाना, आग बबूला

हो गया। राजा के सामने आया और बोला कि अब राजा तेरी लड़ाई देखूँ। मैं जी से तेरी बड़ाई करता हूँ। तू सब बड़ा वीर है। मैं तुझे निठुर हो मारना नहीं चाहता। तू मुझ से हारने से न डर। मैं रावण हूँ। मेरी सेना को जीत अभिमान मत कर। आ मेरे गोड़ों गिर। तिनका दाँतों दाब। मुझ से अभय माँग। मैं दिग्विजय सेना के बल करने को नहीं निकला हूँ। देख मेरी भुजाओं को। इन्हीं के बल मैं सकल शत्रुदल को नाश करता हूँ। नहीं जानता कि मैं बरदान के कारण किसी के मान का नहीं हूँ। तेरी क्या विभूति, इन्द्र तो मेरा सामना करही नहीं सकता। रावण की इन बातों को सुन राजा अन-रण्य ने मन में गुन कहा कि आप ब्राह्मण मेरे पूज्य हैं। ब्राह्मणों के प्रकार आचार करो तो मैं आप का बिना मोल का दास बना हूँ। आप से क्षमा माँगने में मुझे कुछ भी लाज नहीं। आंज क्या मैं सदा आप से क्षमा माँगता हूँ। आप चाहिए मारिए चाहे जियाइए। राजा का इतना वचन सुन रावण अपना रूप संभारि खखार कर हँसा। उसका अट्टहास क्या मानो वज्र गिरने का शब्द था। आस पास के सुनने वाले सब बधिर से हो गये। घोड़े भड़क थिरकने लगे। हाथी भागने लगे। वहाँ के मनुष्यों की कौन कहे, देवता लोग भी चौंक उठे, धरती दहल उठी। इस पर भी राजा को न डरा देख रावण ने कहा अरे राजा! तू मुझे ब्राह्मण जान मत मान। मुझे ब्राह्मणों का यम और देवताओं का रिपु रावण जान। प्राण कुछ भी प्यारा है तो अब भी भाग। मेरे क्रोध की आग में क्यों अपने को आहुति करता है! भाग राजा भाग मेरे क्रोध की आग अब भभकना चाहती है! फिर किसी की थामी न

थमेगी । राजा ने कहा कि जो तू ब्राह्मण नहीं तो फिर दूसरा कौन है जिससे मैं डरूँ ! यमराज भी ललकारें तो भी रण से चौथा भर न टरूँ, मरूँ तो मरूँ । तू ब्राह्मण नहीं है तो सँभल जा । इतना कह राजा ने झट तरकस से चुन एक बाण निकाला और कान तक तान, रावण का प्राण लेने को ठान, उसके कण्ठ को लक्ष किया । उस बाण से रावण का प्राण भला क्या जाने वाला था । वह तो उसके कण्ठ में लगते ही टूट गया । यहाँ बाण चलाना क्या था, रावण के क्रोध की आग में घी की धार देनी थी । भभक उठा और ऐसा गर्जा कि जैसे हज़ारों बिजुलियाँ एक बार तड़कें, और हाथों में त्रिशूल लिए उछला, उसके उछलते ही देवता जो आकाश में रथ जमाये कौतुक देख रहे थे, भभर के भागे । सब जगत् के लोग अदङ्ग उठे, धरती काँप उठी, शेष का फण कूदने के धक्के से नय गया, दिग्गज हलचल होगये । बड़े वेग से हहाता और चिल्लाता आकाश में जा वहाँ से राजा के रथ पर कूदा । इतने में क्या देखते हैं कि राजा का रथ चूर हो गया है । घोड़े पिस चटनी हो गये हैं । राजा जी आप धरती पर जहाँ कि टुहुनियों से लोहू बह रहा है गिरे पड़े हैं, ऊर्धश्वास चल रहा है । धीरे धीरे प्रणव का शब्द मुँह से निकल रहा है और मन परब्रह्म में लग रहा है । तन को छोड़ परब्रह्म में लीन होने चाहते हैं । रावण भी त्रिशूल लिए एक किनारे खड़ा उनको देख रहा है । मन में कुछ गुनता सा था । उसको भी राजा के मरने का कुछ सोच सा हो रहा था । रावण ही नहीं उस समय जितने शत्रु मित्र थे सब के सब राजा के लिए हाय हाय कर उनके गुणों की प्रशंसा करते और रोते थे । पर रावण अपना

स्वभाव कहाँ छोड़ सकता था । उससे जो कोई अच्छा काम हो तो फिर वह रावण ही काहे को । अन्त को दुष्ट अपने स्वभाव पर आ गया । मुसकरा पड़ा और बोला अरे राजा ! अब कह, और लड़ेगा ? तेरा क्षत्रियपन कहाँ गया ? क्यों धुक धुक करता है ? उठ, और दो चार हाथ चला । मूर्ख कितना भी समझाया न माना । भला त्रिभुवन में मुझसे लड़नेहारा कौन है ? मुझसा वीर कोई न हुआ न होगा । जहाँ कहीं जब कभी कोई भी मुझसे लड़ेगा वह तेरे ही सरीखा मरेगा । रावण के यों गाल बजाते सुन राजा ने आँखें खोलीं । उनकी आँखें देख रावण कुछ डर सा गया, पीछे हटा । राजा ने कहा कि अरे दुष्ट ! जब दो लड़ते हैं तो उनमें एक जीतता और एक हारता ही है । यह एक बात सदा से चली आई है । मैं रणभूमि में सो रहा हूँ । यही मेरा क्षत्रियपन है । आँखों देखता साक्षी पूछता है ? रण में से मैं भागा तो नहीं, जो होनी थी हुई इससे तू क्यों डींग मारता और घमण्ड करता है ? तू मदान्ध हो रहा है । सूझता नहीं । इस समय भी तू मुझसे यों कह रहा है । सामने से हट; क्यों घबराता है, मेरे ही वंश में एक लड़का जन्म लेगा जो तुझे ऐसा खिला खिला मारेगा जैसे गरुड़ साँप को मारता है । राजा के इस शाप को सुन रावण सुन्न हो गया । पर ऊपर से हँस दिया और कहा कि तुझ बड़े ने कुछ मारा अब लड़के का बाक़ी है । इतने में राजा जी ने आँखें बन्द कर लीं । बस चल दिया ।

इनके मरते ही हाहाकार पड़ गया । जब वह समाचार अन्तःपुर में पहुँचा उस समय का हाल कुछ कहा नहीं जाता । मानो करुणा रस ने वहाँ जा डेरा किया । अन्तःपुर क्या दुःखों का

बसेरा हो गया । महारानियाँ सुनतेही ऐसी गिरीं कि जैसे काटा रूख गिरे। घंटों तक सुधबुध न रही। उनके पास समाचार क्या आया मानों उन पर वज्र पड़ा। जितने समय वे सब बेसुध थीं उतने ही समय दुःख से बची रही थीं। चेत होते ही दुःख की आग में पड़ीं। जलहीन मीन सी तड़पने लगीं। अङ्ग के आभूषण सब कहीं गिर पड़े, चूड़ियाँ टूट चूर हो गईं, तन के कपड़ों का कुछ ठिकाना न रहा, सिन्दूर माथों के मिट गये, कण्ठों के हार टूट गये, शिर खुल गया। कोई रोती तड़फती फिर मूर्छित हो जाती, चेत आते ही अति दुःख में आ पड़ती। हे भरद्वाज! रानियों के उस दुःख को मैं कैसे कह सुनाऊँ वा किस दुःख सा बताऊँ। वैसा दुःख मैं दूसरा कोई नहीं जानता । उसे देख दुःख भी दुःखी होता था, करुणा भी करुणा करती, पेड़ पल्लव भी रोते थे । पाथरों के भी कलेजे पिघलते थे। कुछ काल में प्रधान रानी मूर्छा से जागी। उसकी सी झझक कर उठ बैठी और बौड़ही या भूत-लगी सी आँखें फाड़ इधर उधर ताकने और बकने लगी। वह बोली—यह क्या है? सब क्या करती हैं? सब क्यों रोती हैं? सुनते हैं कि महाराज परलोक को सिधारे, अब कभी न आवेंगे, तो हम सब यहाँ किसके लिए रहें? हम लोगों में से एक भी उनके साथ न गई? उठो चलें, उनसे राह ही में मिलें। हम रोवें क्यों! यात्रा के समय रोकर अशकुन क्यों करें? हमको हमारी देह से कुछ काम नहीं। जिसे महाराज ने छोड़ दी वह किस काम की। अरी दासी! अब देर करने का कुछ काम नहीं। मेरी सोहाग पिटारी ला, मेरा शृंगार-पिटार रच कर दे । मैं स्वामी के साथ जाऊँगी। पिता ने उनके हाथ

सौंप दिया था, उनके बिना किसकी हो रहूँगी और रह कर भी क्या करूँगी। उनके बिना मुझे जीना मरना है और उनके साथ मरना मुझे जीना है। बड़ी रानी की उस वाणी को सुन और सब रानियों की आँखें खुल गईं, कान खड़े हो गए, रोमटे भरभरा आए और देह काँप उठी। सबों को सत चढ़ आया, सबों ने रोना पीटना छोड़ दिया और शृङ्गार-पेटार लिया। शृङ्गार कर सब की सब घर से बाहर निकलीं, बूढ़े पुरोहित ब्राह्मण साथ हो लिये। जब रानियाँ लाल कपड़े पहन, लाल सिन्दूर दिये, लाल आँखें किये, लाल फूलों की माला लिये, हाथों में लाल चुहचुहाती चुरियाँ पहने, लाल सिन्धौर भी लिये चलीं। उस समय एक अचरज की समा बँध गई। सत और पतिव्रत आप आ सदेह विराजते थे। सब देखने वालों को कठमुरी लग गई थी। रानियाँ गाती चली जाती थीं, लोग उन पर फूल बरसाते थे।

इस प्रकार रानियाँ चलती चलती रणखेत में पहुंचीं। वहाँ जाते ही राजाजी की लाश पड़ी देख सब दौड़ पड़ीं। पास जा हाथों हाथ उठा ली। किसी ने उनके माथे को जानुओं पर रख लिया। किसी ने पैरों को गोद में ले लिया पर जिस घड़ी उन सबों की आँख राजा जी के चोटों पर पड़ी, उस घड़ी उन पर फिर बड़ी बड़ी विपत्ति पड़ी। सबकी सब एक बार दुःख की अग्नि में पड़ गईं। कलेजा फटने लगा। केश खुल बिथुर गये। रोने पीटने का कुछ ठिकाना न रहा। सब जलहीन मीन सी तड़फती थीं। सौ सौ मरण-यातना सहती थीं पर मरती न थीं। कोई राजाजी के मुँह को देखती थी और रो रो कर जी खोती थी। कोई उनके मुँह के पास हाथ रख कर उनकी साँस देखती

थी। कोई उनका हाथ अपने हाथें में ले नाड़ी देखती थीं और तब भुङ्कार छोड़ रोती और पछाड़ खाती थी। कोई कहती थी कि हाय करम! यह क्या हुआ? महाराज के साथ मुझे भी रावण क्यों न मार गया? कसाई अधमरा कर मुझे तड़फड़ाने को छोड़ गया। कोई बोलती थी कि राजाजी मुझे कहते थे कि तू मेरे हृदय में बसती है, सो राजाजी तो चूर होगये, मैं ज्यों की त्यों हट्टी कट्टी बनी हूँ। मेरी एक चूरी भी न चूर हुई। हाय! महाराज की पाथर की लीक सी बात आज अलीक हुई। हाय! महाराज की यह दशा हो, मैं कुतूहल देखूँ। हाय! भगवान यह क्या किया। पुण्य, दान और धर्म्म, यम का यही फल हुआ? रानियों के इस प्रकार विलाप करने की प्रतिध्वनि सब ओर से आती थी। माने सब दिशायें रोती थीं। रानियों की इस दशा को देख, बूढ़ा पुरोहित बड़ा ढाढ़स बाँध, साहस कर, हिलते काँपते छड़ी लिये उनके सामने ज्यों त्यों कर आया। उसका भी गला भर आया था, कुछ बोलना चाहता था, पर बोल नहीं सकता था। आँखों में आँसू भर आया था, ओंठ विचुक विचुक काँपते थे। किसी प्रकार बोला और समझाया कि आप लोग सती हो जायँगी तो आप लोगों को निस्सन्देह सुख होगा, इस महादुःख से बच जायँगी। एक बार जल कर जन्म भर जलने से छुटकारा पावेंगी। पर महाराज की बड़ी हानि होगी। उनके घर में दिया न बरेगा। यह बात सच है कि महाराज पुण्यात्मा आप तारण तरण थे। रणक्षेत्र में शरीर त्याग किया, उनका परलोक आप बना है। क्रिया कर्म्म की भी कुछ आवश्यकता नहीं। पर तुम लोगों के बिना महाराज के वंश का पालन

पोषण कैसे होगा? आप लोग पतिव्रता हैं। आप लोगों का मुख्य धर्म्म यही है कि जिसमें पति को सुख और भलाई हो। आप लोगों को अपना सुख दुःख, मरना जीना कुछ न सोचना चाहिए। मैं समझता हूँ कि आप लोगों के घर फिर चलने में अच्छा है। यह कौन कहे कि आप लोगों को जन्म भर दुःख होगा, पर महाराज के घर में दिया न बरेगा। आप लोगों का पातिव्रत धर्म्म बढ़ेगा। इस प्रकार समझा बुझा कर पुरोहित ने कई रानियों को सती होने से रोका, पर जिनके सत ने जोर किया था, निःसन्तान थीं, वे किसी के कुछ कहने सुनने पर न आईं और राजाजी के साथ सती हुईं पर हुईं।

राजा अनरण्य की ५६ वीं पीढ़ी में राजा रघु के वंश में राजा दशरथ अयोध्या के स्वामी हुए, जिन्होंने अपने भुजाओं के बल से अखण्ड राज्य किया। परन्तु अपुत्र होने पर परम दुखी थे। निदान राजा ने श्रीश्रृङ्गी ऋषि को आचार्य्य बना कर पुत्रेष्टि-यज्ञ किया। यज्ञ के समाप्त होने पर यज्ञ-पुरुष ने यज्ञचरु राजा को देकर कहा कि-राजा! तू जाकर यह चरु अपनी रानी को दे दे, तेरे अवश्य पुत्र होगा। अनन्तर दशरथ के भवन में चैत्र शुदि ९ पुनर्वसु नक्षत्र में श्री रामचन्द्र जी परब्रह्म का अवतार कौशल्या रानी से, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्रा रानी से, श्रीभरत कैकयी रानी से, उत्पन्न हुए। श्रीरामचन्द्रजी ने बालकपन में मारीच और सुबाहु नाम महाबली राक्षसों को मार कर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की। उन्हीं कौशल्यानन्दन ने अपने अनुज लक्ष्मण सहित विश्वामित्र के साथ जनकपुर में जाकर जो महादेवजी का पिनाक धनुष किसी राजा से नहीं उठता था,

जिस धनुष को देख कर रावण और बाणासुर भी सिर झुका भाग गये उसे ऊख के समान तोड़ कर परशुरामजी का गर्व भङ्ग किया। राजा जनक ने धनुष-भङ्ग को देख कर बहुत हर्षित हो अपनी कन्या जानकी का विवाह विधिपूर्वक श्रीरामचन्द्र के साथ कर दिया। राजा दशरथ अपने पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं सहित अयोध्या में आकर धर्म-राज्य करने लगे। एक दिवस राजा दशरथ ने अपने मन में विचार किया कि मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। इसलिए यदि अपने जीवन ही में मैं अपने बड़े पुत्र रामचन्द्र को युवराज पदवी पर नियत करदूँ तो उत्तम हो। यह सङ्कल्प कर अपने गुरु श्रीवशिष्ठ जी से निवेदन किया। श्रीवशिष्ठ जी ने शुभ मुहूर्त निश्चय कर मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कल श्रीराम-चन्द्रजी को राज्याभिषेक किया जायगा। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी की सौतेली माता कैकयी ने अपने पति राजा दशरथ से दो बातों के पूरे करने का वर प्रथम ही मान रक्खा था। जब रामचन्द्र को युवराज होने का तिलक मिलने लगा तब कैकयी ने उन्हीं दोनों धरोहरों को माँगा। एक यह कि राज-तिलक मेरे गर्भज पुत्र भरत को मिले, दूसरे रामचन्द्रजी १४ वर्ष मुनिवेश से वन में रहें।

इस बात को सुन कर राजा दशरथ बड़े व्याकुल हुए। न वचन से फिरना और न ऐसे महायोग्य बड़े पुत्र को अधि-कार से रहित करना स्वीकार किया। जब कुछ बस न चला तो अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़े। इस दशा को देख रामचन्द्रजी ने अपनी माता की इच्छा का पूर्ण करना और पिता के वचन का प्रतिपालन करना अपना मुख्य धर्म समझ कर १४

वर्ष का वनवास हर्षपूर्वक स्वीकार किया। उनकी पत्नी सीताजी पतिव्रत धर्म को निवाहती हुई, तथा लक्ष्मण जी भायप स्नेह को दिखाते हुए श्रीरामचन्द्र के साथ वन जाने को उद्यत हो गये। निदान रामचन्द्र जी ने जानकी और लक्ष्मण को अपने साथ ले पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वन को प्रस्थान किया। प्रथम दिवस तमसा नदी के किनारे निवास कर प्रयागराज में भरद्वाज और वाल्मीकि मुनि का दर्शन करते हुए, चित्रकूट में जा कुटी बना रमण करते रहे। यहाँ अयोध्या में जब सुमन्त लौट कर आये और रामचन्द्र के न लौटने का समाचार राजा दशरथ को सुनाया। राजा पुत्रशोक से इस असार संसार को छोड़ स्वर्ग को चले गये। प्रातःकाल वशिष्ठजी ने भरत को बुलाने को केकय देश में दूत भेजे। भरतजी दूतों के साथ अयोध्या में आ राजारहित पुरी को देख दुःख में मग्न हो गये। यद्यपि प्रजा ने भरतजी से प्रार्थना की कि आप भी पिता की आज्ञा का पालन कर राजगद्दी को सुशोभित कीजिए, परन्तु भरत जी ने राज्य-सुख को तृणवत् त्याग रामचंद्र के मनाने को चित्रकूट प्रस्थान किया। वहाँ जाकर रामचंद्र के लौट आने की बहुत कुछ प्रार्थना की। परन्तु रामचन्द्र ने राज-सुख की अपेक्षा पिता की आज्ञा पालन ही करना मुख्य समझा। निदान भरत जी भी मुनि-वेश धर अयोध्या में आ तपस्या करने लगे।

अनन्तर रामचन्द्रजी पञ्चवटी में पहुँचे। वहाँ रावण की भगिनी सूर्पनखा रामचन्द्र से अपना विवाह करने आई। परन्तु रामचन्द्र एक-पत्नीव्रत थे, दूसरा विवाह करना स्वीकार नहीं किया। जब वह बहुत हठयुक्त हुई, लक्ष्मण जी ने उसके नाक

कान काट डाले। यह सुन कर, खर, दूषण और त्रिशिरा १४ हज़ार सेना लेकर रामचन्द्र पर चढ़ आये। परन्तु रामचन्द्र ने आधे निमिष में सबको छिन्न भिन्न कर दिया। इस समाचार को सुन कर रावण योगी का भेष धर कर जानकी को अकेली पा हर ले गया जब मार्ग में जटायु ने रावण को रोका और कहा कि तू बड़ा कायर और पापी है जो पराई स्त्री को चोर की नाईं हरे लिये जाता है। लङ्कापति ने क्रोध कर जटायु से घोर युद्ध किया। अन्त में अग्निवाण मार कर उसे गिरा दिया और सीता को समुद्र पार ले जाकर अशोक-वाटिका में रक्खा। जब रामचन्द्रजी मारीच राक्षस को, जो मायारूपी हरिण बना था, मार कर अपने स्थान पर आये और जानकीजी को आश्रम में नहीं देखा, तब नर देह धारण करने से अति विलाप करते हुए दोनों भाई सीताजी को खोजने चले। जब मार्ग में जटायु से सुना कि लङ्कापति रावण जानकी को हर ले गया है, तब रघुनाथ जी ने गृद्ध को परमभक्त जान कर उसका संस्कार अपने हाथ से किया।

फिर आगे जा कबन्ध राक्षस को मारा। उसके मुख से सुग्रीव वानर का समाचार सुन कर किष्किन्धा में पम्पासर के निकट जानकी को ढूँढ़ने लगे। सुग्रीव भी राज्य और स्त्री के छिन जाने से बड़ा दुःखी था। उसने आकर रामचन्द्र से मित्रता की। रघुराज रामचन्द्र ने वालि वानर को पापी जान उसे मार किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को दे दिया। उस की आज्ञा अनुसार करोड़ों वानर और भालु सीताजी के ढूँढ़ने को चारों दिशाओं में गये। हनुमान जी ने लङ्का में जाकर रावण की चौथाई सेना को नाश कर डाला और

लङ्कापुरी को भस्म कर दिया और लौट कर जानकी जी के कुशल का समाचार श्रीरामचन्द्र जी को सुनाया। तब रामचन्द्रजी ने बड़ी भारी सेना इकट्ठी कर लङ्का पर चढ़ाई की। समुद्र के किनारे पहुँच कर उसमें नल व नील से सेतु बँधवाया। जब रावण ने अपने भाई विभीषण का निरादर किया तब विभीषण ने श्रीरामचन्द्रजी के पास आकर शरण ली। रामचन्द्र ने उसी स्थान पर लङ्का के राज्य का तिलक विभीषण को दिया और उसी मार्ग से लङ्का में पहुँच कर उसे घेर लिया और सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद, नल, नील, वा जाम्बुवान आदिक सेनापतियों को साथ लेकर राक्षसों से घोर युद्ध करके उन्हें मार डाला। निदान जब संग्राम में रावण का अनुज कुम्भकर्ण तथा पुत्र मेघनाद मारा गया तब उसने आप चढ़ाई करके रामचन्द्र से युद्ध किया। पुनः रामचन्द्र-जी ने अग्निबाण उसके हृदय में मार कर उसे मुक्ति-पद दिया। जब विभीषण रामचन्द्र की आज्ञानुसार रावण का दाह-कर्म्म कर चुका तब रघुनाथ जी ने विभीषण को राजसिंहासन पर बैठाया। अनन्तर रघुनाथ जी ने सीताजी के बुलाने के हेतु हनुमान् को भेजा। वह सीताजी को जड़ाऊ सुखपाल पर बैठा कर रामचन्द्रजी के पास ले चला। उस समय सब लोगों की यह इच्छा भई कि यदि हम लोग जानकीजी का दर्शन करके अपने नेत्रों को सुफल करते तो अच्छा होता। अन्तर्यामी रघुनाथ जी ने विभीषण को आज्ञा दी कि जानकीजी से कहो कि पैदल आवें। यह वचन सुनते ही जानकी जी सुखपाल से उतर कर रघुनाथ जी के पास आईं। रामचन्द्रजी जानकी को लेकर सब सेना सहित पुष्पक विमान पर चढ़ कर लङ्का से चले।

जब तीसरे दिवस प्रयागराज पहुँचे, तब वहाँ से हनूमानजी को यह कह कर भेजा कि तुम अयोध्यापुरी में पहले जाकर हमारे आने का समाचार भरत जी को दो। अब केवल एक दिन अवधि का रह गया है, जो मैं अवधि पर नहीं पहुँचूँगा तो भरतजी अपना प्राण त्याग कर देंगे। यह वचन सुनते ही हनुमान जी ने अयोध्या में जाकर रघुनाथजी का आगमन भरत जी से कह दिया। यह समाचार सुन कर भरतजी को बड़ा हर्ष हुआ और हनुमानजी को आशीर्वाद देकर वशिष्ठ और पुरवासियों सहित रामचन्द्रजी को आगे से लेने गये। रघुनाथजी पहले श्रीगुरु वशिष्ठजी के चरण-कमलों पर गिरे अनन्तर उठ कर भरत और शत्रुघ्न को अपने कण्ठ से लगाया। वहाँ से अयोध्यावासियों और अपने साथियों को अनेक वाहनों पर बिठा कर अयोध्यापुरी में पहुंचे। रामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी ने सीता समेत राजमन्दिर में जाकर अपनी माता को दण्ड प्रणाम किया। पुनः वशिष्ठ जी की आज्ञानुसार राज-सिंहासन पर बैठ कर धर्म्मराज करने लगे।

वार्षिक मूल्य १।)

एक प्रति के =)

जाति प्रबोधक

मासिक पत्र ।

नहीं हटेगा सत्य मार्ग से,
हक़की बात बतावेगा ।
दोष हरेगा सर्व जाति के,
सब में ज्ञान बढ़ावेगा ॥
दयाचन्द्र का जाति प्रबोधक,
विश्व प्रेम दर्शावेगा ।
खड़े होंय सब निज पैरों पर,
यह संदेश सुनावेगा ॥

सम्पादक व प्रकाशक—
विश्वम्भर दास गार्गीय,
सदर बाजार, झांसी JHANSI.

भाग ४] माघ सं० २४५६ [अङ्क ४

विषय सूची।

भाग ४] माघ वीर नि. सं. २४४६ [अङ्क ४

उद्बोधन

जाति प्रबोधक कहता सच्ची,
उसका तुम न गिला मानो ।
हीन दशा के जाति चित्र से,
अपना ही तुम हित जानो ॥
औगुन त्याग गुनों को ध्याओ,
कुरीतियां सबही छोड़ो ।
आपद आवे चाहे जितनी,
कर्तव से मुख मत मोड़ो ॥

खोज की बातें ।

चूल्हे की भेट ।

जब चूल्हे पर कढाई में तेल या घी चढा हुआ होता है तो उसके पकजाने पर एक छोटी सी पूरी या टिकिया कढाई में तलकर चूल्हे में डाल देते हैं, और कहते हैं यह चूल्हे की भेट है ।

यदि इस पर विचार किया जाय तो मालूम होगा तेल में टिकिया के डालने का प्रयोजन तेल के कच्चे पक्केपन को देखने का है । जो वस्तु कच्चे तेल में तली जाती है वह अच्छी तरह नहीं सिकती प्रथम वारकी तेल में छोड़ी हुई वस्तु तेल के दोषों को हर लेती है इसलिये वह खाने योग्य नहीं होती । तेल के कच्चे रहने का कारण आग की मंदता है इससे आग को तेज़ करने के लिए चूल्हे में टिकिया को भेटतेहैं इसलिए प्रथम वार कढाई में चढ़ाई हुई वस्तु चूल्हे की भेट कहलाती है ।

आटे की चासनी ।

देखा गया है, जब स्त्रियें चूल्हे पर तवा रखकर आटे की पेड़ी तोड़ने को होती हैं तो पहले कुछ गूंदे हुए आटे को अंगुली पर लेकर परांत के किनारे पर लगा देती हैं और कहती हैं ऐसा करने से आटा नहीं थुड़ता । क्या वास्तव में ऐसा करने से आटा वढ जाता है ? यह विचारणीय वात है ।

मालूम होता है आटे को अंगुली पर लेकर देखने का

प्रयोजन यह है कि आटा अच्छी तरह गुंदा है या नहीं; उस में लेस आया है या नहीं? यदि आटा अच्छी तरह गूंदा जाय तो वह बहुत पानी पी सकता है, बहुत दढ़ सकता है और उससे बहुत बरकत हो सकती है और वह परिमाण में कभी नहीं थुड़ सकता। इसलिए गुंदे हुए आटे की वानगी परांत के किनारे पर पोंछकर यह कहना कि आटा थुड़ नहीं सकता बिल्कुल ठीक है। रसोइदार ने वानगी देखने का लाभ बताया था पर पूछने वाला परांत पर पोंछने का फल बरकत समझा।
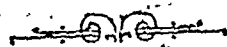
व्यापार-शिक्षा।

केवल चीजों की पहचान आजाने से ही आदमी व्यापार में चतुर नहीं हो सकता। वस्तु परीक्षा का इतना ज्ञान तो प्रत्येक प्राणीमात्र के लिये आवश्यक है। जिनको वस्तु परीक्षा नहीं आती वे सदा बाजार में ठगे जाते हैं। जिनको वस्तु परीक्षा का ज्ञान न हो वे अधिक माल खरीदने में अधिक ठगे जायंगे।

दुकानदार में ग्राहक के अपनाने का एक खास गुण होना चाहिए। भले आदमी रूखे दुकानदार के पास जाकर कभी नहीं फटकते। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि जिस तरह वेश्या आगत पुरुष का सत्कार करने में चतुर होती है दुकानदार में उससे भी अधिक मोहनी शक्ति और विश्वास पात्रता होनी चाहिए।

दुकानदार की चतुराई की परीक्षा उस समय होती है जब वह दिशावरों में माल खरीद करने के लिए व्यापार के सबसे बड़े गुरुओं के पास स्वयं खरीददार बनकर जाता है और उनके मालको सस्ता देखकर भी नकली चीज़ लेने व अन्य चीज़ों में ठगे जाने से बच जाता है।

व्यापारियों को दिशावर में जाते ही कभी किसी एक दुकानदार के सर्वथा भरोसे पर माल न खरीदना चाहिए उस को दो तीन दिन तक बाजार में चीजों के भाव ही देखने चाहिएं यदि किसी के यहां से कोई नयी चीज खरीद भी करे तो उस वक्त तक उसे दाम न दे और न उठावे जब तक कि दो चार जगह उस चीज़ को देखकर भाव न जांच लेवे।

जिस चीज़को जिसके यहां से लेनी करे उस दुकानदार का नाम, चीज़ का नम्बर, बनाने वाले का नाम और जहां वह बनी हुई है उस जगह का नाम, चीज की तादाद और दाम अपनी पाकट बुक में लिख लेवें और चीज़ पर अपनी निशानी डालदे। ऐसा करने से उसी साख की सूक्ष्म घटिया चीज़ पल्ले नहीं पड़ सकती।

बहुत सी चीजें ऐसी होती हैं जिनकी परीक्षा करके लेनी होती है। जैसे कपड़े का थान कहीं से कटा फटा तो नहीं है, बहुत दिनों का रखा २ खराब तो नहीं हो गया है, सूत को तोड़कर देखना चाहिए। पेंसिल से लिखकर देखना चाहिए। साबुन की टिकिया को कागज़ खोलकर देखना चाहिए सूखी या वही तो नहीं है। रसीली चीज़ों को सूंघकर व खोलकर देखना

चाहिए वे खराव तो नहीं हुई। नाज़ुक चीज़ों को देखना चाहिए कि वे टूटी फूटी तो नहीं हैं इत्यादि जिस चीज की जिस तरह परीक्षा हो सकती हो करे और अपने खरीदे हुए मालको अपने सामने संभालकर वक्स में बंद करावे।

दिसावरों में अकसर वे लोग वहुत ठगे जाते हैं जो शेखीबाज या उधार लेने वाले होते हैं। जिसकी मातवरी या माली हालत अच्छी नहीं होती उन्हें मुंह मांगे दाम देने पड़ते और जरूरत की चीजें नहीं मिलतीं।

दिसावरों में उधार लेने के वजाय अपने शहर में कर्ज़ काढना कई गुना अच्छा है। इतना व्याज अपने शहर में नहीं देना पड़ता जितना कि टका गांठमें न होने से दिशावर में उधार लेने वाले को मुंह मांगे दाम में देना पड़ता है।

जिन लोगों की अपने घर में मातवरी होती है उनकी दिशावरों में भी शाख बंधजाती है, उनको आड़ती लोग अपने ऊपर भुगतान लेकर माल खरीदवा देते हैं और वाकी रहे रुपये पर व्याज ले लेते हैं।

यद्यपि आड़ती के मारफत माल लेने में भी हानि है क्योंकि कभी २ उसके विश्वासपर भी महंगी का माल पल्ले पड़ जाता है और यह तो प्रत्यक्ष हैं ही कि आड़ती को आड़त और दलाल को दलाली जो देनी पड़ती है उसको नतो माल देता है और न दुकानदार अपने पास से देता है, वह भी किसी तरह से आपही को देनी पड़ती है। "समर्थ को नहिं दोष गुसाईं"

की कहावत से बड़े व्यापारियों का बड़ा भाग्य है, उसमें सब का साझा है, उनको दलाली क्या भारी मालूम हो सकती है उनको इनके द्वारा भी बहुत कुछ लाभ हो जाता है। जो साधारण व्यापारियों के लिए दुर्लभ ही है।

एक हास्यजनक घटना से प्राकृतिक उपदेश

(लेखक—श्रीमान् पण्डित कर्मवीर जी)

२० नवम्बर सन् १९१९ के जैनमित्र में 'शोलापुर में उत्सव और एक हास्य जनक घटना' इस शीर्षक से एक लेख निकला है जिसमें ऐलक पन्नालाल जी महाराज के केश लुंचन उत्सव का सम्वाद है और उसके साथ २ अनन्तराम नाम के एक कमंडलुपिच्छीधारी धूर्त की लीला का सविस्तर ज़िक्र है और जैन समाज को सूचना है कि संयमी संघ के प्रमाण पत्र देखे विना अथवा परीक्षा किये विना किसी त्यागी की पूजा प्रतिष्ठा न करे। प्रमाण पत्र के अभाव में तार तथा पत्रों द्वारा संयमी संघ से पूछ लिया जाय कि वह आगन्तुक जैन-धर्म्मानुसार त्यागी-व्रती है कि नहीं। हम भारत में एक अर्से से यही देख रहे हैं कि कहीं कोई धूर्त ब्रह्मचारी के भेष में माल उड़ाता है, कोई क्षुल्लक मुनि के भेष में अपना स्वार्थ सिद्ध करता है, और बेचारे भोले भाले गृहस्थी अपना और अपने कुटुम्बियों का हक़ और सुख मारकर भी इन भेषधारी बाबा लोगों की सेवा करते हैं। वे अज्ञान वश यही समझते हैं कि

जिसने श्वेत–पीत वस्त्र ले लिया, वा नग्न हो गया, या कमंडलु पिच्छी लेकर एक वस्त्रधारी क्षुल्लक, ऐलक हो गया वह जरूर हमारा धर्म्मगुरु है और महात्मा है, हमको हर सूरत से उसको प्रसन्न रखना चाहिए वरना हम अधर्मी हैं। परम्परागत रूढि के वंधन में फंसी भारत जनता भेष की दास हो रही है और दिन प्रतिदिन इस भेष–पूजा से अज्ञान कूप में पड़ी हुई घोर दुःख पा रही है।

संयम की सनद कैसी ?

जब जैनों के नेताओं ने देखा कि इस भेष के भीतर ठग विद्या सफलता प्राप्त कर रही है तो उन्हों ने एक संयमी संघ की स्थापना की और त्यागियों के लिए प्रमाण–पत्र यानी सर्टिफिकेट देने की रीति निकाली। मानो यह संयमी संघ एक यूनीवर्सिटी है जो सर्टिफिकेट देकर लोगों को संयम में परीक्षोत्तीर्ण वनाती है। क्या खूब! ज़रा विचार तो कीजिए, क्या संयम कोई ऐसी चीज है जिसकी कोई व्यक्ति सनद दे सके। जो भी कोई सनद लेगा उसका हेतु यही तो रहेगा कि मुझे लोग संयमी समझलें और मेरी प्रतिष्ठा पूजा करें अथवा भोजन पानादि मिल जाय, क्या ऐसी इच्छा वाला व्यक्ति जैन धर्म्म का संयमी होगा या अधम पेटार्थु? संयमी संघ के बनाने वाले जरा सोचें तो। जैन धर्म्म यह साफ कह रहा है कि इन्द्रिय और मनको निग्रह करने वाला संयमी है, भला जिसने इन्द्रिय और मनको जीत लिया वा जीतने का प्रयत्न कर रहा है क्या वह अपने संयम का ढंढोरा पीटने को संयमी संघ का

पत्र लेगा ? क्या ऐसा पूज्यजीव अपनी आत्मा को इतनी पतित समझेगा कि संयमी संघ वालों की छाप से लोक में अपनी शुद्धि का प्रमाण दें; वह स्वावलम्बन और त्याग की श्रेणी पर आरूढ होकर अपने को मोक्षगामी बनाता है कि संयमी संघका प्रमाण पत्रेच्छु और रुद्र खव्वा ? हमतो सप्रमाण दृढता के साथ कहते हैं कि जिसने भी संयमी संघ का पत्र ले लिया वह अपने संयम के धव्वा लगावेगा।

सयमियों को प्रमाण पत्र देने की रीति निकालने वाले त्याग मार्ग के नाशक और उत्सूत्री हैं, सच्चे मोक्ष मार्ग तथा संयम की वलि-हत्या करके संयमियों में ईर्षा और द्वेष को बढाने वाला परपंच रचते हैं। भगवान महावीर का वह उच्च कोटि का संयम मार्ग कि जिसका अनुयायी बाईस परीषहों का जीतने वाला उन्नत मस्तक होता था, उस संयम मार्ग को यह संयमी संघ और इनके पक्षपाती इतना रसातल को पहुंचायंगे कि संयमीको प्रमाण पत्र के लिए नत-भाल होकर पर के सामने याचक बननापड़ेगा। जैन धर्म्म के मर्मज्ञों को चाहिए कि वे संयम का मूल स्वरूप समझें।

किसी भी मत,पंथ, धर्म्म की व्यवस्था को देख लीजिए, देश देशान्तर के इतिहासों को पढ़ लीजिए, संयम का प्रमाण पत्र देना और उनके लिए एक परीक्षक मंडली बनाना कहीं भी नहीं मिलेगा संयम और प्रमाण-पत्र धारण परस्पर में विरुद्ध है। 'प्रमाणपत्र-धारी संयमी' यह पद ही भावशून्य, अयुक्त है।

ऐसा विदित होता है कि संयमी संघ के त्यागी और उनके भक्त नई रोशनी की निन्दा करने वाले धीरे २ खुद ही नई रोशनी वालों का अनुकरण करने लगेंगे, क्योंकि प्रमाण-पत्र (सनद) देना इस नई रोशनी के ज़माने की ही चाल है। पूर्व में कभी ऐसा नहीं हुआ और न किसी शास्त्र में इसका लेख वा विधान मिला। धर्म्मी भाइयो, देखो नई रोशनी की पहुंच।

यदि इस संयमी संघ की चल पड़ी तो सच्चे त्याग का मार्ग सर्वथा अवरुद्ध हो जायगा, और जैनों में वास्तविक त्यागी नामको भी नहीं पावेंगे। फर्ज़ कीजिए कोई आत्मोद्धारक त्यागी व्रती अपनी प्रतिज्ञानुसार विहारी हुआ, और वह ऐसी जगह गया जहां उसे कोई भी नहीं जानता। या उसका प्रमाण पत्र खो गया तो उस नगर वा ग्राम के जैनी संयमी संघ की आज्ञानुसार उससे प्रमाण पत्र के लिए पूछेंगे, जब वह इन्कार करेगा तो संघ के चलते फिरते अग्रेसरों को तार चिट्ठियां किस पते पर देंगे; क्या तब तक वह विचारा भूखों ही मरेगा? वा इन संयमियों की इकडंकी का प्रायश्चित करेगा ऐसे दुखों में कोई भी त्यागी न होगा। यदि ग्राम वालों ने संघ से प्रमाण मिले विना ही उसको ब्रह्मचारी त्यागी वा क्षुल्लक यथा भेष मान लिया और भेषार्हपूजा करके आहार भी दे दिया, तो संघ का होना न होना बराबर है। बल्कि संघ स्थापन करने का गुनाह बेलज्जत रहा। क्योंकि इस दशा में लोग भेष-पूजक ही रहे, धूर्त को भी वे संघियों की चिट्ठी पत्री आये बगैर ही या नकली प्रमाण-पत्र देखकर आहारादि का दान और पाद प्रक्षालन का मान देंगे जैसा अब तक कर रहे हैं। बुद्धिमान लोग विचारें

कि यह भेषियों की नौका संयमियों को कहां ले जारही है यह उनकी तारक है या डुवोऊ ?

विना एकान्तवास और हठयोग के केशलोंच व्यर्थ।

वास्तव में वात यह है कि नग्न हो जाना और काम क्लेश के गहरे २ तप करना, केश लुंचन करना तथा अनेक कठिनाइयां सहना हठयोग का अंग है जो पूर्ण एकान्त वास में किया जाता है। विना आसन की क्रियाओं के प्राणायाम और काय क्लेश सब फल-शून्य है, हठयोग का यह साधक और अनुचर है और उस अवस्था के प्राप्त करने में जरूरी है जो अवधि ज्ञान, ऋद्धि सिद्धि आदि के सिद्ध पुरुष की होती है। हठयोगी ही की देह कर्पूरवत उड़ती है, वही अनेक आश्चर्य सहित होता है। आधुनिक जैन शास्त्रों में जिस कायक्लेश पर गहरा जोर दिया है वह इन्ही सिद्धियों के धारक मोक्षमार्गी की अपेक्षा से है, शेष मार्गों का गौणत्व है। परन्तु अव खरावी यह पड़ गई कि हठयोग के साधक तो शनैः २ कम होते गये, यहां तक कि जैनोंमें तो इसका अभाव ही है, कोई एक दो छुपे हों तो मालूम नहीं। इसलिए कायक्लेश की व्यर्थ लीक पीटी जारही है। भावयोग्य और साम्य भाव चर्या का मोक्ष विधान तो पीछे के आचार्यों ने गौण कर ही दिया था, और इधरसे हठयोग जिसके अर्थ कायक्लेश का तप करना होता था वह भी जाता रहा। अव रह गया सिर्फ कायक्लेश, उपवास, क्षुधापिपासा का मारना इत्यादि। यह सव हठयोग के विना व्यर्थ है। इस अकेले काय

शोषण में मोक्ष सिद्धि नहीं। इस समय जितने भी नग्न मुनि ऐलक त्यागी लोग हैं वे सब हठयोग के मार्ग से पगे हैं, अतएव वे न इधर के रहे न उधर के। नतो वे हठयोग से मोक्ष मार्गी हैं; न साम्यभाव चर्या के साधक कर्म्मयोगी। इनकी गति और चर्या को मोक्ष-मार्ग कहना बड़ी भारी एकान्त भूल है। विना हठयोग के केश लोंच और नगणत्व का अभ्यास करना न तो चमत्कार-द्योतक मानसिक ऋद्धियां पैदा करता है और न शारीरिक योग-सौन्दर्य्य ही?

आज कल की जनता इस बात पर बावली हो रही है कि ये महात्मा भी वैसे ही हैं, होंगे, या हो सकते हैं, जैसा कि हम कथा पुराणों में सुनते हैं कि ऐसे २ तप के करने वाले आगे पीछे की बातें कह देते थे आकाश में उड़ते और रोगियों को नीरोग कर देते थे, इत्यादि। भला यह बात इस अर्थ के कायक्लेशियों में कहां से पा सकती है। जब तक ये कायक्लेशी लोग ठीक उसी मार्ग को न पकड़ेंगे कि जिससे उक्त चमत्कार वा आश्चर्य इन में पैदा हों तब तक न तो मूर्ति पूजा रुकेगी और न जैनों का सुधार होगा। हां, यदि ये लोग साम्यभाव चर्य्या के मार्ग को ग्रहण करके मोक्ष मार्गी हों तो बात बन जाय परन्तु इन लोगों से यह होने का नहीं। क्योंकि ये लोग अपनी ख्याति लाभ पूजा में जा पड़े और आत्मोद्धार के भाव लक्ष्य की दृष्टि से रहित हैं।

यह प्रभावना किसकी?

हे मुनि और ऐलको, आप कहते हैं कि हम केवलज्ञानियों के मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो हम आपसे पूछते हैं

कि आप केश लोंच की तिथियां नियत करके लोगों में क्यों प्रगट करते हैं ? किस शास्त्र में लिखा है कि केशलुंचन की क्रिया करने वाला हजारों आदमियों में बैठ कर ढंढोरा पीटकर यह क्रिया करे ? केवलज्ञानियों का मार्ग तो यह था कि मुनि ऐलक लोग अपना ध्यान, योग साधन, और सब काय क्लेश के तप की क्रियाएं जैसे आसनादि, केशलुंचन वगैरह एकान्त जनता शून्य स्थान में करें किसी को भी मालूम न हो कि अमुक त्यागी वा मुनि आज यह क्रिया करेगा वा इस २ तरह से करता है। सब के सामनें ऐसा करने से आत्म-लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती और उस ऋषि मार्ग का फल व महत्व जाता रहता है। ऐलकों तुम ये क्रियाएं आत्म-सिद्धि के लिये करते हो या लोक रञ्जनार्थ ? यह तो बताओ किस शास्त्र वा पुराण में तुम ने देखा है कि अमुक मुनि वा क्षुल्लक ऐलक जब २ केश लोंच करता था तब तुम्हारी तरह जनता को इकट्ठी कराता था और महिनों पहले नोटिस बंटवाता था, एवं चौकियां ऊंची लगाकर सबके बीच में अपनी गोप्य योग्य क्रिया को समाप्त करके अनधिकारी जनता में योग का रहस्य दिखावे को ज़ाहिर करता था। अब एलको, इन क्रियाओं को तुमने अनधिकारी जनता में प्रगट करके रत्नों को यों ही फैंका, तुम्हारी क्रियाएं खेल तमाशा होगई। एक घड़ी की ज्योनार और फिर वही कौवों का उड़ना। यदि तुम यह कहो कि ऐसा करने से धर्म्म की प्रभावना होती है, तो हम तुम से प्रश्न करते हैं कि प्रभावना का अर्थ और फल क्या? प्रभावना वह है जिस से दूसरा उस क्रिया के महत्व को अनुभव

करके उसको करने लगे। तुम्हारी इस केश लुंचन की क्रिया से कितने केशलुंचक और ऐलक होगये सो तो बताओ, और कितने अन्य धर्मी लोग जैनी वा त्यागी व्रती होगये। ज़रा खयाल तो करो। यह तुमने अपनी प्रभावना की या क्रिया व धर्म्म की?

केश लुंचन की कीमत।

रूढि के उपासक ब्रह्मचारी और संस्थाओं के विद्वानों के शिरमौर एलको! तुम इन व आडम्बरी क्रियाओं से यह समझते हो कि इनसे लोगों पर प्रभाव पड़ता है, प्रभावना होती है, जनता संस्थाओं में दान देती है, अन्यथा संस्थाएं न चलें। यह सरीहन आपकी भ्रम बुद्धि है। समाज पर आपके इन उत्सवों का ज़रा भी असर नहीं पड़ता, समाज में यथार्थ विचार की शक्ति ही नहीं पैदा होती। तुम्हारे इन केश लुंचनों के मौकोंपर जो कुछ तुम दान कराते हो वह विवेक से नहीं होता दातार लोग जिस कार्य के निमित्त तुम्हारे आदेश से देते हैं वे उस संस्था और कार्य की योग्यता अयोग्यता पर विचार नहीं करते किन्तु वे तो तुम्हारे काय-क्लेश के दो घड़ी के दृश्य की एवज से सोडावाटर के जोस में आकर चन्दा भर देते हैं। वह दान तो केश लोचन की कीमत है जनता तनिक भी नहीं विचारती कि वह क्यों दान करती है और उसम लाभालाभ क्या है; तुम्हारे इन दृश्यों और क्रियाओं से समाज का उत्थान नहीं किन्तु पतन हुआ

है। क्या किसी धनिक ने विचार पूर्वक अपने शांति भावों से स्वयमेव किसी संस्था को निज द्रव्य से स्थापित किया है? क्या किसी धनिक ने जो तुम्हारे लुंचन के वक्त दो चार हजार दान देता है स्वोपयोग से जाति की विद्याहीन दशा पर अन्तःकरणीय दुख का वेदन करके किसी जातीय संस्था को सहायता की है, और पात्रापात्र का लक्ष्य रक्खा है? हां, अपने राजा व शासकों से उपाधियां लेने के भाव में अथवा समय के प्रभाव से प्रेरित होकर ख्याति लाभ पूजा के निमित्त कुछ संस्थाएं दो एक धनिकों ने खोली हैं। इस से साफ़ है कि समाज ने अपनी सामाजिक पतितावस्था का अनुभव नहीं किया, उनके हृदय में ज्ञान की कदर है ही नहीं! यदि ऐसा होता तो, हे एलकदेव आपको केश लुंचन के समय चन्दा न भरवाना पड़ता और न आपको गार्हस्थ्य योग्य संस्थाओं की सिफ़ारिशें करनी पड़तीं। गृहस्थ-नेता अपना काम अपने आप करते। ऐलकराज, आपके इन केश लुंचनोत्सवों से जाति अन्धश्रद्धा में और भी डूब गई, इस को उन्नति का मार्ग सूझता ही नहीं! दूसरी बात यह है कि आपके इस निःसार क्रियाकाण्ड का प्रभाव तो रंच मात्र भी नहीं होता। प्रभाव दो ही तरह से पड़े, या तो तुम हठयोगी बनो, या कर्म योगी। देखो मदन मोहन मालवीय महात्मा ने करोड़ रुपये से भी ज्यादः दो तीन साल में एकत्र करके हिन्दू विश्वविद्यालय खुलवा दिया। इस मालवीय ब्रह्मर्षि ने कौनसा केश लुंचन का ढोंग किया था, और कौन

सा वेष रक्खा था। महात्मा गांधी अहिंसा व्रतधारी, सत्य-तपोधन होकर जैसा लोकोद्धार कर रहा है, हे ऐलको वैसा आपतो अपने सिर के बाल उखाड़ २ कर भी नहीं कर सकते। तुम्हारे सारी उम्रभर के केशलोंचोत्सवों में जो जैनों का दान होगा उस से तो कई गुणा अधिक जैनों ने इन महात्माओं के लोकोपकारी कार्यों में दे दिया होगा। ऐसा क्यों होता है? गान्धी, तिलक, मालवीय आदि महापुरुष कर्मयोगी हैं और आप ऐलक ब्रह्मचारी लोग अन्ध-श्रद्धालु रूढ़ि के गतानुगतिक हो, न कर्म योगी और न हठयोगी!

साम्प्रदायिक एकता।

अभी बहुत समय नहीं हुआ जब जैन मतानुयायि-सम्प्रदायों में परस्पर एकता थी एक दूसरे के उपदेश को रुचि के साथ सुनता था, एक दूसरे के साथ वात्सल्यभाव दिखलाता था; एक दूसरे के मंदिर में बिना संकोचभाव के जाता था और वार्षिक धर्म-पर्वोत्सव पर तो दोनों भाई परस्पर ऐसे दिल खुलकर मिल जाया करते थे मानों इनमें कोई भी धर्म का भेद भाव नहीं है। दूसरे लोगों पर हमारी इस एकता का ऐसा अच्छा असर पड़ा करता था कि सब के मुंह से यही सुनने में आता था कि जैनियों में बड़ी एकता है। पर समय की खूबी है कि जो बात २५ वर्ष पहले थी

यह आज नहीं है इसको हम अवनति का कारण कहें, या उन्नति का ? जिस अर्द्धदग्धता ने, उत्सूत्रता ने, छिद्रान्वेशन ने हमें भाई २ से जुदा कर दिया, परस्पर द्वेषभाव बढा दिया उसे उन्नति का कारण कैसे कहदें ?

मुसलमानों में शिया सुन्नी दूसरों के लिए एक हैं क्रिश्चियनों में रोमन कैथलिक, और मेथोडिस्ट में प्रेम भाव है। शिव और रामानुजियों में एकता है पर जैनियों की दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में परस्पर वात्सल्यभाव नहीं ! एक दूसरे से इस तरह विछुर रहे हैं जिस तरह हिन्दू मुसलमानों का विछोह। समय के फेर से हिन्दु मुसलमानों में एकता हो गयी, वैश्नव और जैनियों में भी एकता है पर जैनियों २ में एकता नहीं ? यह कितने आश्चर्य की बात है ? एक का दूसरे के मंदिर में जाने से सम्यक्त भंग होता है, कितनी अनोखी बात है ! देवी, भवानी, सैयद क्षेत्रपाल को पूजने से जिनका सम्यक्त भंग नहीं होता; श्वेताम्बर मूर्ति पूजन से उनका सम्यक्त कैसे भंग हो जाता है ? इसको वे ही बता सकते हैं जिनको मूर्ति पूजन का उद्देश्य और भेद व्यवस्था का ज्ञान नहीं है। हमने कितने ही श्वेताम्बरों को दिगम्बर मूर्ति के दर्शन करते हुए देखा है पर यह कहते किसी को नहीं देखा कि ऐसा करने से यह मिथ्या दृष्टि होगया है। पर दिगम्बरों में यदि कोई श्वेताम्बर मूर्ति का दर्शन कर लेवे तो गजब ही ढह जाता है, उसका सम्यक्त भंग हो जाता है, और वह मिथ्यादृष्टि के नाम से

विख्यात कर दिया जाता है।

दोनों आम्नाय वाले एकही तीर्थंकरों के पूजने वाले हैं दोनों की मूर्तियों के हाव भाव में आकार में भेद नहीं। यदि भेद है तो कुछ भक्तिवश किया हुआ वाह्य भेद है। जैसे मुकुट का धारण करना, कांच के चक्षु जड़ना, ओष्ट और तलवे लाल करना, केशर लेपन, लंगोट के चिन्ह का अंकित होना। इनमें मुकुट-धारण और केशर-लेपन तो भक्तों की भक्तिवश सामग्री है इस कारण उस पर कोई एतराज नहीं हो सकता। चक्षु धारण और ओष्ट तलुवों का रक्त करना यह स्वकल्पित विधि भेद है इसमें भी विरोध का कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं हो सकता रहा लंगोटी के चिन्ह का अंकित होना यह एक सैद्धान्तिक मतभेद है इसके लिये हम एकता के अन्य अनेक भावों को विस्मृत नहीं कर सकते। लंगोटी के चिन्ह को अलक्ष्य करके भीहम दिगम्बरत्वके भावसे उसे पूज्य सकते हैं और यदि हमारे भावों में दिगम्बरत्व की गाढ श्रद्धा है तो लंगोटी या मुकुट आदि वाह्य प्रकारभेद से हमारे भावों में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। अतः ऊपर जो कुछ भी प्रकारभेद बताया गया है वह ऐसा विरोध का कारण नहीं है जैसा कि विरोध का स्वरूप उसे दिया गया है।

ऐसा प्रसंग बहुतही कम आता है जब एक आम्नाय वाले को दूसरी आम्नाय के मन्दिर में जाने की आवश्यकता पड़ती है उस अवसर पर धार्मिक सहयोग का वात्सल्य भाव प्रकट न करके अनतमस्तक की उद्दण्डता का परिचय देना बड़ा ही

शोभनीय है । विरोध और परत्व भाव को प्रज्वलित करने वाला है । अतः समझदारों को उन अनुदार और विरोध मूर्तियों से सदा अलग रहना चाहिये जो भाई भाइयों में वैम-नस्य बढ़ाकर अपनी पूज्यता बढ़ाते हैं ।

व्यवहारनय तो यहां तक कहती है कि यदि आप किसी भिन्न धर्मी के मंदिरमें भी जायँ तो व्यवहार धर्म के पाल-नार्थ उनके देवका आदर सत्कार कीजिये फिर यह तो अपने ही तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं । कोई उनको किसी रूपमें पूजता हो, आप अपने इष्ट रूप में ही पूजिये । जिस शहर में कोई श्वेताम्बर मंदिर न हो केवल दिगम्बर ही हो इस कारण यदि श्वेताम्बर भाई आपके मंदिर में दर्शनार्थ आवें तो क्या आप इसे अनुचित कहेंगे? यदि नहीं, तो जहां दिगम्बर मंदिर नहीं है वहां आपका श्वेताम्बर मंदिर में दर्शनार्थ जाना क्या अनुचित होगा ?

जब हम यह जानते हैं कि भगवन् वीतरागी हैं, वे स्तुति-वंदना करने से प्रसन्न नहीं होते किन्तु उनकी वन्दना-स्तुति करने से अपने परिणाम कोमल और कषायमन्द ही होती है । जब कषायमन्द करने वाला वीतरागता का भाव दोनों आम्नायों की मूर्तियों की आकृति में विद्यमान है तब सामान्य दर्शन मात्रमें ऐसा विरोध क्यों ? जो द्वेष भाव तक करा देने वाला होता है ।

जिनके अन्तरंग में राग भाव नहीं है और वीतरागता की श्रद्धा है क्या उनके अन्तरंग को भक्तिपूर्ण शृंगारसे शोभित मूर्ति सरागी बना सकती है ? यदि ऐसा सम्भव हो सकता है तो

सम्यग्दृष्टिका सम्यग्दर्शन क्या ऐसा ही होता है? सम्यग्दृष्टि पुरुष जब, शुभ्रवासी कृष्णजी को भी भविष्य काल के तीर्थंकर होने की वजह से नमस्कार कर सकता है; तो क्या सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने आराध्य देवकी शृङ्गारित मूर्तिकी अपनी श्रद्धा-नुकूल आराधना नहीं कर सकता? यदि नहीं कर सकता तो जन्म कल्याणक की रचना के समय सम्पूर्ण शृंगार से शोभित मूर्ति का स्तवन-पूजन कैसे कर लेता है? विचारवानों को इन बातों पर विचार करना चाहिये। व्यर्थ कषायवश किसी की निन्दा के अभिप्राय से जानबूझ कर सिद्धान्त की बातों को विस्मृत न करना चाहिये। पक्षपातवश सिद्धान्त के विपरीत कथन करना समझदारों का काम नहीं। स्वाधीन चेताओं ने जिन बातों पर आचरण किया है, दूसरों को उस पर विचार करने दीजिये, धोखे में डालकर भ्रमाणे की चेष्टा मत कीजिये किन्तु "सर्वेपुरौत्री" का डंका जोरसे बजा दीजिये जिससे आपसी द्वेषभावों को छोड़कर धर्म के उदार क्षेत्र में आकर सब गलेसे गले मिलें--ऐसा प्रयत्न कीजिये। यही बुद्धिमानों का धर्मोपदेश होना चाहिये।

—विश्वबन्धु।

गृहस्थाश्रममें धर्मका पुरुषार्थ।

यदि विचार के साथ देखा जाय तो यह कोई भी नहीं कह सकता कि गृहस्थाश्रममें धर्म का पुरुषार्थ नहीं है, पर

कोई २ पुरुष अपनी धर्मज्ञता दिखाने के लिये इसके विरुद्ध भी कथन कर बैठते हैं। हम नहीं समझते जब गृहस्थाश्रम, धर्म-पालन के योग्य नहीं है तो धर्मीजन गृहस्थों को क्यों धर्म की शिक्षा दिया करते हैं? सम्पादक जैन गजट अंक ३७ में लिखता हैं " पारमार्थिक ही धर्म है, लौकिक धर्म अर्थ काम रूप है पापबंध का कारण है इसमें दो धर्म सजातीय नहीं बनसकते परस्पर विरुद्ध होने से" इस कथन से तो यह साबित होता है कि गृहस्थों में दो धर्म (लौकिक और पारलौकिक) एक साथ नहीं बनसकते। क्या आपके इसकथनसे कोई जैनी सहमत हो सकता है? यदि सम्पादक जैन गजट के इस कथन को प्रमाण माना जाय तो आजसे गृहस्थों को देव शास्त्र गुरु का पूजन-स्तवन आदि सब उठाकर एक तरफ रखदेना चाहिये। और पारमार्थिक धर्म का उपदेश तक न सुनना चाहिये। किन्तु आपके हृदय का यह अभिप्राय नहीं है आपके शब्दों का अभिप्राय है और वह इसलिये है कि उनको हमारे लेख में आये हुये 'लौकिक धर्म-शिक्षा' के पक्षका खंडन करना है।

— सम्पादक जी का पक्ष है कि लौकिक धर्म को धर्म नहीं कह सकते इसलिये लौकिक धर्म-शिक्षा नहीं बन सकती। आपने लौकिक धर्म का अर्थ किया है—"गृहस्थाश्रम का पालन करना" और धर्म शब्द का अर्थ 'कर्तव्य' माना है। यथा—"गृहस्थों के मुख्य कर्तव्य दो हैं लौकिक धर्म (कर्तव्य)" आगे चलकर पारलौकिक धर्म को आपने सर्वत्र धर्म ही लिखा है कर्तव्य कहीं भी नहीं! इससे मालूम होता है आपको पारलौकिक कर्तव्य लिखने में संकोच है। और लौकिक धर्म को

लौकिक कर्तव्य लिखने में संकोच नहीं! इस के लिये आप उदार हैं॥

हम आपसे यह पूछते हैं कि यदि गृहस्थों का धर्म 'कर्तव्य' ही मान लिया जाय तो जिस धर्म-पुरुषार्थ को आपने पुण्यरूप माना है उसे भी क्या कर्तव्य माना जाय? और इस कर्तव्य का अर्थ भी क्या कुटुम्ब पालन किया जायगा? सम्भवतः गृहस्थों के धर्मपुरुषार्थ को आप पारलौकिक धर्म तो मानेंगे नहीं; क्योंकि आप दोनों का एक साथ रहना असम्भव बता चुके हैं अतः उस धर्म पुरुषार्थ के क्या कार्य मानें? और वह लौकिक धर्म माना जाय या नहीं?

आपका लिखना है कि "पारमार्थिक ही धर्म है" इस वाक्य में 'ही' का विशेषण देकर यह साबित किया है कि अन्य धर्म हो नहीं सकता। इसपर मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या धर्मपुरुषार्थ धर्म नहीं है? और क्या यह गृहस्थों का धर्म नहीं है? यदि है तो, क्या यह पारमार्थिक धर्म है? और क्या पारमार्थिकधर्म 'अर्थ-काम' के सेवन करने वाले गृहस्थों में आपके इस कथन के विरुद्ध हो सकता है कि "इसमें (गृहस्थमें) दो धर्म सजातीय नहीं बन सकते परस्पर विरुद्ध होने से।"

ज़रा विचार कीजिये आपके उक्त कथन में कितना विरोध और कितना सत्यांश है? पक्षपातवश अर्थकी खींचा तानी से कितना अनर्थ होता है; यह आप अपने लेख की इस आलोचना से ही देख लीजिये कि आपको स्वपक्षके समर्थन में कितनी भूलें करनी पड़ी हैं यदि आप शुद्ध हृदय से लेख

लिखते तो इतनी भूलें न करते और गृहस्थों के दो धर्म हैं इसे स्वीकार करके लौकिक धर्म को धर्म स्वीकार करते।

सम्पादक जैन गजट ने स्वपक्ष समर्थन में भूलें ही नहीं की हैं किन्तु हमारे अभिप्राय को बदलने की भी चेष्टा की है! हमने 'ही' का विशेषण देकर यह कहीं नहीं लिखा था कि—"आश्रममें लौकिक विद्या ही पढ़ाई जाय" तब नहीं मालूम सम्पादकजी ने अपनी ओर से 'ही' को जोड़कर क्यों अपनी सत्यता भंग की है? इसीतरह आपने—"लौकिक प्रवृति को धर्म वास्तविक न कहने लगते" इस वाक्य में 'वास्तविक' शब्द जोड़कर हमारे आशयको वदलने की चेष्टा भी की है! यही नहीं, आपने आशाधर जी के इस वाक्यमें-"द्वौहि धर्मौगृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः" इसका अर्थ करने में पक्षपात किया है। आप धर्म शब्द का अर्थ 'कर्तव्य' करते हैं। यदि आप गृहस्थ के दोनों कर्मों को कर्तव्य कहते तो हमें कुछ एतराज नहीं होता, क्योंकि धर्म और कर्तव्य यह एक अर्थवाची शब्द हैं। पर आपने ऐसा नहीं किया! इस पर भी आप कहते हैं—

"लेखक ने आशाधरकृत सागार धर्मामृत देखा होता आदि से अन्त तक, तब तो लौकिक प्रवृति को धर्म वास्तविक न कहने लगते"

वास्तव में हमने आपकी दृष्टि से सागार धर्मामृत को नहीं देखा है और न उससे हमको ऐसी अहंकार भरी शिक्षा मिली है जो आपकी तरह यह कहदें कि सिवाय हमारे उसको और किसी ने देखा नहीं।

हमारी समझ से पं० आशाधरजी ने गृहस्थों के लौकिक और पारलौकिक यह दो धर्म बताने में कोई गलती नहीं की है क्योंकि गृहस्थ अवस्था छद्मस्थ अवस्था है। छद्मस्थ जीव से एक अवस्था में अनेक कार्यों का होना कोई असम्भव नहीं आलाप पद्धति में लिखा है--

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।

जन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोल वज्जले॥

अर्थ—अनादि द्रव्य की पर्यायों का जलके बुदबुदों के समान सदैव उत्पत्ति विनाश होता रहता है। पर्याय नाम गुणों के विकार का है और 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' गुन और पर्याय के समुदाय को द्रव्य कहते हैं। अतः यह जीव पुद्गल का अनादि सम्बन्ध वाला जो संसारी जीव है उसकी वैभाविक पर्याय है। और वैभाविक पर्याय वाला जीव प्रतिक्षण अनेक (कर्तव्यों) का पालन करता है। इसीलिये आशाधरजी ने गृहस्थों के लौकिक और पारलौकिक दो धर्म बताये हैं। और विवाह-प्रकरणमें इनका कथन किया है। श्री समन्तभद्राचार्य्य ने भी सकल चारित (मुनिधर्म) और विकल चारित (गृहस्थ धर्म) यह दो भेद बताये हैं, यदि यह दोनो भेद पारलौकिक धर्म के होते तो इनकी अलग २ कथन करने की क्या जरूरत थी? और र. क. श्रा. में 'सागाराणां ससङ्गानां विकलम्' इसपदमें परिग्रह सहित गृहस्थों के चारित को विकलचारित कहकर लौकिकधर्म की विकलता क्यों बताते? और आगे चलकर इसीग्रंथमें विकल चारित वाले के भोगोपभोग का नियत समय तक त्याग होने

से उसे यमरूप नहीं किन्तु नियमरूप कहा है। अर्थात् मुनिधर्म में त्याग यमरूप है और गृहस्थधर्म में नियम रूप। अतः यह कहना कि गृहस्थों में दो धर्म एक साथ नहीं बन सकते भूल से भरा है। सागार धर्मामृत के श्लोक ११ में गृहस्थ के १४ कर्तव्यों में धर्म, अर्थ, काम इन तीनो वर्गों का अविरोध रूप से पालन करना बताया है। केवल एक रूपसे नहीं—

न्यायोपात्तधनोयजन्गुण गुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज।
अन्योन्यानुगुणं तदर्ह गृहिणीस्थानाल्यो ह्रीमयः॥
युक्ताहार विहार आर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी।
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागार धर्मंचरेत्॥ ११॥

अर्थ—जो पुरुष न्यायपूर्वक धन कमाता है, गुण और गुरुओं की पूजा करता है, सद्भाषण करता है, विरोधरहित धर्म, अर्थ, काम का सेवन करता है और इस त्रिवर्ग के सेवन योग्य स्थान, मकान और स्त्री सहित है, लज्जावान् है, और उचित आहार विहार करता है, सद्‌संगतिमें रहता है, बुद्धिमान है, कृतज्ञ है, इन्द्रिय संयमी है, धर्मवार्ता को सुनने में उत्सुक है, दयालु है, और पापों से डरता है, वह गृहस्थ धर्म का पालन करता है।

गृहस्थ के उक्त १४ गुणों में अन्त के पांच गुण ऐसे हैं जिनको धर्म पुरुषार्थ कहने में कोई शंका नहीं उठ सकती। बल्कि सत्संगति, गुण व गुरुओं की पूजा, सद्भाषण, लज्जा, और बुद्धिमत्ता भी लौकिक धर्म के गुण कहे जायंगे। इस तरह जब गृहस्थोंमें धर्म पुरुषार्थ के कार्य अलग अलग बता दिये

गये हैं। तब नहीं मालूम सम्पादक जैन गजट लौकिक धर्म में केवल गृहस्थाश्रम का पालन करना बताकर ही क्यों रहगया उसने धर्म पुरुषार्थ के कार्यों का उल्लेख क्यों नहीं किया ? गृहस्थधर्म में जहां ऊपर अनेक धर्म-पुरुषार्थ के लौकिक कार्य बताये गये हैं वहां देव-पूजा, गुरु-उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान यह छह कर्म भी प्रतिदिन करने योग्य बताए हैं। यथा—

देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने॥

इस श्लोक में गृहस्थों के लिये पारलौकिक धर्म के छह कर्म बताये गये हैं। अतः आगम प्रमाण से यह साबित हो गया कि गृहस्थाश्रम में दोनों धर्मों का साधन है। ऊपर गृहस्थों के जो चौदह गुण और छह कर्म बताये गये हैं वे गृहस्थ आश्रम के तो हितसाधक हैं ही पर पारलौकिक धर्म के भी साधन हैं इससे लौकिक धर्म और पारलौकिक धर्ममें सजातीयता है इसीसे गृहस्थी इन दोनों धर्मों का एक साथ आचरण करता है और दोनों के अलग २ कार्य करता है।

विवाह कार्य काम पुरुषार्थ का साधक है पर विवाह के समय देवपूजा और दानादिकर्म भी किये जाते हैं जोकि पारलौकिक धर्म के कार्य हैं।

न्यायोपात्त धनम्

धनका कमाना अर्थ-पुरुषार्थ का काम है। और वह आरम्भरूप होनेसे पापरूप है पर इस कार्य में न्याय का विचार

रखना धर्मपुरुषार्थ है और यह पुण्यरूप है इसीतरह धनोपार्जन के समय दान करने के भावों का होना पुण्य-कार्य है अतः दोनों कार्यों का गृहस्थाश्रम में एक साथ होना सिद्ध है। इस प्रत्यक्ष प्रमाण के आगे परोक्ष प्रमाण की जरूरत नहीं।

अग्निमें दाहकत्व–पाचकत्व–तापन आदि अनेक सजातीय गुण मौजूद हैं। और एक ही समय में अग्नि लकड़ी को जलाती है, वासन को तपाती है और दालको पकाती है पर इन तीनों कामों के एक साथ होने का कोई भी विरोध नहीं करता तब नहीं मालूम पण्डित प्रवर आशाधरजी ने गृहस्थों का जो द्वितीय पारलौकिकधर्म बताया है उसको सम्पादक जैन गजट गृहस्थधर्म का सजातीय बताकर उसका निषेध क्यों करते हैं? यदि विजातीय होता तो 'परस्पर विरुद्ध होने' की युक्ति बनजाती। पर ऐसा आप लिखते नहीं हैं तब नहीं मालूम सजातीयता में 'परस्पर विरुद्ध होने' की युक्ति क्या काम कर रही है इसे विद्वान् लोग विचारें।

गृहस्थधर्म को जो षटकर्म बारहव्रत आदि के रूप में कहा गया है उससे इसलोक और परलोक दोनोंका हितसाधन होता है। तब इनसे और सागारधर्मामृतके ऊपर लिखे श्लोक के १४ कर्मों से सजातीयता क्यों नहीं? यदि सजातीय हैं तो, परस्पर विरुद्ध नहीं और यदि विरुद्ध हैं तो, सजातीय नहीं हो सकते।

वास्तव में बात यह है कि मनुष्य गृहस्थी रहता हुआ भी लौकिक और पारलौकिक-धर्म कार्यों को सदैव करता

रहता है। ये दोनों ही धर्मकार्य इहलोक और परलोक के हितसाधक हैं इससे इनमें कोई विरोध नहीं है। यद्यपि विवाह-संस्कार काम-पुरुषार्थ का साधक है, पर उसी समय देव-पूजन और दानादि लौकिक व पारलौकिक धर्म कार्य भी होते हैं, इनमें समयान्तर भी नहीं होता, अतएव यह नहीं कहा जासकता कि गृहस्थाश्रम में धर्म का साधन नहीं है। गृहस्था श्रम में पारलौकिक धर्म तक का साधन है और यही पारलौ-किक धर्म आगे चलकर मुनिधर्म का साधक हो जाता है। अतएव गृहस्थधर्म बड़ा उपयोगी है। गृहस्थाश्रम उन्हीं के लिये त्याज्य है जिन्होंने गृहस्थधर्म का पालन करके महाव्रता-दि धारण करने की शक्ति प्राप्त करली है। अन्यथा गृहस्थों को मुख्यता से लौकिक धर्म की शिक्षा देनी चाहिये और गौणता से पारलौकिक धर्म की महत्ता भी बतानी चाहिये।

परिणामाधीन स्वप्न।

११ जनवरी के जैन गजट में सहारनपुर के कालूराम जैनने अपना स्वप्न प्रकाशित किया है और उन्हीं के विचारों के हिमायती जैन गजट के सम्पादक ने अपनी कलम से स्वप्न के सत्य होने की मोहर लगायी है।

अब इसपर विचार यह करना है कि कालूराम जी का स्वप्न उनके परिणामानुसार है या नहीं और कालूराम

ने उसको देवो कृत स्वप्न बताकर अपने परिणामों को छिपाने की चेष्टा की है या नहीं।

जिन्होंने सेठी अर्जुन लालजी से जेलमें मुलाकात की है वे घर बैठे दिलके कुलाबे मिलाने वालों की अपेक्षा यह अच्छी तरह जानते हैं कि सेठीजी को मन्दिर के लिये अलग कमरा मिला हुआ था और बिना स्वच्छ किये उस कमरे में मूर्ति स्थापित नहीं की गई थी पूजन की सामग्री सेठीजी स्वयं अपने हाथसे बनाते थे ऐसी अवस्था में यह स्वप्न हुआ बताना कि "भगवान की प्रतिबिम्ब श्रीमन्दिरजी से मंगवाकर अशुद्ध मकान जेलमें विराजमान करना जहां पर शुद्ध सामग्री का कोई भी इन्तजाम नहीं किया मंदिर जी से घोर अविनय के साथ प्रतिमाजी को लेजाने वाले और खुशी के साथ जेलमें ठूंसने वाले भगवानदीन जी भी इसी कारण आज जेल की हवा खारहे हैं।"

१—हम स्वप्न कर्तामहाशय से यह पूछना चाहते हैं कि क्या देवकृत स्वप्न प्रत्यक्ष के विरुद्ध असत्य भी हुआ करते हैं?

२—यदि नहीं तो, आपने कितनी बार सेठीजी से जेलमें मुलाकात की है और मकान व सामग्री को अशुद्ध पाया है?

३—यदि स्वप्नघटित घटना आपके नेत्रइन्द्रिय प्रत्यक्ष थी तो फिर परिणामाधीन स्वप्न को देवकृत बताने की क्या आवश्यकता थी?

४—यदि स्वप्न असत्य हो सकता है तो आपका आराध्य देव व्यन्तर जाति का होना चाहिए जिसका स्वभाव रागद्वेष से पूर्ण कौतूहल जनक हुआ करता है।

कृपाकर आपको अपने सहचर देवसे यह और पूछ लेना चाहिये था कि प्रतिमा जीको लेजाने वाले भगवानदीन जी ने किस प्रकार की घोर अविनय की थी इसका विस्तृत हाल सुना दीजिये ताकि हम यह मालूम कर लेवें कि मेले तमाशों में और यात्रियों के संघ के साथ प्रतिमा जीको लेजाने वाले जैनियों की विधि से भगवानदीन जी की विधि में क्या अन्तर था।

लेखक के इन शब्दों ने कि—"इसी कारण जेल की हवा खा रहे हैं" यह स्पष्ट करके बतादिया कि रागी द्वेषी देव के चेले भी रागी द्वेषी होते हैं।

सेठीजी ने देवदर्शन नहीं होने तक अन्न जलका त्याग किया था तो खाद्य और पेय वस्तुओं का त्याग तो नहीं किया था; फिर दूध और फल खाने में क्या प्रतिज्ञा दोष लगा इसे समझाने की चेष्टा कीजिये।

कालूरामजी को उक्त जो स्वप्न हुआ है वह दिनके दो बजे सेठीजी पर करुणादृष्टि की अपूर्व व्याख्या करने वाले सत्यवादी पत्रको पढ़ते २ प्रचला निद्रा के वशीभूत होकर हुआ है इसलिये क्या आश्चर्य है जो सत्यवादी के विचारोंकी छाया कालूरामजी की आत्मा पर पड़गई हो उसने ही अपने

विचारों में रंग कर यह असत्य स्वप्न दिखाया हो अतः उक्त स्वप्न को उल्लिखित प्रमाणों से हम परिणामाधीन स्वप्न कहते हैं, देवकृत यह कदापि नहीं हो सकता।

प्रसंगवश हम को लेखक की प्रतिमाजी को जेल में ठूंसने की आशंका पर भी विचार करना है अतः अब उसे भी सुनिये

पुण्य पाप अपने परिणामानुकूल बंध को प्राप्त हुआ करते हैं जिन्हों ने कर्मों के आश्रव और बन्ध तत्व पर विचार किया है, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि उक्त लेखक की तरह प्रतिमाजी को जेलमें ठूंसने के भाव पं० अर्जुनलाल सेठी व महात्मा भगवान दीनजी के नहीं थे उन्हों ने भगवद्भक्ति से ऐसा किया इसलिए उनको पुण्यबन्ध ही हुआ है और इस आशंका के लेखक के दिलमें जो जेल की शल्य उपजी उससे उसके अशुभकर्मों का बंध हुआ।

करनाल में महात्मा भगवानदीन जीको एक पुजारी नित्य प्रतिमाजी को लेजाकर दर्शन कराया करता था। एक दिन मन्दिर में एक आप जैसे जैनी भाई ने बड़े आवेश में आकर मुझसे पूछा कि—"देखो जी यह कैसा अविनय करता है रोज़ जेलमें लेजाकर दर्शन कराता है"—मैंने इस पर उसे समझाया कि उसके भाव अविनय करने के नहीं हैं वह तो भक्तिवश धर्म समझ कर दर्शन कराता है, आप बाधक बनकर क्यों दर्शनावरणी कर्म का बन्ध बांधते हैं; अपने परिणामों को बिगाड़ते हैं; यदि उससे कोई अविनय

होती है तो उसे उसका दोष लगेगा। आप दर्शनों जैसे पुण्य कार्य में बाधक बनकर क्यों बुरे बनते हैं; इस उत्तर को सुनकर वह बहुत सन्तुष्ट हुआ और कृतज्ञता प्रकाश कर विदा हुआ। हम आशा करते हैं इसी तरह कालूरामजी भी अपने मनका समाधान करलेंगे।

राजा वज्रकरण को सिवाय सम्यग्दृष्टि के और किसी को वंदना नहीं करने की प्रतिज्ञा थी किन्तु महाराजा सिंहोदर को नमस्कार करनेके लिये वह विवश था इसलिये उसने धर्मानुराग से मुद्रिका में मूर्ति अंकित करायी थी उसके इसकार्य की शास्त्रकारों ने प्रशंसा ही की है कि वह आपत्ति आने पर भी अपनी प्रतिज्ञा से नहीं टला। इसी तरह सेठीजी ने भी जेलमें मन्दिर स्थापित कर अपने धर्मानुराग का पालन किया है और यह साबित कर दिखाया है कि एक सच्चा जैनी अपनी प्रतिज्ञा में कितना अटल होता है। सेठीजी ने मन्दिर स्थापित कर जेलके अन्य कैदियों पर जैन धर्मका जो प्रभाव डाला है उसको वर्णन करना इस लेखिनी की शक्ति से बाहर है। सेठीजी जिस समय जयपुर से वेलोर भेजे गये थे तो उन्होंने वेलोर जाकर नवीन वेदी की स्थापना का विधान बड़ी प्रभावना के साथ कई रोज तक किया था। उसका सब खर्च सरकार से लिया था, कैदियों को प्रसाद बांटा था। वेलोर जब प्रतिमाजी को भगवानदीन जी लेकर गये थे तब रेलके एक दर्जे को रिजर्व करा लिया था, सारा काम विनय पूर्वक किया था। किन्तु कालूराम जी के सहचर देव उस समय न जाने कहां फिर

हुए थे। यदि देवराज इतना और कह देते कि बेटी माँ और महात्मा जी ने कुरीतियों की और अन्धश्रद्धा की जड़ काटी है, इसलिये उन्हें कष्ट भोगना पड़ा है, ऐसा कह देते तो लेखक का आशय पूर्ण होजाता और देवकृत स्वप्न परिणामाधीन न रह जाता।

आटा।

जिन्दगी अपनी होगई दूभर (कठिन),
दिल में हरदम जिकर है आटे का।
रात हो दिन हो सुबह हो या शाम,
लब (मुंह) पै अपने जिकर है आटे का॥

(हिमालय)

सम्पादकीय विचार।

सुधारकों का मार्ग साफ है।

समाजसुधारकों के स्वाधीन विचारों को कोई माने या न माने, कोई सुने या न सुने उनको इस बातकी परवाह नहीं वह अपने विचारों को सुनाने के लिये मनवाने के लिये किसी से जबरदस्ती नहीं करते। जिसको स्वाधीन विचार अच्छे लगते हों वह सुने जिसको उनसे अपना हित जंचता हो वह माने। जिसको अहितकर जंचते हों वह न मानें जिनको अच्छे

न लगते हों वह न सुने। जिनको बुरे लगते हों वह बुराई बता देवें। यदि गाली देना चाहते हों तो गाली दे लेवें, वे सहने के लिये तैय्यार हैं। पर अपना मुंह बंद न करेंगे और न किसी दूसरे का मुंह बंद करेंगे और न किसी को करने देंगे, यही सुधारकों के कार्यों का मार्ग है।

अग्रवालोंके नाम खुली चिट्ठी।

मैं जन्म से अग्रवाल दिगम्बर जैन गोयल गोत्री हूं। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी जानता हूं इन्ट्रेन्स पास किया है। अवस्था ४० के ऊपर है। एक लाखकी सम्पत्ति का अकेला मालिक हूं। प्रथम विवाहिता के मरने पर दूसरा विवाह किया अन्त को वह भी काल की ग्रास हो गई साथ ही दो मास की एक लड़की को छाती पर छोड़ गई वह आज १ वर्ष की है तीन लड़कियें इससे बड़ी और हैं, लड़का एक भी नहीं। घरमें एक चक्षुहीन बूढ़ी दादी के सिवाय और कोई नहीं। समाज में कोई शिशु आश्रम भी नहीं जहां इन लड़कियों को भेज दिया जाय। महिलाश्रम लेने से इन्कार करता है। रोटियों की बड़ी तकलीफ है। ज्यों त्यों करके १० महीने बीते अब आगे कठिनाइयां बढ़ती ही जारही हैं। निराश्रित बालिकाओं को छोड़कर मुनि बनजाने की योग्यता और साहस नहीं और न मुझे स्वर्ग के सुखों का लालच है। हां जीवन के शेष दिन सुख से कट जायं—यह इच्छा जरूर है। बहुत से लोग कुंवारी कन्या से विवाह करने की सम्मति देते हैं, महात्मा के प्रस्ताव से भी

मुझ जैसे पुत्रहीन ४५ वर्ष की अवस्था तक विवाह कर सकते हैं किन्तु एक भले आदमी का यह काम नहीं कि किसी अबोध कन्या से पुनः तीसरी शादी करके उसके जी को दुखी करे और उसे जवानी में विधवा बनने की चिन्ता में डालदे। चार लड़कियों का भार जरासी बालिका पर डालदे या लड़कियों का निरादरी जीवन बनादे—ऐसी आशंकाओं के रहते अब कुंवारी से विवाह करने को चित्त साक्षी नहीं देता, उसके जीवन पर तरस आता है। और जिस कन्या विक्रय के मैं सदा विरुद्ध रहा हूं क्या अब स्वयं रूपया देकर विवाह करूं? यह आत्म घात करना है।

बहुत सोच-विचारने के बाद सिवाय इसके और कोई उपाय नहीं सूझा कि इस समाज की दुखदायी रीति नीति को तोड़ करके एक अपनी तरह दुखिया अक्षत योनि बालविधवा से विवाह करलूं यदि उसके संरक्षक ऐसा करने की उसे आज्ञा देते हों। मैं खुशी से संकुचित सामाजिक बन्धनों को तोड़ने के लिये राजी हूं। मैं किसी विधवा को सधवा बनाने में अपने व उसके जीवनके शेष दिन सुखसे बीतजाने की आशा रखता हूं। इसलिये आशा है समाज मुझे आज्ञा देगा कि मैं किसी विधवासे शादी करलूं अथवा और कोई ऐसा उपाय बतला-येगा जिससे मेरी कठिनाइयें दूर हो जायं।

उत्तर न मिलने पर मुझे किसी अबोध कन्या से शादी करनी पड़गी अथवा इस समाज को प्रणाम करके किसी दूसरी सुखदायी रीति नीति वाली समाज की प्रय बांहकर्या की शरण लेनी पड़गी। इन दोनों उपायों में समाज की हानि है और उसको विधवा विवाह ही दूर करसकता है। अतः इस सुरीति की आज्ञा देने से समाज कई कुरीतियों से बच जायगी इस लिये समाज से अपील है कि यह उदारता से आज्ञा दे और दुखियों के लिये सुखका मार्ग खोलदे। अन्यथा उलहना व्यर्थ होगा। निवेदक—मित्रसेन।

नोट—ऐसा कौन वज्रहृदयपुरुष होगा जिसको उक्त सज्जन की दशा पर तरस न आयगा? हम मित्रसेनजी को सलाह देंगे कि आप कुंवारी कन्यासे शादी करके उसके जीवन को दुखिया भूलकर न बनावें, अन्यथा आपके समान कोई पातकी न होगा। यद्यपि ४० वर्षमें शादी करनेवाले पातकियोंकी समाज में कमी नहीं है इनमें से २—४ तो संस्थाओं के संचालक तक बने हुए हैं मैं आपको उनसे अधिक अकलमन्द देखता हूं इस लिये रूढिके दासोंके दबाओं में आकर निज विचारों के विरुद्ध कार्य कदापि न करना, यह मेरी सम्मति है। और न सन्तानका त्याग करना। बल्कि समाज के सामने आपको कोई आदर्श कार्य रखना चाहिये, जिससे वह शिक्षा ले। रही शिशु आश्रमकी बात सो इसकी शिकायत करना व्यर्थ है जब आप जैसे जरूरत को समझने वाले सामर्थवान ही इसकी कमी को पूरा नहीं कर सकते तब अन्यसे किससे आशा की जाय? ब्रह्मचारी चिरंजी लालजी ने निजपुत्री के मातृ-वियोग होजाने पर ही जैन अनाथालय को भिक्षा मांगकर खोला था—वह आपको अवश्य याद होगा। महात्मा भगवानदीन और लाला गेंदनलालने निज पुत्रोंको ब्रह्मचारी बनाकर ऋ० ब्र० आश्रम खोला था आपको वह सब बातें स्मरण होंगी; आप इनसे सहायक बनेंगे, आप

जबकि निजकी परीक्षाका समय आया है, दूसरोंको उलहना देना व्यर्थ है। यदि आप वास्तव में सांसारिक विषय भोगों को तुच्छ अनुभव करचुके हैं तो अब पुनः मोह जालमें और भोगों के चक्कर में फंसना युक्त नहीं। पुत्रियोंका पालन लक्ष्मीवान् अनेक रीति से कर सकते हैं। जरा चित्तको उदार बनाने से सब कुछ प्रबन्ध हो सकता है। धनके सदुपयोगसे ऐसा कौनसा काम है जो सफल नहीं होसकता? आप जैसे समझदारों के लिये और अधिक लिखना व्यर्थ होगा।

समयके प्रभावने सब साधन सुलभ कर दिये हैं, जिसमें आप अपना हित समझते हों उसे कीजिये। कोई समझदार आपको आदेश करके आपकी स्वाधीनता हरण करने का अपराध नहीं करसकता बल्कि सच्चाई का साथ देने के लिये तैयार होगा। यदि आपकी विधवा से विवाह करने की इच्छा है तो खुशी से पूर्ण कीजिये हम इसमें भी समाज की भलाई देखते हैं।

निन्दा के लिये काटा छांटी।

जाति प्रबोधक के दूसरे अंकमें एक कविता जिसका नाम 'वर्षाकाल में विधवाओं का विलाप' है निकली थी। इस

कविता में विधवा स्त्री अपने पतिको याद कर कर अपने दुखों का विलाप कर रही है, यही इसमें आदि से अन्त तक बताया गया है । आजकल गृहस्थों की जैसी अवस्था है और जिस रीति से विधवाओं का समय व्यतीत होता है उनकी दशा बताने में यह कविता बड़ी उपयुक्त है । किन्तु प्रकाशक जैन गजट के धर्मी हृदय में विधवाओं की दुखपूर्ण कहानी कहां समा सकती थी इसलिये आपने उस कविता को व्यभिचार-मूलक बताने में बड़ी चतुराई दिखाई है । उस कविता का पहिला पद आपने इसलिये उद्धृत नहीं किया कि उसमें पति को स्तुति व भक्ति गाई गई है । तीसरे पदमें पति को स्मरण किया है उसे भी आपने उद्धृत नहीं किया । किन्तु अपनी दुःखपूर्ण अवस्था बतानेवाले पदोंको नया नम्बर देकर इसरीति से उद्धृत किया है जिसमें कोई यह समझ ही न सके कि चार चार चरण के १२ पदोंमें से १० चरण कहीं कहीं से लेकर दो चरण के पांच पद बनाने की काट छांट की गई है । यह काट छांट जाति प्रबोधक की निन्दा करने के लिये की गई है। जिन पदोंमें व्यभिचार का नाम तक नहीं केवल अपने दुखों का वर्णन है, उसको आपने व्यभिचार की प्रचारक कविता कह डाली है । नहीं मालूम ऐसे प्रयत्न करके जैन गजट क्या सब प्राप्त करना चाहता है ?

जैन गजटकी विकलता ।

जैन गजट की विकलता इतनी बढ़गई है कि वह निष्पक्ष व्यक्तिगत आक्षेप भी करने लगा है गालियों का बर्ताव गालियों

में हमारे पास नहीं है। जो इस पत्रको उसके उत्तरों से रंगकर पाठकों का मन मलीन किया जाय इससे आक्षेप का मार्ग न लेकर हम जैन गजट के कुछ भ्रमोत्पादक आक्षेपों की परीक्षा इस लेखमें करते हैं आशा है वह पाठकों के मनोरंजन से खाली न जायगी—

दृष्टान्तकी निस्सारता।

सम्पादक जैन गजट ने हमसे प्रश्न किया है कि "कोई जवान वकील बूढ़े वकील से मान हानि के शब्द कहे वह उस पर मान हानि का दावा करदेवे तो क्या यह सफाई काफी होगी कि जवानी के जोश में जुबान वेलगाम हो जाती है।"

इसका उत्तर यह है कि यदि जवान वकील अदालत में बूढ़े मियां का लेख उपस्थित करके यह बयान दे दे कि बूढ़े मियां जब अपने लेखमें बहुत नीचे चलेगये और मुझको धर्मद्रोही, विरोधी, पक्षपाती और दोषारोपी तक लिख डाला तो मेरी जुबान भी खुलगई और मैंने अपने लेखमें केवल यही लिखा है जो स्वयं दोषी होता है वह दूसरों के गुणोंमें भी दोष देखा करता है इसके अतिरिक्त मैंने कुछ नहीं कहा। इस बयान पर अदालत जो फैसला देगी उससे बूढ़े मियां की वकालत जमीन की धूल ही चाटती नजर आयगी। कहिये ठीक है न?

खोटी शंका।

१५ दिसम्बरके जैन गजटमें उसके सम्पादक ने हमसे प्रश्न

किया है—"आप मुरैना में अपने खर्चसे पढ़ेथे या संस्था के धनसे ?" इसका उत्तर आपको संस्था की रिपोर्ट निकालकर देखलेना था या एक पोस्टकार्ड लिखकर संस्था के वर्तमान संचालकों से पूछ लेना था। पर शंकाएं छापने और उनका मुंहतोड़ उत्तर खानेमें आपको जो मजा आता है वह कैसे आता ?

आपके समाधान के लिये हम उक्त संस्था की तीसरी रिपोर्टके पृष्ठ ५०-५१ से निम्नलिखित वाक्य उद्धृत करते हैं—

"१५ विद्यार्थी छात्राश्रममें निवास करते हैं और एक विद्यार्थी विश्वम्भरदास जी ने जुदा मकान ले रक्खा है। १७ विद्यार्थियों में से विश्वम्भर दासजी घरके आसूदा हैं। ... ... वर्तमान में इस विद्यालय में १३ अध्यापक पढ़ाते हैं जिनमें दो आनरेरी (गोपाल दास और विश्वम्भर दास), पांच सवेतन प्राप्त अध्यापक और छह छात्रवृत्ति प्राप्त विद्यार्थी हैं।"

आशा है रिपोर्ट के इस लेखको देखकर सम्पादक जी के वृद्ध हृदय को शांति होगी। यदि आप इस उत्तर को जैन गजट में स्थान देकर उसके पाठियों का भ्रम निवारण करने की उदारता दिखायंगे तो आपके कषाय भावों को भी शान्ति होगी और फिर ऐसी खोटी शंका छापने की गलती न होगी। श्री भगवती आराधनासार से एक गाथा आपके पाठ के लिये हम यहां उद्धृत करते हैं यदि आप इसका नित्य पाठ करलिया करें तो बुढ़ापे का अवर-जीवन आर्तध्यान से छूटकर सत्य मार्गमें लगजाय।

से छपनेसे रह गया है तो क्या प्रेसीडेन्ट जैन गुरुकुलके स्थान में मेनेजर जैन एंगलो संस्कृत स्कूल' यह भी भूल से छपगया है? अस्तु ! यह भूल देखने में वहुत साधारण है, पर उन शिक्षित जैनों में जिन्होंने उक्त विज्ञापन को देखा है उनको सभापति महोदय की अनियमित कार्रवाई की धारणा कराने में काफी है? और क्या ऐसी धारणा होजानेसे आश्रमको कुछ हानि नहीं पहुंच सकती है? अतः यह साधारण भूल भी वड़ा अनिष्ट करने वाली है और सभापति महोदय के मनोराज्य को साबित करने वाला एक और नया दृष्टान्त है। यदि सभापति महोदय को इसी तरह स्वच्छन्दतासे काम करने का शौक है तो उन्हे अधिष्ठाता का पद लेकर आश्रम में आसन जमाना चाहिये। अन्यथा ऐसी भूलें करके समाज से आश्रम की श्रद्धा को न उठाना चाहिये।

आश्रममें वैमनस्य।

तारीख ५ नवम्बर को ऋ० ब्र० आमश्र की कमेटीमें क्या कार्रवाई हुई है; इसका कुछ विवरण किसी अधिकारी ने प्रगट नहीं किया और न जैनमित्र ने ही प्रकाशित किया किन्तु श्रीयुत वा० जुगुलकिशोर मुख्तियार और वा० ज्योतिप्रसाद सम्पादक जैन प्रदीप के पास मेम्बर होने के कारण कमेटी की कार्रवाई की जो रिपोर्ट पहुंची थी उसे उन्होंने जैन हितैषी और जैन प्रदीप में प्रकट कर दिया है। अब देखना यह है कि आश्रम के कर्ता धर्ता 'आश्रम की अन्तरंग अवस्था को हवा न लगने देने की' अपनी नीति पर कब तक डटे रहते हैं?

१३ नवम्बर के जैनमित्र में छपा था कि लाला गेंदन लालने आश्रम के संरक्षक (पैट्रन) नियुक्त हुए हैं किन्तु कमेटी की कार्रवाई की उक्त रिपोर्ट देखने से मालूम होता है ब्रह्मचारी जी का यह कथन निराधार है और किसी गूढ मतलब से भरा हुआ है। ब्रह्मचारी जी को ऐसा कथन क्यों करना पड़ा अब इस पर भी जरा विचार कीजिये।

लाला गेंदनलाल ने गतवर्ष पंडित जी से मतभेद होने के कारण एकवर्ष की छुट्टी लीथी वह छुट्टी ५ नवम्बर तक खतम नहीं होती थी इस कारण न्यायतः पं मक्खन लाल जी न तो स्थायी उपअधिष्ठाता होसकते थे और न गेंदनलाल जी अलग किये जासकते थे इसलिये आश्रम के सूत्रधारों ने यह उचित समझा कि ला० गेंदनलालको पैट्रन (संरक्षक) बना देने की अफवाह उड़ादी जाय जिससे समाजमें उनका आश्रम से सर्वथा अलग होना न समझा जाय। प्र० नं० ११ के अनुसार बनाई गई अन्तरंग कमेटी में भी लाला गेंदन लाल का नाम इसीलिये दिया गया है जिससे उनका आश्रम से पृथक् किया जाना साबित न हो। हम नहीं समझते समाज को भ्रममें रखने के लिये ऐसी कार्रवाइयें क्यों की जाती हैं?

कुंवर दिग्विजयसिंहजी के सम्बन्ध में तारीख २५ सितम्बर के जैनमित्र में छपा था वे कुछ मासले अधिकसे आश्रम में रहते हैं वहां विद्यालय स्थापन करके बच्चोंको शिक्षा

देरहे हैं। परन्तु खेद है ५ नवम्बर की मीटिंग में कुंवर साहिब जैसे प्रतिष्ठित कार्य कर्ता का स्तीफा मेम्बरों के विचारार्थ नहीं रक्खा गया जाति प्रबोधक में यह बात छप चुकने पर कि वे गत जनवरी में ही स्तीफा देचुके थे तव एक वर्ष बाद यह नोटिस कुंवर साहिब के सम्बन्ध में प्रकाशित किया गया है कि "अब उनका सम्बन्ध आश्रमसे छुटगया है अबकोई उन्हें आश्रम के प्रचारक न समझें और आश्रम की सहायतार्थ रुपया सीधा हस्तिनापुर भेजें"—यह है कुंवर साहिब की सेवाओं का फल! कमेटी में कुंवर साहिब को उनकी अमूल्य सेवाओं के लिये धन्यवाद देना तो अलग रहा उलटा उनको संदिग्ध बनाया गया है। इस प्रकार की कार्यवाइयों से आश्रम के वर्तमान कर्मचारियों की अदूरदर्शिता पर बड़ा पश्चात्ताप होता है। आश्रम के कर्मचारियों की कुंवर साहिब के इस्तीफे पर एकवर्ष बाद उक्त सूचना निकालना पूरी कायरता है। कुंवर साहिब आश्रम के सभासद अवभी हैं इसलिये 'उनका आश्रम से सम्बन्ध छुट गया' लिखना सर्वथा मिथ्या है। यदि यह लिखा जाता कि 'कुंवर साहिब ने पं० मक्खन लाल के उपअधिष्ठाता बना देने के कारण आश्रम को छोड़दिया है'। इस तरह स्पष्टबात कहने में आश्रम की कोई बदनामी नहीं थी।

पं० मक्खन लालजी एक योग्य और अनुभवी पंडित हैं उनके नाम सम्बन्ध का पट्टा लिखा हुआ है इस कारण उन से महात्मा भगवानदीन, लाला मेंदनलाल, कुंवर दिग्विजय सिंह जी, मास्टर बलबन्त सिंह और आश्रम के कुलीन विद्यार्थियोंसे से किसीसे नहीं बनी इससे अधिक पंडितजी की

अोग्यता का प्रमाण और क्या मिलेगा ? तभी तो जैन गजट और पद्मावती पुरवाल कहता है कि पंडित जी को अनुभव शून्य रंगरूट कहना अनुचित है। क्योंकि पंडितजी भी पद्मावतीपुरवाल हैं और आश्रम में अपने जाति भाइयों का पालन कररहे हैं यह खबर मिलती है,तब ये तरफदारी न लेते तो और कौन लेता ?

पंडित मक्खनलाल जी ने अपने एक मित्रको लिखा है "हमारे यहां का एक अध्यापक जाति प्रबोधक से मिलगया है, उसको निकालने के उपाय किये जारहे हैं "

यह कथन पंडितजी का बिलकुल बनावटी है क्योंकि श्रुतसागर विद्यार्थी भाद्रमास में झांसी आया हुआ था उससे हमने सब बातें पूछी थीं जब वह आश्रम में गया तो पंडित जी के पूछने पर उसने कहा था कि जो मुझसे पूछा गया उसको मैं कैसे छिपाता पत्रों में तो वे बातें निकल ही चुकी थीं, इससे मैंने बताया । इसके बाद उसके जैसा बरताव किया गया है उससे वह वापिस अपने घर पर आगया है ।

हम नहीं जानते जब पंडित जी को यह बात मालूम हो चुकी थी तब उन्होंने क्यों उक्त ७ वर्ष के पुराने अध्यापक पर संदेह किया है ?

असल बात यह है कि पंडितजी ने अपने कुछ जाति भाइयों को आश्रम में भरती करलिया है वे लोग आश्रम के नियमों का खूब उल्लंघन कर रहे हैं, पुराने अध्यापक इनको समझाते हैं तो ये पंडित जी का दम भर कर उनको कुछ समझते नहीं

और पंडित जी जाति भाई होने के कारण उनको कुछ कहते नहीं इससे आश्रम के अध्यापकों में बड़ी तू तू मैं मैं हो रही है। इकने एकसे यहां तक कहदिया है मैं तुझे अकेले में समझूंगा, यह सब दोष पंडित जी में शासन न कर सकने की अयोग्यता का है वे अध्यापकों पर तो क्या बालकों पर भी शासन नहीं कर सकते, यही कारण है पुराने विद्यार्थी होशियार होते ही आश्रम को छोड़ जाते हैं। जिस अध्यापक पर हमें समाचार देने का मिथ्या अभियोग लगाया गया है उससे आज तक हमारा कभी पत्र व्यवहार नहीं हुआ। हां यह हो सकता है कि वह झांसी के आस पास का रहने वाला है, सम्भव है—कभी कोई समाचार देदे इससे इस प्रान्त का आश्रममें कोई अध्यापक या बालक न रहने पावे, यदि ऐसा ख्याल है तो वह गलत है हमें समाचार कहीं न कहीं से मिलते जायगे। अभी ही मेरठ से हमारे पास एक चिट्ठी आई है यद्यपि उसमें ऐसी कोई बात नहीं लिखी है जो हमें मालूम न हो पर उस चिट्ठी के शब्द बड़े मर्मस्पर्शी हैं उन्हें दिल थांमकर पढ़िये—

"आश्रम में रंगरूटी शासन आश्रमीयता खोरहा है। [illegible] आदमी इस समय काम कर रहे हैं प्रायः सब स्वकार्यनि[illegible], स्वार्थलोलुप, अकर्मण्य हैं ·········ने नाते रिश्तेदारों को बुलाकर आश्रम से जाति पालन करना ठानलिया है। आश्रम की आन्तरंग व्यवस्था मार्मिक वेदनोत्पादक है।·····ने ५) रुपया और एक घड़ी देकर बालक के साथ दुश्चरित्रता की थी, उन्हीं से पं० मक्खन लाल जी मा० तोजी लाल से इना-

काण्ड के समय से दब रहे हैं क्योंकि उन्होंने १२५०) पुलिस को आश्रम से दिलाकर पंडितजी का पिण्ड छुड़वाया था। यहां का सारा स्टाफ खाऊ, आश्रमीय फलों का चटोरा) निडर और स्वेच्छाचारी हो गया है" इत्यादि।

हम श्रीयुक्त साहु जुगमंदिर दास जी, रायसाहिब बद्री दासजी, रायसाहिब फूलचन्द जी, रायसाहिब द्वारका प्रसाद जी बा० उमराव सिंह जी वकील और बा० ऋषभ दासजी वकील आदि सुयोग्य मेम्बरों का ध्यान आश्रम की उक्त स्थिति पर आकर्षित करते हैं कि आप शिक्षित व्यक्तियों की तरह अपने कर्तव्यों का पालन करें केवल लाला लोगों की तरह नाम मात्रका अपने को मेम्बर न समझें आप जैसे सुयोग्य व्यक्तियों के कमेटी में रहते हुये भी आश्रम यदि आपकी योग्य सम्मति का लाभ न उठा सके तो बड़ी ही लज्जा की बात होगी।

साहित्य समालोचना।

जैन हितैषी।

हर्ष है जैन समाज का यह चिरपरिचित पत्र अक्तूबर मास से पुनः प्रकाशित होने लगा है। इसका सम्पादन भार जैन गजट के ख्याति प्राप्त भूतपूर्व सम्पादक श्रीयुत पंडित जुगुल किशोर जी मुख्तार ने ग्रहण किया है। पत्र उसी सज धज से निकला है जैसा पहिले निकलता था। "जैनाचार्यों का

शासनभेद" "दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रंथ" "ऐतिहासिक जैन व्यक्तियां" यह तीनों लेख बहुत परिश्रम और मनन के बाद लिखे गये हैं। प्रत्येक इतिहास प्रेमी को इस पत्रका ग्राहक बनना चाहिये। इतनी महंगाई के समय में भी वार्षिक मूल्य ३) रु० से घटा कर २) रु० होगया है। मिलने का पता—

जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई।

ग्रंथ सूची।

यह है स्वर्गीय बा० देवकुमार जी द्वारा स्थापित जैन सिद्धान्त भवन आरा के ग्रंथों का विवरण सूची कितने ही वर्षों के परिश्रम के बाद प्रकाशित हो गई है इसके लिये श्रीयुक्त बाबु सुपार्श्वदास जी गुप्त बी० ए० धन्यवाद के पात्र हैं। सूची के पढ़ने से मालूम हुआ उक्त भवन में प्राचीन और अलभ्य ग्रंथों का संग्रह अच्छा किया गया है। आशा है मंत्री महाशय स्थायी कोष बढ़ाकर भवन को और उन्नति देवेंगे। यह पुस्तिका साहित्य प्रेमियों के बड़े काम की चीज़ है। प्रत्येक साहित्य प्रेमियों व जैन को भारत का पुरातन जैन भान्डार जानने के लिये इसे मंगाकर पढ़ना चाहिये। मूल्य १) रुपया।

मिलनेका पताः—
जैन सिद्धान्तभवन आरा।

समाचार।

एक घन्टेमें १००० मील।

एक मदरासी वकील ने जिनका नाम अनन्तअय्यर है एक ऐसी मशीन निकाली है जो आकाश, समुद्र और पृथ्वी पर एक घंटे में १००० मील लेजा सकती है। आप इससे भी अधिक चाल बढ़ाने की आशा रखते हैं और इस आविष्कार को किसी कम्पनी को देना चाहते हैं।

सूचना।

प्रथम अंक हमारे पास बिलकुल नहीं रहा है अतः नये ग्राहक उसकी मांग न करें। जिन सज्जनों के पास प्रथम अंक व्यर्थ पड़ा हुआ हो वे यदि उसे वापिस करदें तो बड़ी कृपा होगी। जो ऐसा न कर सकें वे बदले में आगे का कोई भी अंक मंगा सकते हैं।

आवश्यकताएँ।

वर की आवश्यकता।

जयपुर रियासत के अन्तरगत चुरु, बिसाऊ, रामगढ़, फतहपुर आदि स्थानों में जो अग्रवाल जैनी रहते हैं वे प्रायः सब गर्गगोत्री ही हैं इससे इन बेचारों को मजबूरन वैश्नवों से वैवाहिक सम्बन्ध करना पड़ता है। हर्ष है सेठ निर्भय राम जी मालिक दूकान मनशा राम गोवर्द्धन दास बिसो ने अपना विचार किसी भी प्रान्त के अग्रवाल जैन से अपनी पुत्री का सम्बन्ध करने का प्रकट किया है। आप ३०००) इन्कम टेक्स में देते हैं, इसी के अनुसार लड़के वाले की हैसियत भी अच्छी होनी चाहिये और लड़के की अवस्था १५-१६ वर्ष की होनी चाहिये।

वरकी जरूरत।

एक १५-१६ वर्ष की खंडेल वाल जैन बाल विधवा के लिए वर की जरूरत है। पता—

नानकचंद खन्ना

विधवा सहायक सभा सदर, झांसी।

Regd: No. A. 784.

एजन्टों के नियम।

१— जाति प्रबोधक खरीज में बेचने वाले एजन्टों के लिए कमीशन =) रुपया मिलेगा।

२— कापियें १०० की १२० दी जायंगी। अर्थात ५ की ७ इस हिसाब से एजन्टो को ६ कापी के ||।) मिलेंगे किन्तु हम ||=) ही लेंगे और उन्हे सवाया कमीशन मिल ही जावेगा।

३— डांक खर्च हम अपने पास से देंगे।

४— चार कापियों से कम किसी को न भेजी जायंगी। अधिक चाहे जितनी मंगा सकते हैं।

५ — दाम पेशगी लिये जांयगे।=) में ४ कापियां मंगाकर चाहे जो कोई एजेन्सी के लिये कोशिश कर सकता है।

नोट— ग्राहक बनाने वाले एजन्टो की जरूरत है। नियम मंगा कर देखिये।

Printed by Lala Debi Din Jaiswal at the Union Press Jhansi.

॥ श्रीः ॥

श्रीनरोत्तमदासकृत–

सुदामाचरित्र ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७वीं गली खम्बाटा लेन,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशितकिया ।

संवत् १९६९, सन् १९१२ ई.

महादानि जिनके हितू, हैं हरि यदुकुलचंद ॥
ते दारिद्र संतापते, रहैं न किमि निरदुंद ॥ ७ ॥
कहै सुदामा बाम सुनु, वृथा और सब भोग ॥
सत्य भजन भगवानको, धर्म सहित जप योग ॥ ८ ॥

घनाक्षरी ।

लोचनकमल दुखमोचन तिलकभाल, श्रवणन कुंडल मुकुट धरे माथ हैं ॥ ओढ़े पीत वसन गलेमें वैजयंतीमाल, शंख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥ कहत नरोत्तम संदीपन गुरूके पास, तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं ॥ द्वारकाको गये हरि दारिद हरेंगे पिय, द्वारकाके नाथ वे अनाथनके नाथ हैं ॥ १ ॥

सवैया ।

शिक्षकहैसिगरेजगकोतिय, ताकोकहाअबदेतहैशिक्षा ।
जे तपकैपरलोकसिधारत, संपतिकीतिनकेनअपेक्षा ॥
मेरेहिये हरिके पद पंकज, बार हजारलौं देख परीक्षा ।
औरनकेधनचाहियेबावरी, ब्राह्मणकेधनकेवलभिक्षा २ ॥
दानीबड़ेतिहुँलोकनमेंजग, जीवतनामसदाजिनको लै ।
दीननकीसुधिलेतभलीविधि, सिद्धकरोपियमेरोमतालै ।

दीनदयालुकेद्वारनजातसो, औरकेद्वारपैदीनह्वै बोलै ।
श्रीयदुनाथसेजाकेहितूसो, तिहूंपनक्योंकनमांगतडोलै
क्षत्रिनकेप्रणयुद्ध ज्यों बादल,साजिचढ़ेगजवाजिनहीं ।
वैश्यकोवानिजऔर कृषीपन, शूद्रकेसेवननीतियहीं ॥
विप्रनकेप्रणहै जु यही सुख, संपतिसों कुछकाजनहीं ।
कै पढिबोकैतपोधनहैकन,माँगतब्राह्मणैलाजनहीं॥४॥
कोदोंसमाजुरतौभरिपेटन, चाहतिहौदधिदूधमिठौती ।
शीतव्यतीतगयोशिशिआतहि, हौंहठतीपैतुम्हैनहठौती
जोजनतीन हितूहरिसेतौमैं,काहेकोद्वारकाठेल पठौती ।
याघरसेकबहूँनगयोपिय,टूटौतवाअरुफूटीकठौती ५॥
छांड़िसबैझखतोहिलगीबक, आठहुयामयहीजियठानी
जातहिदेहैंलदायलढाभारि,लैहौंलदाययहीजियजानी॥
पैयेअटारीअटाकहँतेजिन, कोविधिदीनीहैटूटीसीछानी
जोपैदरिद्रललाटलिख्योतोपै,काहूकेसेटनजातअजानी
चंद्रकोमित्रचकोरसदातेहि,भोजनआगेविरंचिनेदीनों ।
पंकजको हितूघोसपतीहिम,जारतताहियहीप्रणलीनों॥
कर्मबलीसुनरीअबलानित, संगरहै सबके पुर तीनों ।
लक्ष्मीनाथसखाजिनकेतिनके,घरवासदरिद्रनेकीनों७॥

पूरण पैजकरीप्रहलादकी, खंभसोंबांधिपिताजेहिबेरे ।
द्रौपदीध्यानधरयोजबहीतब,ही पटकोटिलगेचहुँहेरे ॥
ग्राहतेछूटिगजेन्द्रगयोप्रिय, हैहरिकोनिशचैजियमेरे ।
ऐसे दरिद्र हजारहहरैंवे,कृपानिधिलोचनकोरकेफेरे॥८॥
चक्रितचौंकिरहेचकसेतहां,भूलेसे भूप अनेक गनाऊं ।
देवगंधर्व औ किन्नर यक्षसे,सांझलोंदेखखडे जेहिठाऊं॥
तेदरबारविलोक्योंनहींअब,तोहिकहाकहिकेसमझाऊं।
रोकिहैंलोकनकेमुखियातहां,हौंदुखियाकिमिपैठनपाऊं
भूलेसेभूपअनेकखड़ेरहैं,ठाड़े छकैं तिमि चक्रवै भारी ।
देव गंधर्व औ किन्नरयक्षहि,रोकेजेलोकनकेअधिकारी।
अंतरयामीवेआपहिजानिहैं, मानुयहीसिखआजहमारी
द्वारकानाथकेआगेगयेसब,तेपहिलेसुधिलैहैंतुम्हारी १०
दीनदयालको ऐसोहीद्वारहै,दीननकीसुधि लेतसदाई ।
द्रौपदीते गजते प्रहलादते,जानिपरी नविलंब लगाई॥
याहीतेभावतमोमनदीनता,जोनिबहैनिबहीजस आई ।
जौव्रजराजसोंप्रीतिनहींकेहि,काजसुरेशहुकीठकुराई ११

घनाक्षरी ।

फाटे पट टूटी छानि खायो भीख मांगि आनि,
विना गये विमुख रहत देवपित्रई । वे हैं दीनबंधु दु-

खी देखके दयालु है हैं, दैहैं कछु भलोसो हौं जानत अगत्रई ॥ द्वारकालों जात पिय केतौ अलसात तुम, काहेको लजात भई कौनसी विचित्रई । जोपै सब जन्म ये दरिद्रही सतायो तोपै, कौनकाज आयहै कृपानिधिकी मित्रई ॥ १२ ॥

दामहीसों मान औ बड़ाई यश दामहीसों, दामहीसों दैबो लैबो दामहीसों काम है । दामहीसों तीर्थ ब्रत नेम धर्म दामहीसों, दामहीसों देवपूजा दामहीसों नाम है ॥ दामहीको जगमें फिरत कवि पंडितहू, जापै नाहिं दाम ताको सूखिजात चाम है । राजा और राव पातशाहनको कौन गिने, मेरे जान बीसबिसें दामहीमें राम है ॥ १३ ॥

पिता निज पुत्र त्यागै भाई नहीं साथ लागै, नारी मुख देखि भागै पूछत न बात है । चाचा चवाव करै मा बहनसे नित्त लड़े, भोजन रिसाय धरे कूकर ज्यों खात है ॥ लोग कहैं कूर भये भाई सब दूरि भये, वृथा जग जन्म जात पाछे पछतात है। सास ससु दैया कोऊ लेत न बलैया भैया, आजके जमानेमें रुपैया करामात है ॥ १४ ॥

तैंतो कही नीकी सुन बात हितहीकी यह, रीति मित्रईकी नित प्रीति सरसाइये । चित्तके मिलेते वित्त चाहिये पर सपर, मित्रके जो जेंइ ये तौ आपहू जिमाइये ॥ वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप, तहां यह रूप जाय कहा सकुचाइये । दुख सुख सबदिन काटेही बनेगो भूल, विपति परेपै द्वार मित्रके न जाइये ॥ १५ ॥

विप्रके भगत हरि जगत विदित बंधु, लेत सबहीकी सुधि ऐसे महादानि हैं ॥ पढे एक चटसाल कही तुम कैयो बार, लोचन अपार वे तुम्हें न पहिचानिहैं ॥ एक दीनबंधु कृपासिंधु फेर गुरुबंधु, तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहैं । नाम लेत चौगुनी गयेते द्वार सौगुनी, देखत सहस्रगुनी पिरीति प्रभु मानिहैं ॥ १६ ॥

सवैया ।

प्रीतिमें चूकनहींउनकेउठि, मोमिलिहैंहरिकंठलगायकै ।
द्वार गयेकछुदेहैंभलो, हमैंद्वारकानाथजीहैंसबलायकै ॥
याविधिबीतगयेपनद्वैअब, तौपहुंचौविरधापनआयकै ।
जीवनकेतोहैजाकेलियेहरिसों, अवहोहुँकनावड़ोजायकै

जेहिहोउकनावड़ोबारहजारलों,जोहितदीनदयालसोंपाइये
तीनहुँ लोककेठाकुरहैं तिन,केदरबारगये न लजाइये॥
मेरोकहोजियमेंधरिकैपिय,और न भूलिप्रसंगचलाइये॥
औरकेद्वारसेकामकहापिय,द्वारकानाथकेद्वार सिधाइये
आयेहोआजकैकालिअबैतुम,जाओगेपसोंकैनसोंअबारे ।
पत्र लिखूंसोइ मित्रहमारे,कहांउतरोगे जोजागतुम्हारे॥
मैंतो रहूँ दरबारके भीतर,आवतहों कभी सांझसबारे ।
मूरखमित्रकी प्रीति सुनोजहां,कागउड़ेंसोईजाग हमारे ।

घनाक्षरी ।

श्यामसों मिताई मैंतो जबते जताई यासों,तबहींते
मेरे पाछे काढ़बेको परी है । याके हँसि बोले हौं न
जानतहौं और दुख, कालिकानिकाई राम वही क्रोध
भरी है ॥ सेवा छांड़िदई आगे लाठिया लै ठाढ़ी
भई, हरिपै चलायबेकी कथा कंठ करी है । बैठत उठात
न्हात खात सोंपै आधीरात,ऐसी सावधान ज्यों वड़ा-
वलकी घरी है ॥ २० ॥

सवैया ।

द्वारका जाहु जू द्वारकाजाहुजू, आठहुयामयहीझकतेरे
जो न कहो करिये तो बड़ोदुख, पैहौंकहांअपनीगतिहेरे

द्वार खड़ेप्रभुके छड़िया तहँ,भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी तौदेखुविचारिके,भेटकोचारि न चामर मेरे

दोहा ।

यह सुनिकै तब ब्राह्मणी, गई परोसिन पास ॥
सेर पाव चामर लिये, आई सहित हुलास ॥ ९ ॥
सिद्धि करौ गणपति सुमिरि, बांधि दुपटियाखूट॥
चलेजाहु तेहि मारगहि, मांगत बाली बूट ॥ १० ॥

घनाक्षरी ।

चल्यो है सुदामा कहै बात घर रामजीसों, मांगिहों न दाम तोसों साँचीही कहतहों । जोपै मोहि आपुनते बूझिहै वैकुंठनाथ, तब हौं कहूँगो प्रभु खुशीही रहतहों ॥ अबहूँ विचार दुखी सुखी दिन टार कित, पाठवै मुरारिजीपै आपदा कहतहों । विना दाम धाम फिर ऐहों भेट श्यामजीसों, तेरे कहे रामकी सौं ठाठिया गहतहों ॥ २२ ॥

काँपे सुरपति नरपति काँपे ठौर ठौर,आगम जनायो द्विजवंत जिय बामाके । छांड़दई आश कयलाशहूकी अहाईश, सोच ब्रह्मादिकहू सकल सुखधामाके ॥ डरपे कुबेर डगमगित सुमेरु भये, जानि डर कलीराम

गुणकर नामाके ।एते हहराने घहराने हरि हितू जानि,
द्वारकाकी ओर पग धरत सुदामाके ॥ २३ ॥

दोहा ।

तीन दिवस चलि विप्रके, दूखि उठे तब पाय ॥
एक ठौर सोये कहूँ, घास पयार बिछाय ॥ ११ ॥
अंतरजामी आप हरि, जानि भक्तकी पीर ॥
सोवत लै ठाढ़ो कियो,नदी गोमती तीर ॥ १२ ॥
प्रात गोमतीदरशते, अति प्रसन्न भय चित्त ॥
विप्र तहां सुस्नान करि,कीनो नित्यनिमित्त ॥१३ ॥
भाल तिलक घिसिदैलियो, गही सुमरनी हाथ ॥
दिव्य देखि द्वारावती,भयो अनाथ सनाथ ॥१४॥

घनाक्षरी ।

मंगल संगीत धामधाममें पुनीत जहां, नाचें वार-
वधू देवनारि अनुहारिका । घंटनके नाद कहूँ बाजनके
छाय रहे, कहूँ कीर केकी पढ़ें सुक और सारिका ॥
रतनन ठाट हाट बाटनमें देखियत, घूमें गज अश्व
रथ पत्ति नर नारिका । दशो दिशा भीर द्विज धरत न
धीर मन, उठतहै पीर लखि बलबीर द्वारिका ॥२४॥

द्वार खड़ेप्रभुके छड़िया तहँ,भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी तौदेखुविचारिके,भेटकोचारि न चामर मेरे

दोहा ।

यह सुनिकै तब ब्राह्मणी, गई परोसिन पास ॥
सेर पाव चामर लिये, आई सहित हुलास ॥९॥
सिद्धि करौ गणपति सुमिरि, बांधि दुपटियाखूट॥
चलेजाहु तेहि मारगहि, मांगत बाली बूट ॥१०॥

घनाक्षरी ।

चल्यो है सुदामा कहै बात घर रामजीसों, मांगिहों न दाम तोसों साँचीही कहतहों । जोपै मोहि आपुनते बूझिहै वैकुंठनाथ, तब हौं कहूँगौ प्रभु खुशीही रहतहों ॥ अबहूँ विचार दुखी सुखी दिन टार कित, पाठवै मुरारिजीपै आपदा कहतहों । विना दाम धाम फिर ऐहों भेट श्यामजीसों, तेरे कहे रामकी सौं ठाठिया गहतहों ॥ २२ ॥

काँपे सुरपति नरपति काँपे ठौर ठौर,आगम जनायो द्विजवंत जिय बामाके । छांड़दई आश कयलाशहूकी महाईश, सोच ब्रह्मादिकहू सकल सुखधामाके ॥ डरपे कुबेर डगमगित सुमेरु भये, जानि डर कलीराम

गुणकर नामाके ।एते हहराने घहराने हरि हितू जानि,
द्वारकाकी ओर पग धरत सुदामाके ॥ २३ ॥

दोहा ।

तीन दिवस चलि विप्रके, दूखि उठे तब पाय ॥
एक ठौर सोये कहूँ, घास पयार बिछाय ॥ ११ ॥
अंतरजामी आप हरि, जानि भक्तकी पीर ॥
सोवत लै ठाड़ो कियो,नदी गोमती तीर ॥ १२ ॥
प्रात गोमतीदरशते, अति प्रसन्न भय चित्त ॥
विप्र तहां सुस्नान करि,कीनो नित्यनिमित्त ॥१३ ॥
भाल तिलक घिसिदैलियो, गही सुमरनी हाथ ॥
दिव्य देखि द्वारावती,भयो अनाथ सनाथ ॥१४॥

घनाक्षरी ।

मंगल संगीत धामधाममें पुनीत जहां, नाचें वार-
वधू देवनारि अनुहारिका । घंटनके नाद कहूँ बाजनके
छाय रहे, कहूँ कीर केकी पढें सुक और सारिका ॥
रतनन ठाट हाट बाटनमें देखियत, घूमें गज अश्व
रथ पत्ति नर नारिका । दशो दिशा भीर द्विज धरत न
धीर मन, उठतहै पीर लखि बलवीर द्वारिका ॥२४॥

दृष्टि चकचौंधिगयी देखत सुवर्णमयी, एकते सरस एक द्वारकाके भौन हैं । पूछे बिन कोऊ काहूसे न करै बात जहां, देवतासे बैठे सब साधिसाधि मौन हैं ॥ देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय, कृपा करि कहो कहां कीने विप्र गौन हैं । धीरज अधीरके हरण परपीरके, बताओ बलबीरके महल यहां कौन हैं ॥ २६ ॥

दोहा ।

मो मरनेको नेम है,मरूं तो हरिके द्वार ॥
कबहूं तौ हरि पूछिहैं, कौन मरो दरबार ॥ १५ ॥
दीन जानि काहू पुरुष, कर गहिलीनों आय ॥
दीन द्वार ठाड़ो कियो, दीननाथके जाय ॥ १६ ॥
द्वारपाल द्विज जानिकै, कीनो दंडप्रनाम ॥
विप्र कृपा करि भाषिये, सकल आपनो नाम ॥१७॥
नाम सुदामा कृष्ण हम, पढे एकही साथ ॥
कुल पांडे यदुनाथ सुनि, सकल जानिहैं गाथ ॥१८॥
द्वारपाल चलि तहँ गयो, जहाँ कृष्ण यदुराय ॥
हाथ जोरि ठाड़ो भयो, बोल्यो शीश नवाय ॥१९॥

सवैया ।

शीशपगान झँगातनमेंप्रभु,जानेंकोआहिबसैकिहिग्रामा
धोतीफटीसीफटीदुपटीअरु,पाँयउपानहकोनहिंसामा॥
द्वारखड़ोद्विजदुर्बलदेखि, रह्योचकिसोवसुधाअभिरामा
दीनदयालुकोपूछतनाम,बतावतआपनोनामसुदामा ॥

घनाक्षरी

बोल्यो द्वारपालक सुदामा नाम पांडे सुनि,कामकाज छोड़े सब जीकी गति जाने को । द्वारकाके नाथ हाथ जोरि गहे पाँय जब, भेंट लिपटायकरि ऐसे दुखसानेको ॥ नैन दोऊ जल भरि पूछत कुशल हरि,विप्र बोल्यो विपतामें मोहि पहिचाने को । जैसी तुम कीनी तैसी करै को कृपाके सिंधु, ऐसी प्रीति दीनबंधु दीननसे माने को ॥ २७ ॥

सवैया ।

लोचन पूरिरहे जलसों प्रभु,दूरते देखतही दुख मेट्यो ।
सोच भयोसुरनायकके,कलपद्रुमकेहियमांझखसेट्यो॥
काँपि कुबेर हिये सरसे पग,जात सुमेरहु रंकसेसेट्यो।
राज भयोतबहीजबहीभरि,अंगरमापतिसोंद्विजभे-

दोहा ।

भेट भलीविधि विप्रसों,कर गहि त्रिभुवनराय ॥
अंतःपुरको लैगये, जहाँ न दूसर जाय ॥ २० ॥
मणिमंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय ॥
पानी धरयो परातमें, पग धोवनको लाय ॥ २१ ॥
राजरमणि सोलह सहस, सब सेवकन समीत ॥
आठों पटरानी भईं, चकित चितै ये प्रीत ॥ २२ ॥
जिनके चरणनको सलिल, हरत जगतसंताप ॥
पांय सुदामा विप्रके, धोवतहैं हरि आप ॥ २३ ॥

सवैया ।

ऐसे विहालबिवायनसोंभये,कंटकजाललगेपुनिजोये ।
हाय महादुखपायोसखातुम,आयेइतैनकितैदिनखोये॥
देखिसुदामाकीदीनदशाकरु,णाकरिकेकरुणानिधिरोये
पानीपरातकोहाथछुओनहिं,नैननकेजलसोंपगधोये२९

दोहा ।

धोय चरण पट प्रीतिसों, पोंछतहैं यदुराय ॥
सतिभामासे यह कही, करो रसोई जाय ॥ २४ ॥
गुरुसेवा दुर्लभ महा, चित दै करै जो कोय ॥
जो मनमें इच्छा करै, सो सब पूरण होय ॥ २५ ॥

पवन झकोरत तीव्रसों, शीत भयो अधिकाय ॥
काठभार मस्तक धरचो,हमको लियो छिपाय ॥२६॥
बहुत भाँति रक्षा करी, आप रहे दुखमाहिं ॥
तुम्हरी प्रीति अनंत है, उऋण होहुँ मैं नाहिं ॥२७ ॥
तंदुल त्रिय दीने हुते, आगे धरियो जाय ॥
देखि राजसंपति विभव,दे नहिं सकत लजाय ॥२८॥
अंतरयामी आप हरि, जानि भक्तकी रीति ॥
सुहृद सुदामा विप्रसों, प्रगट जनाई प्रीति ॥ २९ ॥
कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ॥
चाँपि गाठरी काँखमें,रहे कहो किहि हेत ॥ ३० ॥

सवैया ।

आगे चनागुरुमातदियेते, लियेतुमचाबिहमैंनाहिं दीने ।
श्यामकहीमुसकायसुदामासों,चोरिकीबानिमेंहौजो प्रवीने
गाठरी काँखमें चापि रहे तुम,खोलतनाहिंसुधारसभीने।
पाछिलीबानिअजौंनतजीतुम,वैसेहीभाभीकेतंडुल कीने

दोहा ।

खोलत सकुचत गाठरी, चितवत हरिकी ओर ॥
जीरण पट फट छुटिपरे, बिखरिगये तेहि ठोर॥३१॥

सवैया ।

तंदुल माँगत मोहन विप्र,सकोचते देतनहींअभिलाखे।
हैनाहिंपासकछूकहिकैतिहि,गोपिघनीविधिकाँखमेंराखे
सोलखिदीनदयालुतहाँयह,चोरीकरीतुमयोंहँसिभाखे।
खोलकेपोटअछोटमुठीगिरि,धारणचामरचावसों चाखे

दोहा ।

एक मुठी हरि भरिलई,लीनी मुखमें डारि ॥
चबत चबाउ करनलगे,चतुरानन त्रिपुरारि ॥ ३२ ॥

सवैया ।

कंपिउठीकमलामनसोचत,मोसोंकहाहरिकोमनओंको।
ऋद्धिकँपीनवनिद्धिकँपीसब,सिद्धिकँपीब्रह्मनायकधोंको
शोकभयोसुरनायककेजब,दूसरीबारलयो भरि झोंको ।
मेरुडरैबकशैजिनमोहि,कुबेरचबावतचामरचोंको३२॥

घनाक्षरी ।

हूल हियरामें कानकानन परी है टेर,भेटत सुदामें श्याम बनै न अघातहीं । कहै नरोत्तमऋद्धिसिद्धिनमें शोर भयो,ठाढ़ी थरहरे और सोचें कमला तहीं ॥ नागलोक लोक सब ओकओक थोकथोक, ठाढ़े थरहरैं मुखसे कहै न बातहीं । हालो परचो लोक-

नमें लालो परयो चक्किनमें, चालो परयो लोगनमें चामर चबातहीं ॥ ३३ ॥

सवैया ।

भौन भरेपकवानमिठाइन,लोगकहैंनिधिहैं सुखमाके ।
साँझसबेरेपिताअभिलाषत,दाखनचाखतसिंधुरमाके ।
ब्राह्मणएककोऊदुखियासेर,पावकचामरलायो समाके ।
प्रीतिकीरीतिकहाकहिये,तिहिबैठेचबावतकंतरमाके३४

दोहा ।

मुठी दूसरी भरतही, रुक्मिनि पकरी बाँह ॥
ऐसी तुम्हें कहा भई, संपतिकी अनचाह ॥ ३३ ॥
कही रुक्मिनी कानमें, यह धौं कौन मिलाप ॥
करत सुदामहि आपसों, होत सुदामा आप ॥ ३४ ॥

सवैया ।

हाथ गह्यो प्रभुकोकमलाकहै,नाथकहातुमनेचित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुइदीन,कियो तुमने दुइलोकबिहारी॥
खायमुठीतिसरीअबनाथ,कहानिजवासकीआसबिसारी
रंकहि आपसमानकियोतुम,चाहत;आपहिहोनभिखारी

क्योंरसमेंविषवामकियोअबै,औरनखानदियोइकफंका।
विप्रहिलोकतृतीयकेदेत,करीतुमक्योंअपने मनशंका ॥
भामिनिमोहिजिमायभलीविधि, कौनरह्योजगमेंनररंका
लोगकहैंहरिमित्रदुखीहम,सेनसह्योयहजातकलंका ३६
भार्गव ह्वैतुमजीतधरादई,विप्रनकोअतिही सुखमानो ।
विप्रनकाढिदियोतुमकोनिशि,तादिनकोबिसरोखिसियानो
सिंधुहटायकरीतुमठौर,द्विजन्मसुभावभलीविधिजानो।
सोतुमदेतद्विजैसबलोक, कियोतुमनेअबकौनठिकानो३७
भामिनिदेहुँ द्विजैसबलोक,तजौहठमोरयहीमन भाई ।
लोकचतुर्दशकीसुखसंपति, लागतविप्रविनादुखदाई ॥
जायबसौंउनकेगृहमेंकारि, हौं द्विजदंपतिकी सेवकाई ।
तोमनमाहिंरुचैनरुचैसो,रुचैहमकोयहिठौरसुहाई ३८॥
नेकनकानिकरेद्विजपैनृग,से नृपको नरकी कारडारो ।
शापदियोपुनिशंकरक्षोअब,लोंदुखतेशिवभागबिसारो
विप्रनफेरविजैजयकोतुम, देखतघोरकुयोनिमें डारो ।
सोतुमजानिसबैगुणदोष,करौफिरहू द्विजकोपतियारे३९

दोहा ।

यह कौतुक लखिके सभय, कही सेवकन आय ॥
भई रसोई सिद्ध प्रभु, भोजन करिये जाय ॥३५॥

विप्रसहित सुस्नान करि, धोती पहिरि बनाय ॥
संध्या करि मध्यानकी, चौका बैठे जाय ॥ ३६ ॥

घनाक्षरी ।

रूपेके रुचिर थार पायस सहित शोभा, सब जीत-
लीनी शोभा शरदके चंदकी । दूसरे परोस्यो भात
सान्यो है सुरभिघृत, फूलेफूले फुलके प्रफुल्लि दुति
मंदकी ॥ पापर मुँगौरी बरा बेसन अनेक भाँति,
देवता विलोकि शोभा भोजन आनंदकी । या विधि
सुदामाजीको अच्छके जिमाय फिर, पाछेकै पछा-
वरि परोसी आनि कंदकी ॥ ४० ॥

दोहा ।

करि अचमन मुख धोयके, पान खाय सुख पाय ॥
पौढे पलँगापै तबै, कृष्ण पलोटे पाय ॥ ३७ ॥
सात दिवस यहि विधि रहे, दिनदिन आदर भाव ॥
चित्त चल्यो घर चलनको, ताको सुनो बनाव॥३८॥

घनाक्षरी ।

कह्यो विश्वकरमाको हरि तुम जायकरि, नगर
सुदामाजीको रचौ वेग अवही । रतनजटित धाम

सुवरणमयी सब, कोट औ बजार बाग फूलनके तबही ॥कल्पवृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे,कीजिये अपार दास दासी देवछबही । इंद्र औ कुबेर आदि देववधू अपसरा, गंधरब गुणी जहाँ ठाढ़े रहैं सबही४१॥

दोहा ।

नितनित सब द्वारावती, दिखलाई प्रभु आप ॥
भरे बाग अनुराग सब, जहाँ न व्यापहि ताप॥३९॥
परमकृपा दिनदिन करी, कृपानाथ यदुराय ॥
मित्रभावना विस्तरी, दूनों आदर भाय ॥ ४० ॥

सवैया ।

दाहिने वेदपढें चतुरानन, सामुहे ध्यान महेशधरयोहै ।
बायेंदोऊकरजोरसुसेवक,देवनसाथसुरेश खड्यो है ॥
एतन बीच अनेक लिये धन,पायनआयकुबेरपरयोहै ।
देखिविभौअपनोसपनोबपु,रोवहब्राह्मण चौंकिपरयोहै४२

दोहा ।

वस्त्रादिक बहु भाँतिके, पहिराये सुखदाय ॥
करि प्रणाम कर जोरिके,बोले त्रिभुवनराय॥४१॥

सवैया ।

धन्यकहाकहियेद्विजजीतुम,सोंजगकौनउदारप्रवीनो ।
पाछिलिप्रीतिनिबाहीभलीमन,दोषनिवारिकेरोषनकीनो
मैं द्विजकेचरणोदकहेतु,अजन्मकहायकेजन्मसुलीनो ।
आवनकैनिजपावनसोंयहाँ,मोसोअपावनपावनकीनो४३

दोहा ।

देनो हुतो सो देचुके, विप्र न जानी गाथ ॥
चलती बेर गुपालजी, कछू न दीनो हाथ ॥ ४२ ॥
गोपुरलों पहुँचायके, फिरे सकल दरबार ॥
मित्र वियोगी कृष्णके, नेत्र चली जलधार ॥ ४३ ॥
प्रीति आरसी विमल है, सबकोइ सेवै जान ॥
कपट मोरचा लगतहीं, होत दरशकी हान ॥ ४४ ॥
इतनो सम आदर कियो, दियो न कछु सुहि श्याम॥
या प्रकार सोचत चल्यो, विप्र आपने धाम ॥ ४५॥
बहु पुलकनि बहु उठि मिलन, बहु आदरकी पाँति॥
यह पठवनि गोपालकी, कछू न जानी जाति ॥४६॥
घरघरमें ओढत फिरे, तनक दहीके काज ॥
कहा भयो जो अब भयो, हरिको राजसमाज ॥४७॥

हौं आवत नाहीं हुतौ, बामहिं पठयो ठेल ॥
अब कहिहौं समझायके,बहु धन धरौ सकेल ॥४८॥
बालापनके मित्र हैं, कहा देउँ मैं शाप ॥
जैसो हरि हमको दियो, तैसो पइयो आप ॥ ४९ ॥
त्रयगुणधारी छगुणसौं, त्रिगुणामध्ये जाय ॥
लायो चपल चतुर्गुणी, आठों गुणनि गमाय ॥५०॥
और कहा कहिये जहाँ, कंचनहीके धाम ॥
निपट कठिन हरिको हियो,मोको दियो न दाम५१॥
बहु भंडार रतनभरे, कौन करे अब दोष ॥
सार आपने भागको, किसपर कीजे रोष ॥ ५२ ॥
इमि सोचतसोचत झखत, आये निजपुरतीर ॥
दृष्टि परी इकबारही, हय गयंदकी भीर ॥ ५३ ॥
हरिदर्शनते दूरि दुख, भयो गयो निजदेश ॥
गौतम ऋषिको नाम लै, कीनों नगर प्रवेश ॥५४ ॥

घनाक्षरी ।

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिनमें, वेई सुरवर हँस बोलन हिलनको । वेई हेमहिरन दिशान दहलीजन

में, वेई गजराज हय गरज गिलनको ॥ द्वारद्वारछड़ी लिये द्वार पौरियाजो खड़े, बोलत मरोर बरजोर ज्यों झिलनको । द्वारकाते चल्यो भूलि द्वारकाही आयो नाथ,मांगिहैं न मोपै चार चामर मिलनको ॥ ४४ ॥

सवैया ।

वैसेई राजसमाजबने गज,वाजि घने मनमें भ्रमछायो ।
कीधोंपरचोकहुँभारवाभूलिकें, फेरकेमैंअबद्वारकैआयो
भौनविलोकिबेकोमनलौचत, सोचनहींसबगावँमझायो
पूछतपांडेकथासबसोंफिर,झोंपड़ीकोकहुँखोजनपायो॥

दोहा ।

जितजित ब्राह्मण जातहै,तिततितके नर नारि ॥
पांय गहतहैं विप्रके, बहु पूछत शुभकारि ॥५५॥
गये हुते द्वारावती, मिलने यदुकुलराय ॥
दीनो कह प्रभुने तुम्हें, हमको देहु दिखाय ॥५६॥

कुंडलिया ।

देवनगर के यक्षपुर, हौं भटको कित आय ॥
नाम कहा यह नगरको, सो न कहौ समझाय ॥
सो न कहो समझाय, नगरवासी तुम कैसे ॥
पथिक जहां संभ्रमहिं तहांके लोग अनैसे ॥

लोग अनैसे नाहिं लखौं द्विजदेव शोधिकारि ॥
कृपा करी हरिदेव दियो है देवनगर कारि ॥ ५७ ॥

दोहा ।

विप्र सुदामाको नगर, है यह चतुर सुजान ॥
करी कृपा यह कृष्णने, दीनो द्विजको दान॥५८॥
कहा सुदामें हँसतहौ,हैकारि परम प्रवीन ॥
कुटी दिखावहु मोय वह,जहां ब्राह्मणी दीन॥५९॥
देखै कहा गुपालकी,गुप्त दशा द्विज दीन ॥
जौलों प्रगट भयो नहीं,तौलों रह्यो मलीन॥६०॥

घनाक्षरी ।

जगरमगर ज्योति छायरही चहुँदिशि, अगरबगर हाथी घोड़नको शोर है। चौपड़को बन्यो है बजार पुनि सोनेनके, महल दुकानकी कतार चहुँओर है ॥ भीरभाड़ धकापेल चहुँदिशि देखियत, द्वारकाते दूनों यहाँ प्यादेनको जोर है । रहिबेको ठाम है न काहूसों पिछान मेरी,विन जाने बसे कोऊ हाड़ मेरे तोरहै४६

फूटी एक थारी बिन टोंटनीकी झारी हुती, वांसकी पिटारी औ पथारी हुती टाटकी । बेटे विन छुरी औ कमंडलु हौ टोक वोहौ, टूटो हतो पोपोपाटी टूटी एक खाटकी ॥ पथरौटा काठको कठौता कहूँ

दीसै नाहिं, पीतरको लोटोहो कटोरो है न बाटकी । कामरी फटीसी हुती डोड़नकी माला तांक, गोमती की माटीकी न सुध कहूं माटकी ॥ ४७ ॥

चौतरा उखारि काऊ चामीकर धाम कियो, छानि तौ उपारिडारी छाइ चित्रसारी जू । जो हौं होंतो घर तोपै काहेको उठनदेतो, होनहार ऐसे खोटी दशाई हमारी जू ॥ हौं तो होनकाहल हलाहल दिखाय कर, जो हल उठायदेहु हाय सुखगारी जू । लोभी केशवारी दुख भूखकी दलनहारी, गैया वनवारी काहू सोऊ मारडारी जू ॥ ४८ ॥

छाछको पिवैया गैया घेरत हो वन घर, छाछहीके काजे एक माट फोरडारयो है । खायबेके काजें पूजा इंद्रकी मिटायदई, कोप्यो जब इंद्र गिरी सात दिन धारयो है ॥ विदुरके घर जाय छीलका चबायो साग, द्रौपदीको खायो भीलनी दै फल टारयो है । द्रौपदीको चीर दये गोपिनके छीनलये, ग्राहते छुटायो गज रंगभूमि मारयो है ॥ ४९ ॥

दोहा ।

द्वारपालके करनमें, कनकदंड करवार ॥

जाय दिखायो विप्रको, यह है महल तुम्हार ॥ ६१ ॥
कह्यो अली सुनतहि चली, अली बहुचलीं संग ॥
किंकिनि नूपुर दुंदुभी, मनहु काम चतुरंग ॥ ६२ ॥
कह्यो ब्राह्मणी आयकै, चलौ कंत निजगेह ॥
श्रीयदुपति तिहुँलोकमें, प्रगट कियो प्रियनेह ॥६३॥
हमैं कंत तुम जनि कहौ, बोलो वचन सम्हारि ॥
यहां कुटी मेरी हुती, दीन बापुरी नारि ॥ ६४ ॥
मैं तो नारि तिहारि हूँ, सुधि समारिये कंत ॥
प्रभुता सुंदरता दई, अद्भुत श्रीभगवंत ॥ ६५ ॥

घनाक्षरी ।

टूटीसी मढैया मेरी पड़ी हती याही ठौर, तामें परचो दुख काटों कहाँ हेमधामरी । भूषणजटित तुम सजी प्रतिअंग बहु, सखी सोहैं संग वह क्षुधाहूते छामरी ॥ तुम तौ पाटंबर सुपहिरे किनारीदार, सारी जरतारी वह ओढे कारी कामरी । मेरी पँडियाइन न तेरी अनुहार पुनी, विपतिसताई उन पाई कहाँ पाम-री ॥ ॥ ५० ॥ ठाड़ी पडियाइन कहत मंजु भाय-नसों, आओ पति पाय परों तिहारो ही घर है ।

आये चलि दूरि श्रम भयो अतिभूरि दुख, दारिद भे दूरि यों हँसत गह्यो कर है ॥ रिद्धि सिद्धि दासी करिदीनी अविनाशी कृष्ण, पूरण प्रकाशी कामधेनु कोटि वर है । चलो पति भूलो मति तुम्हैं दीनी यदु-पति, संपति सुलीजिये समेत सुरतरु है ॥ ६१ ॥

दोहा ।

अन्हवायो तुरतहि उबटि, शुचि सुगंधसों देह ॥
पंथ चलेको सकल श्रम, मिटिगो सब संदेह॥६६॥
पूजे अतिहि सनेहसों, सिंहासन बैठाय ॥
शुचि सुगंध अंबर रचे, वर भूषण पहिराय ॥ ६७ ॥
शीतल जल अचवायके, पानदान धरि पान ॥
धरचो आय आगे सुलभ, छबि रविप्रभासमान६८॥
करहिं चमर चहुँओरते, रंभादिक सब नारि ॥
पतिव्रता अतिप्रेमसों, ठाढ़ी करैं बयारि ॥ ६९ ॥
श्वेत छत्रकी छांहमें, राजत चक्रसमान ॥
वाहन गजरथतुरंगवर, अरु अनेकशुभथान॥७०॥
कामधेनु सुर तरु सहित, दीनी श्रीबलवीर ॥
जानिपीर गुरुबंधुहरि, हरलीनी सबपीर ॥ ७१ ॥

विविध भांति मेवा दई, सुधा पियायो वाम ॥
अति विनती मृदु वचन कहि, अब पूरो मनकाम७२
लै आयसु तिय न्हायकरि, सुरुचि सुगंध लगाय॥
धोती अतिरचना रची, पहरि लगी हरषाय॥७३
विविध रसोई विरचिके, प्रेमसहित सुख पाय॥
षटरस चार प्रकारके, भोजन रचे बनाय ॥ ७४॥
चंदन चौका लीपिके, दासी परम सुजान ॥
मणिमंडित चौकी कनक, धरी गंगजल पान७५॥
जल भोजन तापर धरचो, शुचि सुगंध जल पूरि ॥
रक्षा दानसमेतसो, जल प्रकाश भरपूरि ॥७६ ॥
रतनजटित पीढा कनक, धरचो जु बैठन काम ॥
हरषित मणिचौकी धरी, कछुक दूरि छविधाम॥७७
चौकी लई मंगायके, पग धोवनको पाथ ॥
मणिपादुका विचित्र अति, धरी सलिलके साथ७८
चलिये भोजन करनको, कहि दासी मृदुभाखि॥
उठेकृष्णसानंदकहि, धनिधनिकहिहरि साखि७९॥
वसन उतारे जायके, धोवत चरण सरोज ॥
चौकीपर छवि देतत्यों, जिमि तनुधरे मनोज॥८०॥

पहिरि पादुका विप्र जब, पीढ़ा बैठे जाय ॥
रतितेअतिछविआगरी,पतिसोंहँसिमुसिक्याय ८१
विविध भाँति भोजन धरे, व्यंजन चार प्रकार ॥
जोरी पछिओरी सकल, प्रथम कहै नहिं सार८२॥
हरिहि समर्प्यो कंत जब,कह्यो मंद हँसि बाम ॥
करि घंटाको नाद बहु, हरि समर्पि लै नाम ॥ ८३ ॥
अग्नि जिमाय विधानसों, वैश्वदेव करि नेम ॥
बलिकाढीजेंवनलगे,करत पवन अति प्रेम ॥८४॥
बारबार पूछत यही, लीजै जो रुचि होय ॥
कृष्णकृपा पूरण सकल,अबहिं परोसों सोय८५॥
जेयँचुके अचवनलगे, करनहेत विश्राम ॥
रतनजटित पीढा कनक,चुन्यो सो रेशमदाम ८६॥
ललित बिछौना विरचिके,पायन कसिके डोर ॥
राखे वसन सुसेवकन,सुरुचि अतरसों बोर॥८७॥
पानदान तापर धर्यो, वर बीरी छविधाम ॥
चरण धोय पौढनलगे,करनहेत विश्राम ॥ ८८ ॥
कोइ चमर कोइ बीजना, कोउ सेवत पद चार ॥
अतिविचित्र भूषण सजे,अरुगजमोतिन हार ८९॥

विविध भांति मेवा दई, सुधा पियायो वाम ॥
अति विनती मृदु वचन कहि, अब पूरो मनकाम७२
लै आयसु तिय न्हायकरि, सुरुचि सुगंध लगाय॥
धोती अतिरचना रची, पहरि लगी हरषाय॥७३
विविध रसोई विरचिके, प्रेमसहित सुख पाय॥
षटरस चार प्रकारके, भोजन रचे बनाय ॥ ७४॥
चंदन चौका लीपिके, दासी परम सुजान ॥
मणिमंडित चौकी कनक, धरी गंगजल पान७५॥
जल भोजन तापर धरचो, शुचि सुगंध जल पूरि ॥
रक्षा दानसमेतसो, जल प्रकाश भरपूरि ॥७६ ॥
रतनजटित पीढा कनक, धरचो सु बैठन काम ॥
हरषित मणिचौकी धरी, कछुक दूरि छविधाम॥७७
चौकी लई मंगायके, पग धोवनको पाथ ॥
मणिपादुका विचित्र अति, धरी सलिलके साथ७८
चलिये भोजन करनको, कहि दासी मृदुभाखि॥
उठेकृष्णसानंदकहि, धनिधनिकहिहरि साखि७९॥
वसन उतारे जायके, धोवत चरण सरोज ॥
चौकीपर छवि देतत्यों, जिमि तनुधरे मनोज॥८०॥

घनाक्षरी ।

साजे सब साज सुसमाज गजराज वाजि, रुचिर रथन गज पालकी बहल हैं । रतनजटित सुसिंहासन बैठारिबेको, चौकीप्रति कामधेनु कल्पद्रुम हल हैं ॥ देखिदेखि भूषण वसन दासी दासनके,सुख पाकशासनके लागत सहल हैं । संपति सुदामाको जहाँलों दई आज प्रभु, कहाँलों गनाऊं जहाँ कंचनमहल हैं॥९२॥

वाजिशाला गजशाला दीने गजराज खड़े,ब्रजराज महाराज राजन समाजकेमाणिक विविध कीने मंदिर कनक सोहैं,मणिजड़े मन मोहैं सबै देवतानके॥ हीरा लाल ललित झरोखनसें झलझल, झिलमिल झलक जड़े हैं मुकतानके । जानी नहीं विपति सुदामाजीकी कहां गई,देखिये विधान यदुपतिजीके दानके॥९३॥

कहूँ सपनेहू सुवरणके महल होते, पौरिमान मंडलकलश कब धरते ।रतनजटित वर सिंहासन बैठिबेको, खड़े हैं खवास मोपै चौंर कब ढरते ॥ देखि राजसामा निजबामासों सुदामा कहै, कब ये भंडार मेरे रतनन भरते । जो न पतिव्रता तुम देती उपदेश मोय, ऐसी कृपा द्वारकेश मोपै कब करते ॥ ९४ ॥

करि सिंगार पियपै गई, पान खात मुसकाति ॥
कहो कथा श्रीकृष्णकी,तिनदीनी केहिभांति॥१०
कही कथा सब आदिते, राह चलेकी पीर ॥
सोवत जिमि ठाड़ो कियो,नदी गोमती तीर॥११
गये द्वार जेहि भाँतिसों, सो सब कही बखान ॥
कहिन जायमुखसहससों,कृष्णमिलेजिमिआन१२
कर गहि भीतर लैगये, जहां सकल रनिवास ॥
पग धोवनको आपहरि, बैठे रमानिवास ॥ १३॥
देखि चरण मेरे चलो, प्रभु नयननसों वारि ॥
पोंछत हरि निजवसनते,परदुखभंजन टारि॥१४॥
बहुरि कही श्रीकृष्णजी, तंदुल लीने आप ॥
भेटे हृदय लगायके, टारे भ्रम संताप ॥ १५ ॥
बहुरि करी जिवनार जिमि,कीनीबहुसबभाँति ॥
बरन कहाँलों हौं कहों,सब व्यंजनकी पाँति ॥१६॥
दिनप्रति अधिक सनेहसों,स्वप्न दिखाये मोहि ॥
सो देख्यों प्रत्यक्षही, स्वप्न न निरफल होहि ॥१७॥
वरनि कथा इहि विधि सकल, कहों आपनी सोह॥
कृष्ण कृपानिधिभक्तहित, चिदानंदसंदोह ॥ १८ ॥

घनाक्षरी ।

साजे सब साज सुसमाज गजराज वाजि, रुचिर रथन गज पालकी बहल हैं । रतनजटित सुसिंहासन बैठारिबेको, चौकीप्रति कामधेनु कल्पद्रुम हल हैं ॥ देखिदेखि भूषण वसन दासी दासनके, सुख पाकशासनके लागत सहल हैं । संपति सुदामाको जहाँलों दई आज प्रभु, कहाँलों गनाऊं जहाँ कंचनमहल हैं॥९२॥

वाजिशाला गजशाला दीने गजराज खड़े, व्रजराज महाराज राजन समाजके। माणिक विविध कीने मंदिर कनक सोहैं, मणिजड़े मन मोहैं सबै देवतानके॥ हीरा लाल ललित झरोखनमें झलझल, झिलमिल झलक जड़े हैं मुकतानके । जानी नहीं विपति सुदामाजीकी कहां गई, देखिये विधान यदुपतिजीके दानके॥९३॥

कहूँ सपनेहू सुवरणके महल होते, पौरिमान मंडलकलश कब धरते । रतनजटित वर सिंहासन बैठिबेको, खड़े हैं खवास मोपै चौंर कब ढरते ॥ देखि राजसामा निजबामासों सुदामा कहै, कब ये भंडार मेरे रतनन भरते । जो न पतिव्रता तुम देती उपदेश मोय, ऐसी कृपा द्वारकेश मोपै कब करते ॥ ९४ ॥

दोहा ।

उठे पहिरि अंबर रुचिर, सिंहासनपर आय ॥
बैठे प्रभुता देखिके, सुरपति रह्यो लजाय ॥ ९९ ॥

सवैया ।

कैवहटूटीसीछानिहुतीकहँ,कंचनकेसबधामसुहावत
कैपगमेंपनहींनहुतीकहँ,लैगजराजहुठाढेमहावत ॥
संपतिदेखिसुदामाकह्योकब,ऐसेदरिद्रहिंखोदिवहावत
मोसेगरीबनिवाजलियेहरि, तासोंगरीबनिवाजकहावत

दोहा ।

विप्र सुदामा सहित तिय, उमगे परमानंद ॥
नितप्रतिसुमिरण करतहैं,हियधारिकरुणाकंद१००
धन्यधन्य यदुवंशमणि, दीननपै अनुकूल ॥
धन्यसुदामातियसहित,करहिवर्षहिंसुर फूल॥१०१

॥ इति श्रीनरोत्तमदासकृत सुदामाचरित्र संपूर्ण ॥

पुस्तक मिलनेका पता–
खेमराज श्रीकृष्णदास.
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम–प्रेस–बंबई.

॥ श्रीः ॥

श्रीनरोत्तमदासकृत-

सुदामाचरित्र ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७वीं गली खम्बाटा लेन,

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशितकिया ।

संवत् १९६९, सन् १९१२ ई.

॥ श्रीः ॥

अथ नरोत्तमदासजीकृत–

सुदामाचरित्र ।

दोहा ।

श्रीगणेश सुमिरण करूं, उपजै बुद्धि विशाल ॥
सो चरित्र वर्णन करूं, जासों मम प्रतिपाल ॥ १ ॥
कृष्णमित्रके जन्मको, ताको वर्णन कीन ॥
सुख संपति माया मिलै, सो उपदेश जु दीन ॥ २ ॥
ज्यों गंगाजल पानते, पावत पद निर्वान ॥
त्यों सुंदर सुख बातसे, मूढ़ होत बुधिवान ॥ ३ ॥
विप्र सुदामा बसतहै, सदा आपने धाम ॥
भिक्षा करि भोजन करै, हृदय जपै हरि नाम ॥ ४ ॥
ताकी घरनी पतिव्रता, गहै वेदकी रीति ॥
सुलभ सुशील सुबुद्धि अति, पतिसेवासों प्रीति ॥ ५ ॥
कही सुदामा एक दिन, कृष्ण हमारे मित्र ॥
कहत रहत उपदेश तिय, ऐसी परम विचित्र ॥ ६ ॥

महादानि जिनके हितू, हैं हरि यदुकुलचंद ॥
ते दारिद्र संतापते, रहैं न किमि निरदुंद ॥ ७ ॥
कहै सुदामा बाम सुनु, वृथा और सब भोग ॥
सत्य भजन भगवानको, धर्म सहित जप योग॥८॥

घनाक्षरी ।

लोचनकमल दुखमोचन तिलकभाल, श्रवणन कुंडल मुकुट धरे माथ हैं ॥ ओढ़े पीत वसन गलेमें बैजयंतीमाल, शंख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं॥ कहत नरोत्तम संदीपन गुरूके पास, तुमही कहत हम पढ़े एक साथ हैं॥द्वारकाको गये हरि दारिद हरेंगे पिय, द्वारकाके नाथ वे अनाथनके नाथ हैं ॥ १ ॥

सवैया ।

शिक्षकहैसिगरेजगकोतिय,ताकोकहाअबदेतहैशिक्षा ।
जे तपकैपरलोकसिधारत, संपतिकीतिनकेनअपेक्षा ॥
मेरेहिये हरिके पद पंकज, बार हजारलौं देख परीक्षा ।
औरनकेधनचाहियेबावरी,ब्राह्मणकेधनकेवलभिक्षा२॥
दानीबड़ेतिहुँलोकनमेंजग,जीवतनामसदाजिनको लै ।
दीननकीसुधिलेतभलीविधि,सिद्धकरोपियमेरोमतालै।

दीनदयालुकेद्वारनजातसो, औरकेद्वारपैदीनह्वै बोलै।
श्रीयदुनाथसेजाकेहितूसो, तिहूंपनक्योंकनमांगतडोलै
क्षत्रिनकेप्रणयुद्ध ज्यों बादल,साजिचढ़ेगजवाजिनहीं।
वैश्यकोवानिजऔर कृषीपन, शूद्रकेसेवननीतियहीं॥
विप्रनकेप्रणहै जु यही सुख,संपतिसों कुछकाजनहीं।
कै पढिबोकैतपोधनहैकन,माँगतब्राह्मणैलाजनहीं॥४॥
कोदोंसमाजुरतैभरिपेटन,चाहतिहौदधिदूधमिठौती।
शीतव्यतीतगयोशिशिआतहि, हौंहठतीपैतुम्हैनहठौती
जोजनतीन हितूहरिसेतौमैं,काहेकोद्वारकाठेल पठौती।
याघरसेकबहूँनगयोपिय,टूटौतवाअरुफूटीकठौती ५॥
छांड़िसबैझखतोहिलगीबक, आठहुयामयहीजियठानी
जातहिदैहैंलदायलढाभारि,लैहोंलदाययहीजियजानी॥
पैयेअटारीअटाकहँतेजिन, कोविधिदीनीहैटूटीसीछानी
जोपैदरिद्रललाटलिख्योतोपै,काहूकेमेटेनजातअजानी
चंद्रकोमित्रचकोरसदातेहि,भोजनआगेविरंचिनेदीनों।
पंकजको हितूयौसपतीहिम,जारततौहियहीप्रणलीनों॥
कर्मबलीसुनरीअबलानित, संगरहै सबके पुर तीनों।
लक्ष्मीनाथसखाजिनकेतिनके,घरवासदरिद्रनेकीनों७

पूरण पैजकरीप्रह्लादकी, खंभसोंबांधिपिताजेहिबेरे ।
द्रौपदीध्यानधरचोजबहीतब,ही पटकोटिलगेचहुँहेरे ॥
ग्राहतेछूटिगजेन्द्रगयोप्रिय, हैहरिकोनिशचैजियमेरे ।
ऐसे दरिद्र हजारहरैंवे,कृपानिधिलोचनकोरकेफेरे॥८॥
चक्रितचौंकिरहेचकसेतहां, भूलेसे भूप अनेक गनाऊं ।
देवगंधर्व औ किन्नर यक्षसे,सांझलोंदेखेखडे जेहिठाऊं॥
तेदरबारविलोक्योंनहींअब,तोहिकहाकहिकैसमझाऊं।
रोकिहैंलोकनकेसुखियातहां,हौंदुखियाकिमिपैठनपाऊं
भूलेसेभूपअनेकखड़ेरहैं,ठाड़े छकैं तिमि चक्रवै भारी ।
देव गंधर्व औ किन्नरयक्षहि,रोकेजलोकनकेअधिकारी।
अंतरयामीवेआपहिजानिहैं, मानुयहीसिखआजहमारी
द्वारकानाथकेआगेगयेसब,तेपहिलेसुधिलैहैंतुम्हारी १०
दीनदयालको ऐसोहीद्वारहै,दीननकीसुधि लेतसदाई ।
द्रौपदीते गजते प्रह्लादते,जानिपरी नविलंब लगाई ॥
याहीतेभावतमोमनदीनता,जोनिबहैनिबहीजस आई ।
तौव्रजराजसोंप्रीतिनहींकेहि,काजसुरेशहुकीठकुराई ११

घनाक्षरी ।

फाटे पट टूटी छानि खायो भीख मांगि आनि, विना गये विमुख रहत देवपित्रई । वे हैं दीनबंधु दु-

खी देखके दयालु ह्वै हैं, दैहैं कछु भलोसो हौं जानत अगत्रई ॥ द्वारकालों जात पिय केतौ अलसात तुम, काहेको लजात भई कौनसी विचित्रई । जोपै सब जन्म ये दरिद्रही सतायो तोपै, कौनकाज आयहै कृपानिधिकी मित्रई ॥ १२ ॥

दामहीसों मान औ बड़ाई यश दामहीसों, दामहीसों दैबो लैबो दामहीसों काम है । दामहीसों तीर्थ ब्रत नेम धर्म दामहीसों, दामहीसों देवपूजा दामहीसों नाम है ॥ दामहीको जगमें फिरत कवि पंडितहू, जापै नाहिं दाम ताको सूखिजात चाम है । राजा और राव पातशाहनको कौन गिने, मेरे जान बीसबिसें दामहीमें राम है ॥ १३ ॥

पिता निज पुत्र त्यागै भाई नहीं साथ लागै, नारी मुख देखि भागै पूछत न बात है । चाचा चवाव करे मा बहनसे नित्त लड़े, भोजन रिसाय धरे कूकर ज्यों खात है ॥ लोग कहें क्रूर भये भाई सब दूरि भये, वृथा जग जन्म जात पाछे पछ्तात है। सास ससु दैया कोऊ लेत न वलैया भैया, आजके जमानेमें रुपैया करामात है ॥ १४ ॥

तैंतो कही नीकी सुन बात हितहीकी यह,रीति मि-
त्रईकी नित प्रीति सरसाइये । चित्तके मिलेते वित्त
चाहिये परसपर, मित्रके जो जेंइ ये तौ आपहू जिमा-
इये ॥ वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप, तहां
यह रूप जाय कहा सकुचाइये । दुख सुख सबदिन
काटेही बनेगो भूल, विपति परेपै द्वार मित्रके न
जाइये ॥ १८ ॥

विप्रके भगत हरि जगत विदित बंधु, लेत सबहीकी
सुधि ऐसे महादानि हैं ॥ पढ़े एक चटसाल कही तुम
कैयो बार, लोचन अपार वे तुम्हें न पहिचानिहैं ॥
एक दीनबंधु कृपासिंधु फेर गुरुबंधु, तुम सम कौन
दीन जाको जिय जानिहैं । नाम लेत चौगुनी गयेते
द्वार सौगुनी, देखत सहस्रगुनी पिरीति प्रभु
मानिहैं ॥ १६ ॥

सवैया ।

प्रीतिमें चूकनहींउनकेउठि,सोमिलिहैंहरिकंठलगायके ।
द्वार गयेकछुदेहैंभलो,हमैंद्वारकानाथजीहैंसबलायके ॥
याविधिबीतगयेपनद्वैअब,तौपहुंचौविरधापनआयके ।
जीवनकेतोहैजाकेलियेहरिसों,अबहोहुँकनावड़ोजायके

जेहिहोउकनावड़ोबारहजारलों,जोहितदीनदयालसोंपाइये
तीनहुँ लोककेठाकुरहैं तिन,केदरबारगये न लजाइये।
मेरोकहोजियमेंधरिकैपिय,और न भूलिप्रसंगचलाइये।
औरकेद्वारसेकामकहापिय,द्वारकानाथकेद्वार सिधाइये
आयेहोआजकैकालिअबैतुम,जाओगेपसौंकैनसौंअबारे।
पत्र लिखूंसोइ मित्रहमारे,कहांउतरोगे जोजागतुम्हारे॥
मैंतो रहूँ दरबारके भीतर,आवतहों कभी सांझसबारे।
मूरखमित्रको प्रीति सुनोजहां,कागउड़ेंसोईजाग हमारे।

घनाक्षरी।

श्यामसों मिताई मैंतो जबते जताई यासों,तबहीते मेरे पाछे काढ़बेको परी है। याके हँसि बोले हों न जानतहौं और दुख, कालिकानिकाई राम वही क्रोध भरी है॥ सेवा छांड़िदई आगे लाठिया लै ठाड़ी भई, हरिपै चलायबेकी कथा कंठ करी है। बैठत उठत न्हात खात सोंपै आधीरात,ऐसी सावधान ज्यों घड़ावलकी घरी है॥ २० ॥

सवैया।

द्वारका जाहु जू द्वारकाजाहुजू, आठहुयामयहीझककतेरे
जौ न कहो करिये तो बड़ोदुख, पैहोंकहांअपनीगतिहेरे

द्वार खड़ेप्रभुके छड़िया तहँ,भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी तौदेखुविचारिके,भेटकोचारि न चामर मेरे

दोहा ।

यह सुनिकै तब ब्राह्मणी, गई परोसिन पास ॥
सेर पाव चामर लिये, आई सहित हुलास ॥ ९ ॥
सिद्धि करौ गणपति सुमिरि, बांधि दुपटियाखूट॥
चलेजाहु तेहि मारगहि, मांगत बाली बूट ॥ १० ॥

घनाक्षरी ।

चल्यो है सुदामा कहै बात घर रामजीसों, मांगिहों न दाम तोसों साँचीही कहतहों । जोपै मोहि आपुनते बूझिहै वैकुंठनाथ, तब हौं कहूँगौ प्रभु खुशीही रहतहों ॥ अबहूँ विचार दुखी सुखी दिन टार कित, पठवै मुरारिजीपै आपदा कहतहों । विना दाम धाम फिर ऐहों भेट श्यामजीसों, तेरे कहे रामकी सौं लाठिया गहतहों ॥ २२ ॥

काँपे सुरपति नरपति काँपे ठौर ठौर,आगम जनायो द्विजवंत जिय वामाके । छांड़दई आश कयलाशहूकी महाईश, सोच ब्रह्मादिकहू सकल सुखधामाके ॥ डरपे कुबेर डगमगित सुमेरु भये, जानि डर कलीराम

गुणकर नामाके ।एते हहराने घहराने हरि हितू जानि, द्वारकाकी ओर पग धरत सुदामाके ॥ २३ ॥

दोहा ।

तीन दिवस चलि विप्रके, दूखि उठे तब पाय ॥
एक ठौर सोये कहूँ, घास पयार बिछाय ॥ ११ ॥
अंतरजामी आप हरि, जानि भक्तकी पीर ॥
सोवत लै ठाड़ो कियो,नदी गोमती तीर ॥ १२ ॥
प्रात गोमतीदरशते, अति प्रसन्न भय चित्त ॥
विप्र तहां सुस्नान करि,कीनो नित्यनिमित्त ॥ १३ ॥
भाल तिलक घिसिदैलियो, गही सुमरनी हाथ ॥
दिव्य देखि द्वारावती,भयो अनाथ सनाथ ॥ १४ ॥

घनाक्षरी ।

मंगल संगीत धामधाममें पुनीत जहां, नाचें वारवधू देवनारि अनुहारिका । घंटनके नाद कहूँ वाजनके छाय रहे, कहूँ कीर केकी पढें सुक और सारिका ॥ रतनन ठाट हाट बाटनमें देखियत, घूमें गज अश्व रथ पत्ति नर नारिका । दशो दिशा भीर द्विज धरत न धीर मन, उठतहै पीर लखि बलबीर द्वारिका ॥ २४ ॥

दृष्टि चकचोंधिगयी देखत सुवर्णमयी, एकते सरस एक द्वारकाके भौन हैं। पूछे बिन कोऊ काहूसे न करै बात जहां, देवतासे बैठे सब साधिसाधि मौन हैं ॥ देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय, कृपा करि कहो कहां कीने विप्र गौन हैं। धीरज अधीरके हरण परपीरके, बताओ बलवीरके महल यहां कौन हैं ॥ २५ ॥

दोहा ।

मो मरनेको नेम है,मरूं तो हरिके द्वार ॥
कबहूं तो हरि पूछिहैं, कौन मरो दरवार ॥ १५ ॥
दीन जानि काहू पुरुप, कर गहिलीनों आय ॥
दीन द्वार ठाड़ो कियो, दीननाथके जाय ॥ १६ ॥
द्वारपाल द्विज जानिके, कीनो दंडप्रनाम ॥
विप्र कृपा करि भाषिये, सकल आपनो नाम ॥१७॥
नाम सुदामा कृष्ण हम, पढे एकही साथ ॥
कुल पांडे यदुनाथ सुनि, सकल जानिहैं गाथ ॥१८॥
द्वारपाल चलि तहँ गयो, जहाँ कृष्ण यदुराय ॥
हाथ जोरि ठाड़ो भयो, बोल्यो शीश नवाय ॥१९॥

सवैया ।

शीशपगानझँगातनमेंप्रभु,जानेंकोआहिबसैकिहिग्रामा
धोतीफटीसीफटीदुपटीअरु,पाँयउपानहकीनहिंसामा॥
द्वारखड़ोद्विजदुर्बलदेखि, रह्योचकिसोवसुधाअभिरामा।
दीनदयालुकोपूछतनाम,बतावतआपनोनामसुदामा ॥

घनाक्षरी ।

बोल्यो द्वारपालक सुदामा नाम पांडे सुनि,का-
सकाज छोड़े सब जीकी गति जाने को । द्वारकाके
नाथ हाथ जोरि गहे पाँय जब, भेंट लिपटायकरि
ऐसे दुखसानेको ॥ नैन दोऊ जल भरि पूछत कुशल
हरि,विप्र बोल्यो विपतामें मोहि पहिचाने को । जैसी
तुम कीनी तैसी करै को कृपाके सिंधु, ऐसी प्रीति
दीनबंधु दीननसे माने को ॥ २७ ॥

सवैया ।

लोचन पूरिरहे जलसों प्रभु,दूरते देखतही दुख मेट्यो ।
सोच भयोसुरनायकके,कल्पद्रुमकेहियमांझखखेट्यो॥
काँपि कुबेर हिये सरसे पग,जात सुमेरहु रंकसेभेट्यो।
राज भयोतबहीजबहीभरि,अंगरमापतिसोंद्विजभेट्यो॥

दोहा ।

भेट भलीविधि विप्रसों,कर गहि त्रिभुवनराय ॥
अंतःपुरको लैगये, जहाँ न दूसर जाय ॥ २० ॥
मणिमंडित चौकी कनक, ता ऊपर बैठाय ॥
पानी धरचो परातमें, पग धोवनको लाय ॥ २१ ॥
राजरमणि सोलह सहस, सब सेवकन समीत ॥
आठों पटरानी भईं, चकित चितै ये प्रीत ॥ २२ ॥
जिनके चरणनको सलिल, हरत जगतसंताप ॥
पांय सुदामा विप्रके, धोवतहैं हरि आप ॥ २३ ॥

सवैया ।

ऐसे विहालबिवायनसोंभये,कंटकजाललगेपुनिजोये ।
हाय महादुखपायोसखातुम,आयेइतैनकितैदिनखोये॥
देखिसुदामाकीदीनदशाकरु,णाकरिकेकरुणानिधिरोये
पानीपरातकोहाथछुओनहिं,नैननकेजलसोंपगधोये२९

दोहा ।

धोय चरण पट प्रीतिसों, पोंछतहैं यदुराय ॥
सतिभामासे यह कही, करो रसोई जाय ॥ २४ ॥
गुरुसेवा दुर्लभ महा, चित दै करै जो कोय ॥
जो मनमें इच्छा करे, सो सब पूरण होय ॥ २५ ॥

पवन झकोरत तीव्रसों, शीत भयो अधिकाय ॥
काठभार मस्तक धर्यो,हमको लियो छिपाय ॥२६॥
बहुत भाँति रक्षा करी, आप रहे दुखमाहिं ॥
तुम्हरी प्रीति अनंत है, उऋण होहुँ मैं नाहिं ॥२७ ॥
तंदुल त्रिय दीने हुते, आगे धरियो जाय ॥
देखि राजसंपति विभव,दै नहिं सकत लजाय ॥२८॥
अंतरयामी आप हरि, जानि भक्तकी रीति ॥
सुहृद सुदामा विप्रसों, प्रगट जनाई प्रीति ॥ २९ ॥
कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ॥
चाँपि गाठरी काँखमें,रहे कहो किहि हेत ॥ ३० ॥

सवैया ।

आगे चनागुरुमातदियेते, लियेतुमचाबिहमैंनाहिं दीने ।
श्यामकहीमुसकायसुदामासों,चोरिकीबानिमेंहौजो प्रवीने
गाठरी काँखमें चापि रहे तुम,खोलतनाहिंसुधारसभीने।
पाछिलीबानिअजौंनतजीतुम,वैसेहीभाभीकेतंदुल कीने

दोहा ।

खोलत सकुचत गाठरी, चितवत हरिकी ओर ॥
जीरण पट फट छुटिपरे, बिखरिगये तेहि ठोर॥३१॥

सवैया ।

तंदुल माँगत मोहन विप्र,सकोचते देतनहींअभिलाखे।
हैनाहिंपासकछूकहिकेतिहि,गोपिचलीविधिकाँखमेंराखे
सोलखिदीनदयालुतहाँयह,चोरीकरीतुमयोंहँसिभाखे।
खोलकेपोटअछोटमुठीगिरि,धारणचामरचावसों चाखे

दोहा ।

एक मुठी हरि भरिलई,लीनी मुखमें डारि ॥
चबत चबाउ करनलगे,चतुरानन त्रिपुरारि ॥ ३२ ॥

सवैया ।

कंपिउठीकमलामनसोचत,मोसोंकहाहरिकोमनओंको।
ऋद्धिकँपीनवनिद्धिकँपीसब,सिद्धिकँपींब्रह्मनायकधोंको
शोकभयोसुरनायकके जब,दूसरीबारलयो भरि झोंको ।
मेरुडरैवकशैजिनमोहि,कुबेरचबावतचामरचोंको३२॥

घनाक्षरी ।

फूल हियरामें कानकानन परी है टेर,भेटत सुदामै श्याम बनै न अघातहीं । कहैं नरोत्तमऋद्धिसिद्धिनमें शोर भयो ठाढ़ी थरहरे और सोचें कमला तहीं ॥ नागलोक लोक सब ओकओक शोकथोक, ठाढ़े थरहरैं मुखसे कहै न बातहीं । हालो परयो लोक-

नमें लालो पर्यो चक्किनमें, चालो पर्यो लोगनमें चामर चबातहीं ॥ ३३ ॥

सवैया ।

भौन भरेपकवानमिठाइन,लोगकहैंनिधिहैं सुखमाके ।
साँझसबेरेपिताअभिलाषत,दाखनचाखतसिंधुरमाके ।
ब्राह्मणएककोऊदुखियासेर,पावकचामरलायो समाके ।
प्रीतिकीरीतिकहाकहिये,तिहिबैठेचबावतकंतरमाके३४

दोहा ।

मुठी दूसरी भरतही, रुक्मिनि पकरी बाँह ॥
ऐसी तुम्हैं कहा भई, संपतिकी अनचाह ॥ ३५ ॥
कही रुक्मिनी कानमें, यह धौं कौन मिलाप ॥
करत सुदामहि आपसों, होत सुदामा आप ॥ ३६ ॥

सवैया ।

हाथ गह्यो प्रभुकोकमलाकहै,नाथकहातुमनेचित धारी।
तंदुल खाय मुठी दुइदीन,कियो तुमने दुइलोकविहारी॥
खायमुठीतिसरीअबनाथ,कहानिजवासकीआसबिसारी।
रंकहि आपसमानकियोतुम,चाहत,आपहिहोनभिखारी

ग्योंरसमेंविषवामकियोअबै,औरनखानदियोइकफंका।
वेप्रहिलोकतृतीयकेदेत,करीतुमक्योंअपने मनशंका ॥
भामिनिमोहिजिमायभलीविधि, कौनरह्योजगमेंनररंका
ठोगकहैंहरिमित्रदुखीहम,सेनसह्योयहजातकलंका ३६
भार्गव हैतुमजीतधरादई,विप्रनकोअतिही सुखमानो ।
वेप्रनकाढिदियोतुमकोनिशि,तादिनकोबिसरोखिसियानो
सेंधुहटायकरीतुमठौर,द्विजन्मसुभावभलीविधिजानो।
सोतुमदेतद्विजैसबलोक, कियोतुमनेअवकौनठिकानो३७
सामिनिदेहुँ द्विजैसबलोक,तजौहठमोरयहीमन भाई ।
लोकचतुर्दशकीसुखसंपति, लागतविप्रविनादुखदाई ॥
जायबसौंउनकेगृहमेंकारि, हौं द्विजदंपतिकी सेवकाई ।
तोमनमाहिंरुचैनरुचैसो,रुचैहमकोयहिठौरसुहाई३८॥
एकनकानिकरेद्विजपैनृग,से नृपको नरकौ करिडारो ।
शापदियोपुनिशंकरकोअब,लोंमुखतेशिवभागबिसारो
वेप्रनफेरविजैजयकोतुम, देखतघोरकुयोनिमें डारो ।
सोतुमजानिसबैगुणदोष,करौफिरहूं द्विजकोपतियारो३९

दोहा ।

यह कौतुक लखिके समय, कही सेवकन आय ॥
भई रसोई सिद्ध प्रभु, भोजन करिये जाय ॥४०॥

विप्रसहित सुस्नान करि, धोती पहिरि बनाय ॥
संध्या करि मध्यानकी, चौका बैठे जाय ॥ २६ ॥

घनाक्षरी ।

रूपेके रुचिर थार पायस सहित शोभा,सब जीत-
लीनी शोभा शरदके चंदकी । दूसरे परोस्यो भात
सान्यो है सुरभिघृत, फूलेफूले फुलके प्रफुल्लि द्युति
मंदकी ॥ पापर मुँगौरी बरा बेसन अनेक भाँति,
देवता विलोकि शोभा भोजन आनंदकी । या विधि
सुदामाजीको अच्छके जिमाय. फिर, पाछैके पछा-
वरि परोसी आनि कंदकी ॥ ४० ॥

दोहा ।

करि अचमन मुख धोयके, पान खाय सुख पाय ॥
पौढे पलँगापै तबै, कृष्ण पलोटे पाय ॥ २७ ॥
सात दिवस यहि विधि रहे, दिनदिन आदर भाव ॥
चित्त चल्यो घर चलनको, ताको सुनो बनाव॥२८॥

घनाक्षरी ।

कह्यो विश्वकरमाको हरि तुम जायकरि, नगर
सुदामाजीको रचो वेग अबही । रतनजटित धाम

सुवरणमयी सब, कोट औ बजार बाग फूलनके तबही ॥ कल्पवृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे, कीजिये अपार दास दासी देवछबही । इंद्र औ कुबेर आदि देववधू अपसरा, गंधरब गुणी जहाँ ठाड़े रहैं सबही ४१ ॥

दोहा ।

नितनित सब द्वारावंती, दिखलाई प्रभु आप ॥
भरे भाग अनुराग सब, जहाँ न व्यापहि ताप ॥ ३९ ॥
परमकृपा दिनदिन करी, कृपानाथ यदुराय ॥
मित्रभावना विस्तरी, दूनों आदर भाय ॥ ४० ॥

सवैया ।

दाहिने वेदपढ़ै चतुरानन, सामुहे ध्यान महेशधरचो है ।
वायेंदोऊकरजोरसुसेवक, देवनसाथसुरेश खड्यो है ॥
रतन बीच अनेक लिये धन, पायनआयकुबेरपरचो है ।
देखिविभौअपनोसपनोप्रभु, रोवहब्राह्मणचौंकिपरचो है ४२

दोहा ।

वस्त्रादिक बहु भाँतिके, पहिराये सुखदाय ॥
करि प्रणाम कर जोरिके, बोले त्रिभुवनराय ॥ ४१ ॥

सवैया ।

धन्यकहाकहियेद्विजजीतुम,सोंजगकौनउदारप्रवीनो ।
पाछिलिप्रीतिनिबाहीभलीमन,दोषनिवारिकेरोषनकीनो
मैं द्विजकेचरणोदकहेतु,अजन्मकहायकेजन्मसुलीनो ।
आवनकैनिजपावनसोंयहाँ,मोसोअपावनपावनकीनो४३

दोहा ।

देनो हुतो सो देचुके, विप्र न जानी गाथ ॥
चलती बेर गुपालजी, कछू न दीनो हाथ ॥ ४२ ॥
गोपुरलों पहुँचायके, फिरे सकल दरबार ॥
मित्र वियोगी कृष्णके, नेत्र चली जलधार ॥ ४३ ॥
प्रीति आरसी विमल है, सबकोइ सेवै जान ॥
कपट मोरचा लगतही, होत दरशकी हान ॥ ४४ ॥
इतनो मम आदर कियो, दियो न कछु मुहि श्याम॥
या प्रकार सोचत चल्यो, विप्र आपने धाम ॥ ४५ ॥
बहु पुलकनि बहु उठि मिलन, बहु आदरकी पाँति॥
यह पठवनि गोपालकी, कछू न जानी जाति ॥४६॥
घरघरमें ओढत फिरे, तनक दहीके काज ॥
कहा भयो जो अब भयो, हरिको राजसमाज ॥४७॥

हौं आवत नाहीं हुतौ, बामहिं पठयो ठेल ॥
अब कहिहौं समझायके, बहु धन धरौ सकेल ॥४८॥
बालापनके मित्र हैं, कहा देउँ मैं शाप ॥
जैसो हरि हमको दियो, तैसो पइयो आप ॥ ४९ ॥
त्रयगुणधारी छगुणसौं, त्रिगुणामध्ये जाय ॥
लायो चपल चतुर्गुणी, आठों गुणनि गमाय ॥५०॥
और कहा कहिये जहाँ, कंचनहीके धाम ॥
निपट कठिन हरिको हियो, मोको दियो न दाम५१॥
बहु भंडार रतनभरे, कौन करे अब दोष ॥
सार आपने भागको, किसपर कीजे रोष ॥ ५२ ॥
इमि सोचतसोचत झखत, आये निजपुरतीर ॥
दृष्टि परी इकबारही, हय गयंदकी भीर ॥ ५३ ॥
हरिदर्शनते दूरि दुख, भयो गयो निजदेश ॥
गौतम ऋषिको नाम लै, कीनों नगर प्रवेश ॥५४ ॥

घनाक्षरी ।

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिनमें, वेई सुरवर हँस बोलन हिलनको । वेई हेमहिरन दिशान दुहलीजन

मैं, वेई गजराज हय गरज गिलनको ॥ द्वारद्वारछड़ी लिये द्वार पौरियाजो खड़े, बोलत मरोर बरजोर ज्यों झिलनको । द्वारकाते चल्यो भूलि द्वारकाही आयो नाथ,मांगिहैं न मोपै चार चामर मिलनको ॥ ४४ ॥

सवैया ।

वैसेई राजसमाजबने गज,वाजि घने मनमें भ्रमछायो । कीधौंपरयोकहुँभारवाभूलिकैं, फेरकेमैंअबद्वारकैआयो भौनविलोकिबेकोमनलोचत, सोचनहींसबगावँमझायो पूछतपांडेकथासबसोंफिर,झोंपड़ीकोकहुँखोजनपायो॥

दोहा ।

जितजित ब्राह्मण जातहै,तिततितके नर नारि ॥
पांय गहतहैं विप्रके, बहु पूछत शुभकारि ॥५५॥
गये हुते द्वारावती, मिलने यदुकुलराय ॥
दीनो कह प्रभुने तुम्हें, हमको देहु दिखाय ॥५६॥

कुंडलिया ।

देवनगर के यक्षपुर, हौं भटको कित आय ॥
नाम कहा यह नगरको, सो न कहौ समझाय ॥
सो न कहौ समझाय, नगरवासी तुम कैसे ॥
पथिक जहां संभ्रमहिं तहांके लोग अनैसे ॥

लोग अनैसे नाहिं लखौं द्विजदेव शोधिकरि ॥
कृपा करी हरिदेव दियो है देवनगर करि ॥ ८७ ॥

दोहा ।

विप्र सुदामाको नगर, है यह चतुर सुजान ॥
करी कृपा यह कृष्णने, दीनो द्विजको दान॥८८॥
कहा सुदामैं हँसतहो,हैकरि परम प्रवीन ॥
कुटी दिखावहु मोय वह,जहां ब्राह्मणी दीन॥८९॥
देखै कहा गुपालकी,गुत दशा द्विज दीन ॥
जौलों प्रगट भयो नहीं,तौलों रह्यो मलीन॥९०॥

घनाक्षरी ।

जगरमगर ज्योति छायरही चहुँदिशि, अगरवगर हाथी घोड़नको शोर है। चौपड़को बन्यो है बजार पुनि सोनेनके, महल दुकानकी कतार चहुँओर है ॥ भीरभाड़ धकापेल चहुँदिशि देखियत, द्वारकाते दूनों यहाँ प्यादेनको जोर है । रहिवेको ठम है न काहूसों पिछान मेरी,विन जाने चले कोऊ हाड़ मेरे तोरहै९१

फूटी एक थारी बिन टोंटनीकी झारी हुती, बांसकी पिटारी औ पथारी हुती टाटकी । बड़े बिन छुरो औ कमंडलु सो टेकु बोहो, टूटो हतो चौपापारी टूटी एक खाटकी ॥ पथरोटा काठको कठौता कहूं

दीसै नाहिं, पीतरको लोटोहो कटोरो है न बाटकी । कामरी फटीसी हुती डोड़नकी माला तांक, गोमती की माटीकी न सुध कहूँ माटकी ॥ ४७ ॥

चौतरा उखारि काऊ चामीकर धाम कियो, छानि तौ उपारिडारी छाई चित्रसारी जू । जो हौं होतो घर तोपै काहेको उठनदेतो, होनहार ऐसे खोटी दशाई हमारी जू ॥ हौं तो होनकाहल हलाहल दिखाय कर, जो हल उठायदेहु हाय सुखगारी जू । लोभी केशवारी दुख भूखकी दलनहारे, गैया वनवारी काहू सोऊ मारडारी जू ॥ ४८ ॥

छाछको पिवैया गैया घेरत हो इन घर, छाछहीके काजे एक माट फोरडारयो है । खयबेके काजें पूजा इंद्रकी मिटायदई, कोप्यो जब इंद्र गिरी सात दिन धारयो है ॥ विदुरके घर जाय छीलका चवायो साग, द्रौपदीको खायो भीलनी दे फल टारयो है द्रौपदीको चीर दये गोपिनके छीनलये आदते छुटाये गज रंगभूमि मारयो है ॥ ४९ ॥

दोहा ।

द्वारपालके करनमें, कनकदंड कषार ॥

जाय दिखायो विप्रको, यह है महल तुम्हार ॥ ६१ ॥
कह्यो अली सुनतहि चली, अली बहुचलीं संग ॥
किंकिनि नूपुर दुंदुभी, मनहु कामः चतुरंग ॥ ६२ ॥
कह्यो ब्राह्मणी आयकै, चलौ कंत निजगेह ॥
श्रीयदुपति तिहुँलोकमें, प्रगट कियो प्रियनेह ॥ ६३ ॥
हमैं कंत तुम जनि कहौ, बोलो वचन सम्हारि ॥
यहां कुटी मेरीहुती, दीन बापुरी नारि ॥ ६४ ॥
मैं तो नारि तिहारि हूँ, सुधि समारिये कंत ॥
प्रभुता सुंदरत दई, अद्भुत श्रीभगवंत ॥ ६५ ॥

घनाक्षरी ।

टूटीसी मढ़ैया मेरी पड़ी हती याही ठौर, तामें परचो दुख कटौं कहाँ हेमधामरी । भूषणजटित तुम सजी प्रतिअंग बहु, सखी सोहैं संग वह क्षुधाहूते छामरी ॥ तू तो पाटंबर सुपहिरे किनारीदार, सारी जरतारी वह ओढे कारी कामरी । मेरी पँडियाइन न तेरी अनुहार पुनी, विपतिसताई उन पाई कहाँ पामरी ॥ ॥ ५ ॥ ठाढ़ी पडियाइन कहत मंजु भाषनसों, आओ पति पाय परों तिहारो हौं घर है ।

आये चलि दूरि श्रम भयो अतिभूरि दुख, दारिद भे दूरि यों हँसत गह्यो कर है ॥ रिद्धि सिद्धि दासी करिदीनी अविनाशी कृष्ण, पूरण प्रकाशी कामधेनु कोटि वर है । चलो पति भूलो मति तुम्हैं दीनी यदु-पति, संपति सुलीजिये समेत सुरतरु है ॥ ६१ ॥

दोहा ।

अन्हवायो तुरतहि उबटि, शुचि सुगंधसों देह ॥
पंथ चलेको सकल श्रम, मिटिगो सब संदेह॥६६॥
पूजे अतिहि सनेहसों, सिंहासन बैठाय ॥
शुचि सुगंध अंबर रचे, वर भूषण पहिराय॥ ६७ ॥
शीतल जल अचवायके, पानदान धरि पान ॥
धरचो आय आगे सुलभ, छबि रविप्रभासमान६८॥
करहिं चमर चहुँओरते, रंभादिक सब नारि ॥
पतिव्रता अतिप्रेमसों, ठाढ़ी करैं बयारि ॥ ६९ ॥
श्वेत छत्रकी छांहमें, राजत चक्रसमान ॥
वाहन गजरथतुरंगवर, अरु अनेकशुभथान॥७०॥
कामधेनु सुर तरु सहित, दीनी श्रीबलवीर ॥
जानिपीर गुरुबंधुहरि, हरलीनी सबपीर ॥ ७१ ॥

विविध भाँति सेवा दई, सुधा पियायो वाम ॥
अति विनती मृदु वचन कहि, अब पूरो मनकाम ७२
लै आयसु तिय न्हायकरि, सुरुचि सुगंध लगाय॥
धोती अतिरचना रची, पहरि लगी हरपाय॥७३
विविध रसोई विरचिके, प्रेमसहित सुख पाय॥
षटरस चार प्रकारके, भोजन रचे बनाय ॥ ७४॥
चंदन चौका लीपिके, दासी परम सुजान ॥
मणिमंडित चौकी कनक, धरी गंगजल पान ७५॥
जल भोजन तापर धरचो, शुचि सुगंध जल पूरि ॥
रक्षा दानसमेतसो, जल प्रकाश भरपूरि ॥७६ ॥
रतनजटित पीढा कनक, धरचो जु बैठन काम ॥
हरपित मणिचौकी धरी, कछुक दूरि छविधाम॥७७
चौकी लई मंगायके, पग धोवनको पाथ ॥
मणिपादुका विचित्र अति, धरी सलिलके साथ ७८
चलिये भोजन करनको, कहि दासी मृदुभाखि॥
द्विजकृष्णलालानंदकहि, भनि भनिकहिहरि साखि७९॥
वसन उतारि जायके, धोवत चरण सरोज ॥
चौकीपर छवि देतयों, जिमि तनुधर मनोज॥८०॥

पहिरि पादुका विप्र जब, पीढ़ा बैठे जाय ॥
रतितेअतिछविआगरी,पतिसोंहँसिमुसिक्याय ८१
विविध भाँति भोजन धरे, व्यंजन चार प्रकार ॥
जोरी पछिओरी सकल, प्रथम कहै नहिं सार८२॥
हरिहि समर्प्यो कंत जब,कह्यो मंद हँसि बाम ॥
करि घंटाको नाद बहु, हरि समर्पि लै नाम ॥ ८३ ॥
अग्नि जिमाय विधानसों, वैश्वदेव करि नेम ॥
बलिकाढीजेंवनलगे,करत पवन अति प्रेम ॥८४॥
बारबार पूछत यही, लीजै जो रुचि होय ॥
कृष्णकृपा पूरण सकल,अबहिं परोसों सोय८५॥
जेयँचुके अचवनलगे, करनहेत विश्राम ॥
रतनजटित पीढा कनक,सुन्यो सो रैशसदास ८६॥
ललित बिछौना विरचिके,पायन कसिके डोर ॥
राखे वसन सुसेवकन,सुरुचि अतरसों बोर॥८७॥
पानदान तापर धर्यो, वर बीरी छबिधाम ॥
चरण धोय पौंढनलगे,करनहेत विश्राम ॥ ८८ ॥
कोइ चमर कोइ बीजना, कोउ सेवत पद चार ॥
अतिविचित्र भूषण सजे,अरुणजसोतिनहार ८९॥

करि सिंगार पियपै गई, पान खात मुसकाति ॥
कह्यो कथा श्रीकृष्णकी, तिनदीनी केहिभांति॥१०
कही कथा सब आदिते, राह चलेकी पीर ॥
सोवत जिमि ठाड़ो कियो, नदी गोमती तीर॥११
गये द्वार जेहि भाँतिसों, सो सब कही बखान ॥
कहिन जायमुखसहससों, कृष्णमिलेजिमिआन१२
कर गहि भीतर लैगये, जहां सकल रनिवास ॥
पग धोवनको आपहरि, बैठे रमानिवास ॥ १३ ॥
देखि चरण मेरे चलो, प्रभु नयननसों वारि ॥
पोंछत हरि निजवसनते, परदुखभंजन टारि॥१४॥
बहुरि कही श्रीकृष्णजी, तंदुल लीने आप ॥
भेटे हृदय लगायके, टारे भ्रम संताप ॥ १५ ॥
बहुरि करी जिवनार जिमि, कीनीबहुसबभाँति ॥
बरन कहाँलों हों कहों, सब व्यंजनकी पाँति ॥१६॥
दिनप्रति अधिक सनेहसों, स्वप्न दिखाये मोहि ॥
सो देख्यों प्रत्यक्षही, स्वप्न न निष्फल होहि ॥१७॥
बरनि कथा इहि विधि सकल, कहों आपनी सोइ॥
कृष्ण कृपानिधिभक्तहित, चिदानंदसंदोह ॥ १८ ॥

घनाक्षरी ।

साजे सब साज सुसमाज गजराज वाजि, रुचि
रथन गज पालकी बहल हैं । रतनजटित सुसिंहासन
बैठारिबेको, चौकीप्रति कामधेनु कल्पद्रुम हल हैं ।
देखिदेखि भूषण वसन दासी दासनके,सुख पाकशास
नके लागत सहल हैं । संपति सुदामाको जहाँलों द
आज प्रभु, कहाँलों गनाऊं जहाँ कंचनमहल हैं॥९२।
वाजिशाला गजशाला दीने गजराज खड़े,व्रजरा
महाराज राजन समाजकोमाणिक विविध कीने मंदि
कनक सोहैं,मणिजड़े मन मोहैं सबै देवतानके॥ ही
लाल ललित झरोखनमें झलझल, झिलमिल झल
जड़े हैं मुकतानके । जानी नहीं विपति सुदामाजीक
कहां गई,देखिये विधान यदुपतिजीके दानके॥९३
कहूँ सपनेहू सुवरणके महल होते, पौरिमान मंड
लकलश कब धरते ।रतनजटित वर सिंहासन बैठि
बेको, खड़े हैं खवास मोपै चौंर कव ढरते ॥ देखि
राजसामा निजवामासों सुदामा कहै, कब ये भंडा
मेरे रतनन भरते । जो न पतिव्रता तुम देती उपदे
सोय, ऐसी कृपा द्वारकेश मोपै कब करते ॥ ९४

दोहा ।

उठे पहिरि अंबर रुचिर, सिंहासनपर आय ॥
बैठे प्रभुता देखिके, सुरपति रह्यो लजाय ॥ ९९ ॥

सवैया ।

कैवहटूटीसीछानिहुतीकहँ,कंचनकेसबधामसुहावत
कैपगमेंपनहींनहुतीकहँ,लैगजराजहुठाढेमहावत ॥
संपतिदेखिसुदामाकह्योकब,ऐसेदरिद्रहिंखोदिवहावत
मोसेगरीबनिवाजलियेहरि, तासोंगरीबनिवाजकहावत

दोहा ।

विप्र सुदामा सहित तिय, उमगे परमानंद ॥
नितप्रतिसुमिरण करतहैं,हियधारिकरुणाकंद१००
धन्यधन्य यदुवंशमणि, दीननपै अनुकूल ॥
धन्यसुदामातियसहित,कहिवर्षहिंसुर फूल॥१०१

॥ इति श्रीनरोत्तमदासकृत सुदामाचरित्र संपूर्ण ॥

पुस्तक मिलनेका पता-
खेमराज श्रीकृष्णदास.
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम-प्रेस-बंबई.

GEOGRAPHICAL TERMS

IN HINDI.

परिभाषा भूगोल

दर्जा दोयम के लिये

जिसको
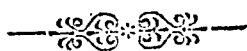
एक तजुर्बेकार उस्ताद ने बनाया

और

पी० सी० द्वादश श्रेणी एण्ड को०,

अलीगढ़ ने

नारायणदास गुप्त के

प्रबन्ध से द्वादश श्रेणी प्रेस, अलीगढ़ में मुद्रित करा के

प्रकाशित किया।

अष्टमावृत्ति १२००० | सन् १८९८ ई० | मूल्य प्रति पुस्तक ॥

* ओ३म् *

परिभाषा।

भूगोल-वह विद्या है जिस से पृथ्वी पर के देशादि का हाल जाना जाता है। यह शब्द (भू+गोल) दो शब्दों से मिल कर बना है। पहिले का अर्थ पृथ्वी और दूसरे का अर्थ गोला है अर्थात् पृथ्वी का गोला अथवा पृथ्वी का वर्णन है।

नोट-पृथ्वी के वर्णन से यह मुराद है कि मनुष्यों को अपने रहने सहने के मुतअल्लिक़ पृथ्वी का सारा हाल मालूम हो जाय।

भूगोल सीखने के तरीके-(१) सब से आसान तरीका देशाटन करना और वस्तुओं को खुद अपनी आँखों से देखना भालना है। (२) जो देशाटन नहीं कर सके वह भूगोल की पुस्तकों को ध्यान से पढ़ने और नक़शों के देखने से भूगोल की विद्या सीख सके हैं।

भूगोल के तीन भाग हैं-(१) राज सम्बन्धी भूगोल, (२) प्राकृतिक भूगोल, (३) गणित सम्बन्धी भूगोल।

राज्य सम्बन्धी भूगोल-वह है जिस से देश की हालत, पैदावार, मनुष्य गणना, व्यापार, खेती और दस्तकारी, इत्यादि का हाल जाना जाता है।

प्राकृतिक भूगोल—में धरातल का स्वाभाविक स्वरूप और पृथ्वी तल व वायु मण्डल की तब्दीलियों का वर्णन होता है।

गणित सम्बन्धी भूगोल—में पृथ्वी को ग्रह मान कर उस के आकार, परिमाण और कई प्रकार की गति और उनके नतीजों का वर्णन किया है।

नक़शा—ज़मीन या ज़मीन के हिस्सों की तस्वीर है जिस पर थल और जल के चिन्ह बड़ी होशियारी और दुरुस्ती से बनाये जाते हैं।

नक़शा और खाके का अन्तर—नक़शा असल चीज़ की तस्वीर है और उस से असल चीज़ की लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई और उस की प्राय: शकल मालूम हो जाती है परन्तु खाके में चीज़ों की ऊंचाई और शकल नहीं मालूम होती। जितनी जगह किसी चीज़ से रुकती है सिर्फ़ उस की शकल मालूम होती है।

पैमाना—जिस हिसाब से नक़्शे में लम्बाई, चौड़ाई घटाई जाती है उसे पैमाना कहते हैं।

नक़शे का इस्तैमाल और लाभ ।

नक्शे को दीवार या मैप स्टेण्ड (नक़शा टांगने की तिपाई) पर टांग कर प्रथम दिशायें मालूम करनी चाहियें, फिर एक नोकदार लकड़ी के द्वारा सीमा देखनी चाहियें । बाद को विस्तार यानी लम्बाई, चौड़ाई डोरे या पैमाने से नाप कर मालूम करनी चाहिये, फिर क़ुदरती चीजें जिन के चिन्ह नक़्शे पर बने हैं, जैसे पहाड़, नदी और उनके वहाव से रुख मालूम करना चाहिये, फिर शहर और क़स्बों के नाम और स्थान जानने चाहियें ।

लाभ—(१) भूगोल जल्द और अच्छे प्रकार से याद होता है । (२) एक स्थान से दूसरे स्थान का पता और उस की दूरी और पैदावार, इत्यादि आसानी से मालूम हो जाती है । (३) देखने, सोचने और ध्यान देने की शक्ति उन्नति पकड़ती है । (४) स्मरण शक्ति और बुद्धि बलवान् होती है ।

दिशाओं के नाम और उन के जानने की रीति ।

मुख्य दिशा चार हैं-(१) उत्तर, (२) दक्खिन, (३) पूर्व और (४) पच्छिम । सिवाय इन के चार और भी हैं जो दो २ दिशाओं के बीच में हैं ।

रीति—(१) सुबह के वक्त निकलते हुए सूर्य की ओर मुँह कर के खड़े हों, तो मुँह के सामने पूर्व होगा, और पीठ की ओर पश्चिम, दाहिने हाथ की ओर दक्षिण और बाएँ हाथ की ओर उत्तर होगा। इसी प्रकार यदि अस्त होते हुए सूर्य की ओर मुँह कर के खड़े हों तो मुँह के सामने पश्चिम, पीठ की ओर पूर्व, दाहिने हाथ की ओर उत्तर और बायें हाथ की ओर दक्षिण होगा।

(२) रात के समय दिशा जानने की रीति-ध्रुव तारे से। यह तारा रात को हमेशा उत्तर की ओर रहता है। इस की ओर मुँह कर के खड़े होने से मुँह के सामने उत्तर होगा, पीठ की ओर दक्षिण, दाहिने हाथ की ओर पूर्व और बायें हाथ की ओर पश्चिम होगा।

(३) हर समय और हर स्थान पर दिशा जानने की रीति—क़ुतुबनुमा से। यह एक छोटी सी डिबिया होती है। इस को चौरस स्थान में रखने से इस की सुइयां हमेशा उत्तर व दक्षिण को रहती हैं फिर लिखी हुई रीति से चारों दिशायें जान सकते हैं।

नक़शे में दिशा जानने की रीति यह है कि अगर तुम्हारे सामने नक़शा सीधा लटका हो तो सिर की ओर उत्तर, पैर की ओर दक्षिण, दाहिने हाथ की ओर पूर्व और बायें हाथ की ओर पश्चिम होगा।

पृथ्वी की गति और परिमाण।

पृथ्वी एक गोलाकार ग्रह है जो सूर्य्य के चारों ओर नौ करोड़ बीस लाख मील की दूरी पर घूमती है। इस की शक्ल नारङ्गी की सी है। बड़ी होने के कारण उस का सिरा मालूम नहीं होता, इसी वजह से चपटी मालूम होती है। इसका नक़शा कागज़ की सतह पर ठीक तौर पर नहीं बन सक्ता; इसी सबब से इस का नक़शा दो वृत्तों की सूरत में इस के धरातल का जल और थल प्रकट करने के लिये बनाया जाता है। सम्पूर्ण पृथ्वी तल पर थल का भाग जल के भाग का $\frac{1}{3}$ है, अर्थात् जल थल से तिगुना है।

नोट-पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण दिन रात होते हैं। जो भाग सूर्य्य के सामने आ जाता है वहां दिन और दूसरे भाग में रात होती है।

स्थल के भाग।

(१) घर-उस ठौर को कहते हैं जो कुछ आदमी अपने रहने के लिये बना लेते हैं।

(२) बस्ती-मकानों के समूह को बस्ती कहते हैं।

(३) नगला-कुछ मकानों के उस झुण्ड को कहते हैं जहां कुछ लोग आबाद हों और जो गांव से छोटा हो; जैसे, नगला घांस।

(४) गांव-घरों के उस झुण्ड को कहते हैं जहां कुछ

आबाद हों और जो नगला से बड़ा हो; जैसे, रामनगर।

(५) क़स्बा-आबादी का वह भाग है जो गांव से बड़ा हो; जैसे पटियाली।

(६) परगना—उस घनी आबादी को कहते हैं जिस में बहुत से गांव हों और एक गिर्दावर क़ानूनगोय के आधीन हो।

(७) तहसील—आबादी का वह भाग है जिस में बहुत से परगने हों और एक तहसीलदार के आधीन हो; जैसे कासगंज।

(८) ज़िला—थल का वह भाग है जो एक कलक्टर के आधीन हो, और जिस में बहुत सी तहसीलें हों; जैसे, अलीगढ़।

(९) ज़िला आईनी—उस को कहते हैं जिस में दीवानी और फ़ौजदारी की अलग २ अदालतें हों; जैसे, मथुरा।

(१०) ज़िला ग़ैर आईनी—उस को कहते हैं जहां दीवानी और फ़ौजदारी की अदालतें एक ही हाकिम के अधिकार में हों; जैसे, गढ़वाल।

(११) शहर—आबादी के सब से बड़े हिस्से को कहते हैं; जैसे, कलकत्ता।

(१२) तिजारती शहर या मंडी—उस को कहते हैं जहां व्योपार अधिकता से होता है और बहुत से सौदागर रहते हैं; जैसे, हाथरस, कानपुर।

(१३) क़िस्मत या कमिश्नरी–स्थल के उस भाग को कहते हैं जो एक कमिश्नर के आधीन हो और उस में कई ज़िले हों ; जैसे, आगरा।

(१४) लोकल गवर्नमेण्ट या सूबा–मुल्क के उस हिस्से को कहते हैं जिस में बहुत सी कमिश्नरियां हों और एक लेफ्टिनेण्ट गवर्नर या चीफ़ कमिश्नर के आधीन हो ; जैसे, संयुक्त देश आगरा व अवध।

(१५) मुल्क–स्थल का वह भाग है जिस में बहुत से सूबे हों ; जैसे, हिन्दुस्तान।

(१६) विलायत–थल के उस हिस्से को कहते हैं जिस में बहुत से शहर हों।

(१७) राजधानी –किसी मुल्क या सूबे के उस प्रधान शहर को कहते हैं जहां सब से बड़ा न्यायालय हो; जैसे, दिल्ली, इलाहाबाद।

(१८) महाद्वीप–स्थल के सब से बड़े उस भाग को कहते हैं जिस में बहुत से मुल्क हों।

(१९) पहाड़–थल के उस भाग को कहते हैं जो ज़मीन की सतह से दो हज़ार फ़ीट से अधिक ऊंचा हो।

(२०) पर्वतश्रेणी–उन पहाड़ों को कहते हैं जो एक दूसरे से मिले हुए दूर तक चले गये हों।

(२१) पहाड़ी–पत्थरों के उस टीले को कहते हैं जो दो हज़ार फ़ीट से कम ऊंचा हो।

(२२) चोटी–पहाड़ के सब से ऊंचे भाग को चोटी कहते हैं।

(२३) पहाड़ी किनारा-पहाड़ के नीचे की भूमि को कहते हैं।

(२४) दर्रह या पास-दो पहाड़ों के बीच के तंग मार्ग को कहते हैं।

(२५) घाटी या तराई-पर्वत श्रेणियों के बीच की नीची भूमि को कहते हैं।

(२६) ज्वाला मुखी पहाड़-वे पहाड़ हैं जिन के मुँह से सदा वा कभी २ आग और धुआँ निकलता है।

(२७) मैदान-स्थल के चौरस भाग को कहते हैं।

(२८) प्लेटो-उस चौरस भूमि को कहते हैं जो आस पास की भूमि से ऊंची हो।

(२९) रेगिस्तान-पृथ्वी के उस बड़े भाग को कहते हैं जहां अधिकता से रेत हो।

(३०) ओसिस-उस हरी भरी उपजाऊ भूमि को कहते हैं जो रेगिस्तान में उपस्थित हो।

(३१) बेसिन-थल के उस भाग को कहते हैं जो किसी नदी या उस की सहायक नदी से सींचा जाता हो।

(३२) नदी का बेसिन-उस उपजाऊ ज़मीन को कहते हैं जहां कोई नदी जारी हो।

(३३) दाब-दो नदियों के बीच के देश को कहते हैं।

(३४) वाटरशेड-स्थल के उस ऊंचे भाग को कहते हैं जो दो बेसिनों को जुदा करे।

(३५) डेल्टा-उस नीची और चौरस भूमि को कहते हैं जो त्रिभुजाकार नदी की दो धारों और समुद्र के बीच में बन जावे।

(३६) द्वीप–पृथ्वी के उस हिस्से को कहते हैं जो चारों ओर पानी से घिरा हो, जैसे लंका।

(३७) प्रायद्वीप–स्थल का वह भाग है जो क़रीब २ सब ओर पानी से घिरा हो।

(३८) डमरूमध्य या थल संयोजक–स्थल का वह तंग भाग है जो स्थल के दो बड़े भागों को मिलावे।

(३९) अन्तरीप–पृथ्वी का वह हिस्सा है जिसकी नोक पानी के अन्दर गावदुम होती हुई दूर तक चली गई हो।

(४०) प्रोमण्टोरी—कंकरीली और पथरीली भूमि को कहते हैं।

जल के भाग।

(१) नाली–जिस के द्वारा घरों या शहरों का पानी निकाला जाता है।

(२) पोखर–वह छोटे गढ़े हैं जिन में बरसाती पानी इकट्ठा हो जाता है।

(३) तालाब–पानी के लम्बे, चौड़े और गहरे गढ़े को कहते हैं जो पोखर से बड़ा होता है।

(४) झील–पानी का वह हिस्सा है जो चारों ओर स्थल से घिरी हो।

नोट–झील चार प्रकार की होती हैं:—

(१) वह झील जिन से नदियां निकलती हैं।

(२) वह झील जिन में नदियां गिरती हैं।

आवश्यकीय सूचना।

(१) द्वीप का विलोम (उल्टा) झील और अन्तरीप का विलोम खाड़ी और डमरुमध्य का विलोम मुहाना (जल संयोजक) है।

(२) पहाड़ों से यह लाभ हैः- (१) नदियां निकलती हैं जिन के द्वारा देश की सिंचाई होती है। (२) पहाड़ों पर क़ीमती लकड़ी का वन होता है। (३) पत्थर निकलते हैं, जिन से इमारत और ज़रूरी चीज़ें बनती हैं। (४) घाटी और नदियों के रुख़ का अनुमान होता है। (५) चलती हवाओं और वर्षा पर असर कर के आब व हवा को मौतदिल करते हैं।

(३) झीलों से यह लाभ हैः-(१) मीठे पानी की झीलों से नदी निकलती हैं। (२) खारी झीलों से नमक बनाया जाता है।

(४) पहाड़ों से नदियां इस तरह निकलती हैं कि शरद् ऋतु में पहाड़ों पर बर्फ़ जमती है और ग्रीष्म ऋतु में गर्मी पाकर पिघल कर पानी बन जाती है और यह पानी धार की सूरत में मैदानों में बहकर आ जाता है उन्हीं को नदियां कहते हैं।

(५) नदियों से लाभः-(१) नहरें निकाली जाती हैं जिन से सिंचाई होती है। (२) नावों के द्वारा तिजारत होती है। (३) पानी पाचक होता है। (४) मनुष्य नहाते और कपड़ा धोते हैं।

परीक्षार्थ प्रश्न ।

(१) द्वीप और प्रायद्वीप, मुहाना और डमरूमध्य में क्या अन्तर है ?

(२) भूगोल विद्या से क्या उपदेश मिलता है ?

(३) दिशा जानने के तरीके बयान करो ।

(४) पृथ्वी क्या है ?

(५) सिद्ध करो कि पृथ्वी चपटी नहीं है ।

(६) पृथ्वी पर कितना भाग जल का और कितना थल का है ?

(७) दिन रात किस प्रकार होते हैं ?

(८) दिशाओं के नाम नक़्शा खींच कर दिखलाओ ।

(९) झील कै तरह की होती हैं ?

(१०) दो नदियों की मिलने की जगह को क्या कहते हैं ?

(११) नदी और नहर में क्या अन्तर है ?

(१२) दर्रह, टेबिललैंड, बेसिन, बंदरगाह, महासागर और सूबा की परिभाषा बताओ ।

(१३) नदी के निकलने और गिरने की जगह को क्या कहते हैं ?

(१४) डमरूमध्य किस को अलग करता है और मुहाना किस को मिलाता है ?

(१५) पैमाना किसे कहते हैं ?

नं०

आवश्यकीय सूचना।

(१) द्वीप का विलोम (उल्टा) झील और अन्तरीप का विलोम खाड़ी और डमरूमध्य का विलोम मुहाना (जल संयोजक) है।

(२) पहाड़ों से यह लाभ हैं:- (१) नदियां निकलती हैं जिन के द्वारा देश की सिंचाई होती है। (२) पहाड़ों पर क़ीमती लकड़ी का वन होता है। (३) पत्थर निकलते हैं, जिन से इमारत और ज़रूरी चीज़ें बनती हैं। (४) घाटी और नदियों के रुख़ का अनुमान होता है। (५) चलती हवाओं और वर्षा पर असर कर के आब व हवा को मौतदिल करते हैं।

(३) झीलों से यह लाभ हैं:-(१) मीठे पानी की झीलों से नदी निकलती हैं। (२) खारी झीलों से नमक बनाया जाता है।

(४) पहाड़ों से नदियां इस तरह निकलती हैं कि शरद ऋतु में पहाड़ों पर बर्फ़ जमती है और ग्रीष्म ऋतु में गर्मी पाकर पिघल कर पानी बन जाती है और यह पानी धार की सूरत में मैदानों में बहकर आ जाता है उन्हीं को नदियां कहते हैं।

(५) नदियों से लाभ:-(१) नहरें निकाली जाती हैं जिन से सिंचाई होती है। (२) नावों के द्वारा तिजारत होती है। (३) पानी पाचक होता है। (४) मनुष्य नहाते और कपड़ा धोते हैं।

श्रीः

भूगोल बीकानेर

जिसको—

पंडित रामचन्द्र ऑनरेरी सेक्रेटरी,
वसुदेवदासात्मज कन्हैयालाल
विद्यालय, बीकानेर

ने

संग्रहीत किया.

और बा० विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह
हेडमास्टर बी० के विद्यालय

ने

लक्ष्मीनारायण प्रेस
मुरादाबाद में
छपवाकर प्रकाशित किया.

संवत् १९७६

द्वितीयबार २००० | ॐ | कीमत ।-)

सूचीपत्र।

भूमिका ।

यह भूगोल खासतौर पर वसुदेवदासात्मज कन्हैयालाल विद्यालय के छात्रों के वास्ते तैयार किया गया है क्योंकि यहां बीकानेर के ही छात्र पढ़ने आते हैं और उनके लिए अन्य देश के भूगोल जानने से पहिले अपनी जन्मभूमि का हाल जानना अत्यावश्यक है और इसी वास्ते बीकानेर का इतिहास भी बनाया गया है जिस में सारे महाराजाओं का हाल वर्णित है, आशा है इस से छात्रों को घर का हाल मालूम होगा और "दीपक तले अँधेरा" वाली मिसाल यह पढ़ने से मिट जायगी और यदि दूसरे मदरसों की प्रारम्भिक कक्षाओं में इस का प्रचार होजायगा तो इसके बनाने का फल और भी उत्तम होगा ।

पांडिया शिवधनजी, बाबू सांवलदासजी सेवक व कल्ला बालकृष्णजी को, जो उन्होंने सहायता दी है उसके बदले हार्दिक धन्यवाद दिये विना नहीं रह सका ।

यदि इसमें कोई त्रुटि रहगई हो तो पाठक सूचना देकर कृतार्थ करेंगे और वह त्रुटि दूसरी बार में ठीक करदी जायगी ।

भवदीय—

पंडित रामचन्द्र, रतननगरनिवासी.

पं० रामचन्द्र लेट हेडमास्टर के स्वर्गवास होने के कारण मैं उनकी जगह पर हेडमास्टर नियत किया गया हूं इसकारण से मैनेजिंग कमेटी की आज्ञानुसार जिसने इस पुस्तक के छपवाने के तमाम हकूक रिजस्टर्ड करा रखे हैं- मैंने इस की तमाम त्रुटियों व अशुद्धियों को दूर कर के दूसरी वार २,००० प्रतियां छपवाई हैं--और आशा है कि पाठकगणों की मांग से मुझे बहुत जल्द फिर छपवाने की आवश्यकता पड़ेगी।

भवदीय--

विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह,

आज़मगढ़ निवासी,

हेड सेकन्ड असिस्टेंट मास्टर, डूंगर कालेज,

(रियासत बीकानेर)

श्री: ।

परिभाषा ।

(Definitions)

१-भूगोलविद्या (Geography) पृथ्वी और पृथ्वी से सम्बन्ध रखनेवाली चीज़ों के वर्णन को कहते हैं।

२-नक़्शा (Map) ज़मीन के ऊपरी भाग के चित्र को कहते हैं जिसमें शहर, नदी, पहाड़, कुआं आदि भिन्न २ निशानों से दिखाये जाते हैं, जैसे—नक्शा हिन्दुस्तान।

३-महाद्वीप (Continent) पृथ्वी के उस बड़े हिस्से को कहते हैं जिसमें बहुत से देश हों, जैसे—एशिया।

४-देश (Country) महाद्वीप के उस बड़े हिस्से को कहते हैं जिसमें बहुत से नगर और कसबे हों और जिस में एक खास जाति और भाषा के लोग बसते हों, जैसे—हिन्दुस्तान।

५-सूबा (Province) देश के उस हिस्से को कहते हैं जिसमें बहुत सी किस्मतें और ज़िले हों, जैसे—पंजाब, बङ्गाल।

६-राजधानी (Capital) उस प्रधान शहर को कहते हैं जहां उस देश या सूबे का सब से बड़ा हाकिम रहता हो, जैसे—बीकानेर, बीकानेरराज्य की और दिल्ली, हिन्दुस्तान की राजधानी है।

७-क़िस्मत (Division) सूबा के उस हिस्से को कहते हैं जिस पर एक कमिश्नर का अधिकार हो और उस में कई ज़िले हों, जैसे—हिसार, लाहौर।

८-ज़िला (District) क़िस्मत के उस हिस्से को कहते हैं जिस पर एक कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर का अधिकार हो और उसमें कई तहसीलें हों, जैसे—दिल्ली, रैणी, सुजानगढ़।

९-तहसील (Tahsil) ज़िले के उस हिस्से को कहते हैं जिसमें कई कसबे या गांव एक तहसीलदार के मातहत हों, जैसे—लूनकरणसर।

१०-गांव (Village) एक छोटी बस्ती को कहते हैं जहाँ साधारण लोग रहते हों और मामूली मकानात हों, जैसे—कानासर, आमसर।

११-क़स्बा (Town) उस बड़ी बस्ती को कहते हैं जहां कुछ धनी आदमी भी रहते हों और गांव से बड़ा हो और जहां बड़ी २ इमारतें या मकानात हों, जैसे—रतनगढ़, चूरू, सुजानगढ़।

१२—शहर (City) उसको कहते हैं जहां बड़ी २ सड़कें, बाग़ बग़ीचे बड़े २ मकानात और बड़े २ धनियों की बस्ती हो, जैसे—बीकानेर।

१३-द्वीप (Island) ज़मीन के उस हिस्से को कहते हैं जो चारों तरफ़ पानी से घिरा हो, जैसे—लङ्का या [illegible]।

१४–प्रायद्वीप (Peninsula) ज़मीन के उस हिस्से को कहते हैं जो तीन तरफ़ समुद्र से घिरा हो, जैसे–काठियावार, दक्खिन।

१५–डमरूमध्य (Isthmus) ज़मीन के उस तंग हिस्से को कहते हैं जो दो महाद्वीपों या देशों को मिलावे, जैसे–पनामा का डमरूमध्य।

१६–अन्तरीप (Cape) ज़मीन की उस नोक को कहते हैं जो समुद्र में दूर तक चली गई हो, जैसे–केप कुमारी।

१७–पहाड़ या पर्वत या डूँगर (Mountain) पत्थरों के ऊँचे २ टीलों को कहते हैं जो आस पास की ज़मीन से ऊँचे हों, जैसे–विन्ध्याचल, आबू और उन से छोटे २ टीलों को पहाड़ियाँ कहते हैं, जैसे–छापर की पहाड़ी।

१८–ज्वालामुखी (Volcano) उस पहाड़ को कहते हैं जिसमें से आग धूवाँ या पिघली हुई चीज़ें निकलती हों।

१९–टीबा (Sand hills) रेत के उस टीले या धोरे को कहते हैं जो आँधी से उड़कर एक जगह जमा हो गया हो। टीबा एक रेत का पहाड़ होता है।

२०–मैदान (Plain) स्थल के चौरस या हमवार भाग को कहते हैं, जैसे–सिंध का मैदान।

२१–प्लेटो (Plateau or tableland) उस लम्बे चौ-

मैदान को कहते हैं जो आस पास की ज़मीन से कुछ ऊँचा हो जैसे-तिब्बत, दक्खिन ॥

२२-घाटी (Valley) दो पहाड़ों के बीच की नीची ज़मीन को कहते हैं जिसमें से नदी भी बहती हो, जैसे-कश्मीर की घाटी।

२३-पास या घाटी (Pass) उस छोटे रास्ते को कहते हैं जो दो पहाड़ या पहाड़ियों के बीच में हो, जैसे-खैबर की घाटी या पास।

२४-महासागर (Ocean) सारे जल के उस बड़े हिस्से को कहते हैं जो पृथिवी के कुल या किसी हिस्से को घेरे हो, जैसे-हिन्द महासागर।

२५-सागर (Sea) सारे जल के उन बड़े हिस्सों को कहते हैं जो महासागर से छोटा हो और ज़्यादातर ज़मीन से घिरा हो, जैसे-अरेबियनसी, रैडसी।

२६-खाड़ी (Gulf) जल के उस हिस्से को कहते हैं जो ज़मीन में घुस कर चली गई हो। जैसे फ़ारस की खाड़ी। जो थोड़े [illegible] की खाड़ी होती है उसको खलीज (Bay) कहते हैं, जैसे-बंगाल की खलीज।

२७-झील या ताल (Lake) जल के उस हिस्से को कहते हैं जो किसी स्थान में चारों तरफ़ ज़मीन से घिरा हो, जैसे [illegible] झील मानसरोवर।

२८-मुहाना (Strait) जलके उस तंग हिस्से को कहते हैं जो दो महासागर, या सागरों को मिलाता हो, जैसे पाकस्ट्रेट।

२९--नदी (River) मीठे पानी की उस (देवी) धार को कहते हैं जो किसी पहाड़ या झील से निकल कर समुद्र में मिलती हो, जैसे-गंगा, जमुना।

३०-सहायक नदी (Tributary) मीठे पानी की उस धार को कहते हैं जो किसी पहाड़ या झील से निकलकर किसी नदी में आकर गिरती हो, जैसे-सोनगंगा की शाख।

३१-शाखा (Branches) पानी की उस धारा को कहते हैं जो किसी नदी से फटकर अलग समुद्र में जाती हो।

३२-नहर (Canal) पानी की उस बनाई हुई धार को कहते हैं जो किसी नदी या झील से काटकर दूसरी जगह लाई जाय, जैसे-नहर गंगा।

३३-डेलटा (Delta) रेत के उस टीले को कहते हैं जो किसी नदी की धारों और समुद्र के बीच में त्रिभुजाकार बन जाता है, जैसे- गंगा का डेलटा।

३४-बंदरगाह (Harbour or Port) थोथले समुद्र के उस स्थान को कहते हैं जो किसी टापू के किनारे या शहर के नजदीक हो और जहां जहाज आकर ठहरते हों, जैसे करांची, बम्बई।

३५-मरुस्थल (Desert) उस रेतीले मैदान को कहते हैं जहां कोई आबादी या खेती न हो, जैसे—सिंध का मरुस्थल (Forest) और (Desert) में यह फ़र्क होता है कि (Desert) रेतीला और दरख़्तों से ख़ाली होता है और Forest दरख़्तों से भरा होता है, जैसे-तराई का जंगल।

३६-भूकम्प (Earthquake) पृथ्वी के हिलने को कहते हैं।

३७-आंधी (Storm) ज़ोर की हवा को कहते हैं जो धूल फूस उड़ाती हुई अँधेरा कर दे, जिससे हाथ मुँह दीखना बंद हो जाय।

३८-क्षितिज (Horizon) उस लकीर को कहते हैं जहां आसमान और ज़मीन मिले हुए दिखाई दें।

३९-भूमध्य रेखा (Equator) वह मानी हुई लकीर है जो पृथ्वी के बीचो बीच पूर्व से पश्चिम को खिंची हो और उस के दो बराबर हिस्सों में बांटती हो।

४०-स्केल या पैमाना (Scale) नक़्शे में भूमि नाप के पैमाने या नाप को कहते हैं।

४१-दिशा (Side) पृथ्वी के किसी एक तरफ़ को दिशा कहते हैं-प्रधान दिशा चार हैं-उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, इन के बीच चार दिशा और हैं। जिन को ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य कहते हैं।

४२—दिशाएँ जानने का यह तरीका है कि सूर्य निकलते समय सूर्य के सामने मुँह करके खड़े होने से मुँह की तरफ़ पूर्व, पीठ की तरफ़ पश्चिम, दहिने हाथ की तरफ़ दक्षिण और बायें हाथ की तरफ़ उत्तर होता है और नक्शे में ऊपर का हिस्सा उत्तर, नीचे का दक्खिन, दाहिने हाथ की तरफ़ पूर्व और बायें हाथ की तरफ़ पश्चिम होता है, जैसा कि नीचे के यंत्र से ज्ञात होगा।
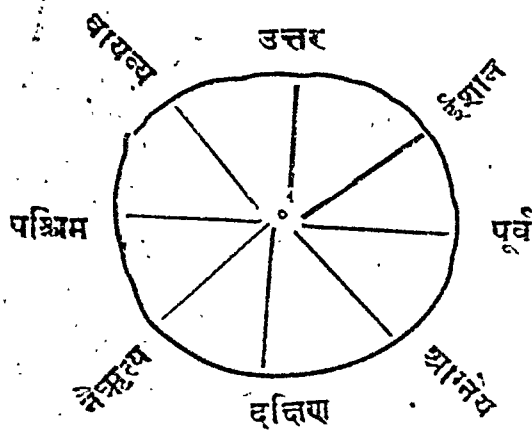
पृथ्वी।

पृथ्वी नारङ्गी की तरह गोल है और उत्तर दक्खिन दोनों सिरों पर चिपटी है उन दोनों सिरों को ध्रुव कहते हैं।

२—पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई सूरज

तरफ घूमती है, जितना हिस्सा सूरज के सामने आता है वहां दिन होता है और जो छुपा रहता है वहां रात होती है।

३—पृथ्वी अपनी धुरी पर एक दिन में एक चक्कर खाती है उस से एक दिन रात बनता है, एक दिन रात के २४ हिस्से करके हर एक हिस्से को घंटा कहते हैं, हरएक घंटा ६० मिनटों का होता है और हरएक मिनट ६० सैकेण्डों का।

४—चौबीस घंटों के ७ दिन रात को एक हफ़्ता (सप्ताह) कहते हैं और ३० दिन रात का एक मास होता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर खाती हुई ३६५ दिन ६ घंटे में सूर्य के गिर्द एक चक्कर खाती है, इस समय को एक वर्ष या साल या बारह मास कहते हैं।

५—बारह महीनों या एक वर्ष के छः हिस्से किये जाते हैं हरएक हिस्से को १ ऋतु कहते हैं, उन के नाम ये हैं—बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर और हेमंत।

६—हफ़्ते के सात दिनों के नाम ये हैं—आदित्यवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार शनिवार।

७—बारह महीनों के नाम ये हैं—चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भादों, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, और फाल्गुन। अंग्रेज़ी नाम January (जनवरी) February (फ़ेब्रुअरी) March (मार्च) April (एप्रिल) May (मई) June (जून) July (जुलाई) August (अगस्त)।

September (सेप्टेम्बर) October (अक्टूबर) November (नवम्बर) December (दिसम्बर)।

८—एक महीने में दो पखवाड़े होते हैं उन वदी को और सुदी (कृष्णपक्ष वा शुक्लपक्ष) कहते हैं और इन पखवाड़ों के १५ दिनों की १५ तिथी होती हैं, जिन के नाम यह हैं— प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या अमावस्या, सुद पक्ष की पूर्णिमा और वद पक्ष की अमावस्या कहलाती है।

६—इन तिथियों को अंग्रेज़ी में तारीखें कहते हैं. अंग्रेज़ी महीनों में, सेप्टेम्बर, एप्रिल, जून व नवम्बर तो ३० दिनों या तारीखों के होते हैं और फेब्रुवरी २८ दिनों की (हर चौथे वर्ष फरवरी २६ दिनों का महीना होता है) बाकी जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, अगस्त, अक्टूबर व दिसम्बर ३१ दिनों के होते हैं।

१०—पृथ्वी की गोलाई या उस के धरातल पर जो लकीर पृथ्वी के दो बराबर हिस्से करती हुई खींची जाय उसको पृथ्वी की परिधि (Circumference) कहते हैं और जो लकीर पृथ्वी के बीच के केन्द्र में होकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक खींची जावे उसको व्यास (Diameter) कहते हैं, पृथ्वी की परिधि २५००० मील और व्यास ८००० मील है।

भूगोल राज्य श्री बीकानेर ।

बीकानेर राज्य राजपूताना के मुख्य राज्यों में से है, जहाँ सूर्यवंशी राठोड़कुल के महाराजा राज्य करते हैं। यह राज्य २७·१२ और ३०·१२ उत्तर अक्षांश और ७२·१२ वा ७५·४१ पूर्व देशान्तर रेखाओं के बीच में स्थित है। इसका विस्तार २३३११ वर्ग मील है और इसकी आबादी सन् १९११ की मनुष्यगणना में ७००९८३ थी।

२—बीकानेर के उत्तरीय और पश्चिमीय सीमा पर भावलपुर के ज़िले, पश्चिम दक्षिण में जैसलमेर राज्य, दक्षिण में मारवाड़ राज्य, दक्षिण पूर्व में जयपुर राज्यान्तर्गत शेखावाटी के गांव, पूर्व में लोहारू और हिसार के ज़िले और पूर्व उत्तर में फीरोज़-पुर के ज़िले हैं।

३—इस राज्य का नाम राव बीकाजी के नाम से बना है, बीकानेर (बीकाजी के रहने की जगह) राव बीकाजी का सन् १४८८ मुताबिक संवत् १५४५ में बसाया हुआ है। कोई २ ऐसा भी कहते हैं कि यह इलाका पहिले नेरा नामी जाट का था और उसने इस शर्त पर राव बीकाजी को दे दिया कि उसका नाम भी इस शहर के नाम से जोड़ा जावे, इस लिये बीकानेरा के नाम से बीकानेर हुआ।

नदी (River)

४-बीकानेर राज्य में हमेशा बहनेवाली कोई नदी नहीं है, राज्य के पूर्व में काटली नदी है, जो जयपुर राज्य के खंडेला के नज़दीक की पहाड़ियों से निकलती है, बरसात के मौसिम में जब वर्षा अच्छी होती है तो राजगढ़ तहसील की दक्षिण भूमि में १० तथा १५ मीलतक आ जाती है, जिससे उक्त तहसील के कुछ गावों की खेती को फ़ायदा पहुंचता है।

गढ़ के पास छापर में और दूसरी राजधानी से पूर्वोत्तर ५० मील के फ़ासिले पर लूनकरणसर में है, दोनों छोटी २ हैं। लूनकरणसर की झील में अब भी नमक निकाला जाता है।

७-मीठे पानी के २ ताल बीकानेर के दक्षिण पश्चिम में हैं, जिन को भी छोटी २ झीलें कहनी चाहियें। एक गजनेर का ताल है जो राजधानी से २० मील के .फासिले पर है, यह ताल कोई आधी मील लम्बा और पाव मील चौड़ा है और दूसरा कोलायत का ताल है जो ३२ मील के .फासिले पर है।

पहाड़ (Mountains)

८—राजधानी के दक्षिण में गोपालपुरा के नज़दीक एक पहाड़ी है, जो समुद्र की सतह से १६५१ .फीट ऊंची है और आस पास के मैदान से .करीब ६०० या ७०० .फीट ऊंची है। रेत के पहाड़ तो यहाँ बहुत हैं जिनको टीबे या धोरे कहते हैं॥

पशु पक्षी और जीव जन्तु।
(Birds and Animals)

९—जङ्गली पशुओं में सुअर, हिरन, चिकारा, नीलगाय, भेड़िये, चीते, गीदड़, लोमड़ी इत्यादि होते हैं। पक्षियों में आम तौर पर कौवे, कबूतर, चील, मोर और कमेड़ियां हैं। इन के सिवाय जाड़े के मौसम में गजनेर, हनुमानगढ़ आदि के तालों में पानी की वजह से कूकन, नेगा, बटबड़, बनतीतर, लवा, बटेर, गुड़ापन, तिलोर और कुरजां आदि भी आ-जाते हैं।

१०—जीव जन्तुओं में सर्प कम हैं, परन्तु बिच्छू बहुत होते हैं, एक किस्म का पैना सांप भी कसरत से होता है। पिस्सू और खटमल कम होते हैं, परन्तु जूंकी बहुत होती है।

११—पालतु पशुओं में यहाँ घोड़े, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, गोधा, ऊंट, गधा, कुत्ता आदि साधारण सब पशु पाले जाते हैं और पक्षियों में तीतर और सफ़ेद कबूतर पाले जाते हैं। ऊँट यहां का सर्वस्व है, जिस को (शिप ऑफ डेज़र्ट) यानी जङ्गल का जहाज़ कहते हैं, इस से सब काम लिये जाते हैं। बीकानेर के टाले के ऊंट दिन में १०० कोस तक चलने के लिये मशहूर थे, अब भी टाले के ऊंट अच्छे होते हैं।

खेती और उपज (Agriculture)

वनस्पति (Botany)

१३—यहां काई घना जंगल नहीं है, ज़ियादातर यहां खेजड़े के दरख़्त होते हैं जिनमें सांगर और खोखे लगते हैं। अकाल में इसके छोड़े (छाल) पीस कर खाने के काम में भी आते हैं। यहां के मुख्य वृक्ष ये हैं-खैर, जाल, नीम, बबूल, रोहिड़ा, फोग, सज्जी, लाना, आक, थोर, झाड़ी, सिरस, वड, पीपल, कैर, खेजड़ा आदि। घास की क़िस्म में भुरट घास बड़ा मशहूर है, बाकी सेवण, धामण, गांठीला, खाप, बांकड़ो, कड़वी, पूला, सरकंडा, पानी घास भी होते हैं—बाग़ों में लगाये हुए कनोर, सैनार, मेंहदी, अनार, नींबू आदि के दरख़्त भी बहुत मिलते हैं।

खनिज पदार्थ (Geology)

१४—राजधानी से १० मील के फासले पर पलाने में सबसे मशहूर कोयले की खान है, जिसका कोयला राज्य के कारख़ानों और राज्य की रेल में काम आता है। लूण-करणसर और छापर में नमक निकलता है। बीकानेर से क़रीब ४२ मील पूर्वोत्तर दुलमेरा में लाल पत्थर की खान है जो तामीर के काम में आता है और लालगढ़ आदि बड़े २ मकानात इसी के बने हुए हैं। राज्य के दक्षिण पश्चिम क़रीब ३५ मील पर मेड गांव में नड़ के पास मुलतानी मिट्टी की खान है, जो देश भर में प्रसिद्ध है और साबुन की जगह सिर धोने के काम में आती है। बीकानेर शहर के पास ही सफ़ेद और

लाल मिट्टी की खानें हैं जो कच्चे मकानात के लीपने पोतने में काम आती हैं। चोदासर में तांबे की खान का भी पता लगा था, परन्तु लागत पूरी न पड़ने के कारण वह बन्द करदी गई। चूने या भाठे की खानें भी बहुत हैं जो तामीर में काम आते हैं। यहां चिणाई के काम के लिये भाटा बहुत निकलता है और बहुत ही मज़बूत होता है। पीली मिट्टी के भी यहां बहुत करोड़े हैं। जामसर में चूने की खान है जो जला कर तामीर के काम में आता है और भाठे चूने के नाम से मशहूर है।

व्यापार और कारीगरी

(Trade and Industry)

जल और जलाशय (Water and Well)

१६-यहां जल की बहुत ही कमी है यानी खास शहर में जो कुयें हैं वे बहुत गहरे हैं और उत्तरीय प्रान्त में कुयें बहुत कम हैं और हैं तो सब का पानी खारा है इसलिये लोग कुण्ड और जोहड़ों में बरसात का पानी इकट्ठा करके पीने के काम में लाते हैं। बाकी शेखावाटी से लगे हुए शहरों में, जैसे—चूरू, रतनगढ़, रतननगर आदि में कुयें ज़ियादा गहरे नहीं होते, इसलिए वहाँ पानी की शिकायत नहीं है।

बरसात और आंधी।

(Rain and Winds)

१७—बारिश भी यहां बहुत कम होती है। कारण यह कि नदियां, नहरें और जंगलों का अभाव है क्योंकि ज्यादातर इन्हीं के आकर्षण से वर्षा हुआ करती है, और मानसून के रोकने के लिये कोई पहाड़ भी नहीं है। बारिश की सालाना औसत ११ इन्च है। ज़ियादातर यहां वर्षा श्रावण और भादों में होती है। गरमी के मौसिम में आँधियां अक्सर आजाती हैं। ३ जून सन् १८७७ और २१ मई सन् १६१३ई० को तो बीकानेर में ऐसी आँधी आई थी कि घरों के छप्पर तक उड़गये।

जल वायु (Climate)

१८—यद्यपि बीकानेर की आबो हवा रूखी है, परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बहुत ही उमदा है। पानी गहरा होने के कारण पक्का (नीरोग) है। जो रोगी परदेशों से आते हैं उनका आधा

रेल गुज़रती है, जिस से व्यापारियों और देशवासियों को आने जाने का बहुत ही सुभीता होगया है। पहले जहाँ ऊंटों पर ४ रोज़ में जाते थे वहां अब ४ घण्टों का काम होगया है। इस वक्त राज्यान्तर्गत रेलवे लाइन की लम्बाई ३८५.४० मील है जिससे राज्य को करीब बारह लाख की आय होती है। सब स्टेशनों पर रेलवे के तार हैं और बड़े २ शहरों में गवर्नमेन्ट के डाकखाने वा तारआफ़िस हैं जिनका बयान आगे दर्ज होगा। रेलवे स्टेशनों का नक्शा नीचे दर्ज है—

डेगाना हिसार लाइन.

डेगाना मोलीसर
खाटू देपालसर
बड़ावरा चूरू
छाऊ दद्रियाला
डीडवाना सादूलपुर
जसवंतगढ़ झूँपा
सुजानगढ़ सीवानी
तालछापर गँगरवा
पड़िहारा हिसार
रतनगढ़

रतनगढ़ कोर्ड लाइन

रतनगढ़ राजलदेसर
सायली परसनेउ
बिग्गा बेलासर
श्रीडूंगरगढ़ नापासर
बणीसर गाढवाला
लूडसर बीकानेर

भटिण्डा से मेड़तारोड वाली लाइन.

भटिण्डा पक्कापुरा
संगत हनुमानगढ़
घगवाली डबली
मंडीडबवाली पीलीबंगा
रंगमहल
बिरंगखेड़ा
चौटाला रोड

भटिण्डा से मेड़तारोड वाली लाइन.

सूरतगढ़	जगदेवाला	नोखा	खजवाना
रायांवाली	जामसर	भग्गू	देसवाल
राजीसर	कानासर	अलाय	मेड़तारोड
महाजन	बीकानेर	बड़वासी	
मलकीसर	पलाना	नागोर	——
लूनकरनसर	देशनोक	मूंडवा	
हलमेरा	सूरपुरा		

बिजली की रोशनी और टेलीफ़ोन।

(Electricity and Telephone)

२०—न्यूसैंट्रल इलैक्ट्रिक स्टेशन के नाम से यहाँ का बिजली घर २५ नवम्बर सन् १९०८ को बमौके तशरीफ़ आवरी जनाब लार्डसाहब बहादुर व लेडी मिन्टो खोला गया था। इसमें बड़ा भारी इंजन लगा हुआ है; जिससे करीब २ सब जगह बिजली की रोशनी वा बिजली के पंखे लगे हुए हैं और बड़ा ही आराम होगया है। सड़कों पर भी बिजली के लालटेन लगे हुए हैं जिससे शहर की रौनक बढ़ी हुई है। टेली-फोन भी राज के करीब २ सभी बड़े २ महकमों में लगे हुए हैं जिस ज़रिये से बातचीत एक महकमे वाला दूसरे महकमे वाले से बआसानी कर सकता है। गजनेर मुकाम से, जो बीकानेर से १८ मील दूर स्थित है, टेलीफोन का कनैक्शन है और बिजली की रोशनी शहर के कोट बाहर या आम लोगों के घरों में भी पहुंचाई जाती है।

छापाख़ाना (Press)

२१—शहर में श्रीदरबारप्रिंटिंगप्रेस नाम का छापाख़ाना है, जिसमें छपाई का अच्छा प्रबन्ध है और इस छापेख़ाने से बीकानेरराजपत्र नाम का साप्ताहिक पत्र निकलता है।

२२—बीकानेर राज्य में कुल गांव और क़स्बों की संख्या २१८६ है, सन् १९०१ की मनुष्यगणना में केवल ५,८४,६२३ मनुष्यों की आबादी थी परन्तु सन् १९११ ई० की मनुष्य-गणना में ७,००,९८३ मनुष्यों की आबादी पाई गई जिस में ३,७१,४८९ मर्द और ३,२९,४९४ औरतें हुईं इस की विगत इस तरह से है—हिन्दुओं में मर्द ३,०६,६५९, औरतें २,६९,०४०, जैनियों में मर्द १०,२५५, औरतें १४,६०३, सिक्खों में मर्द ५०५४, औरतें ३१६०, मुसलमानों में मर्द ४९,३४७, औरतें ४२५८२, क्रिस्तानो मर्द ९७, औरतें ५४ वा अन्य जातियों में ७७ मर्द और ५५ औरतें हुईं। बीकानेर राज्य में पढ़े लिखे मर्दों की संख्या सन् १९११ में १९,७६० हुई और औरतों की ८०८।

२३—ब्राह्मणों में यहां राजगुरु पुष्करणा और पंचगौड़ (छः न्याती) ब्राह्मण हैं और श्रीमाली ब्राह्मण भी बीकानेर ख़ास में पाये जाते हैं और पुष्करणा भी ख़ास शहर में ज़ियादा हैं। ब्राह्मणों की कुछ मुख्य पदवियां ये हैं:—व्यास, जोशी, पुरोहित, आचार्य, पांडिया, तिवाड़ी, मिश्र, दवे, रंगा, बिस्सा, कल्ला आदि।

२४—क्षत्रियों में ज़ियादातर राठौड़, भाटी, तँवर पवांर, कछवाहा वा चौहान आदि हैं।

आकार, प्रकार और आचार विचार।

(Size shape and customs or religious observance)

२७-जल वायु के अनुसार यहाँ के मनुष्यों का रङ्ग पक्का गेहुआं होता है और स्त्रियों का रंग कुछ सुर्खी मायल पीलासा होता है, चेहरा लम्बा, आंखें मामूली, पेट बड़ा और पैर पतले, ऊँचाई औसत ५ .फीट ७ इंच होती है। भूमिगुण के अनुसार यहां के लोग व्यवहारचतुर होते हैं। लम्बा अँगरखा और सीधी पगड़ी यहाँ का असली पहनाव है, पर यह अब सिर्फ ब्राह्मणों और महाजनों में ही देखा जाता है, बाकी सब लोग और अमूमन राजपूतों में साफा और अँगरेज़ी कोट का चलन बहुत होगया है। खान पान का आचार विचार ब्राह्मणों और महेश्वरी महाजनों के सिवाय अन्य जातियों में बहुत ही कम है। राजपूतों में तो स्त्रियों के परदा है, बाकी कौमों में नहीं है।

२८—विद्या का प्रचार यहां आजकल बहुत ही बढ़ गया है और .खास शहर के अलावा हरकस्बों में प्राइवेट पाठशालाओं और मदरसों के अतिरिक्त राज की तरफ से भी मदरसे.क़ायम हैं, अंग्रेज़ी और देवनागरी का प्रचार ज़ियादा है, संस्कृत भी प्राइवेट पाठशालाओं में पढ़ाई जाती है। मदरसों की फहरिस्त आगे नक़्शों में दर्ज है।

डाकखाने (Post offices)

२९—बीकानेरराज्य के तमाम कस्बों में डाकखानेहैं और बड़े बड़े कस्बों में गवर्नमेंटी तारघर भी हैं और राज्यको इनके प्रबन्ध में गवर्नमेंट से क़रीब १४०००) के सरविस टिकट मिलते हैं। इन डाकखानों की वजह से एक शहर का हाल दूसरे शहर व गांव तक भेजनेमें बड़ी ही आसानी है। डाकखानोंके नाम नीचे की फ़हरिस्त से ज्ञात होंगे:—

१ बीकानेर हैड-आफिस	१३ पूगल	२६ संगरिया
	१४ सूडसर	२७ टीबी
२ बीकासर	१५ सूरपुरा	२८ राजगढ़
३ देशनोक	१६ उदेरामसर	२९ रतनगढ़
४ गंगाशहर	१७ वैदोंकाचौक	३० आडसर
५ जामसर	१८ चूरू	३१ मोमासर
६ जैतपुर	१९ रतननगर	३२ पड़िहारा
७ कालू	२० डूंगरगढ़	३३ राजलदेसर
८ लूनकरणसर	२१ हनुमानगढ़	३४ रेणी
९ महाजन	२२ गंधेली	३५ सरदार शहर
		३६ सुजानगढ़
१० मंडीजकात, बीकानेर	२३ हनुमानगढ़ R. S.	३७ बीदासर
		३८ छापर
११ नापासर	२४ मिर्ज़ावाला	३९ सूरतगढ़
१२ पलाना	२५ रावतसर	४० अनूपगढ़

जकात (Customs)

३०—जकात का महकमा इन्सपेक्टर जनरल ऑफ कस्टम्स के मातहत है और बड़ी २ तहसीलों में नायबात हैं जहां दरोगे काम करते हैं। ५० से ऊपर थाने हैं जिनमें थानेदारान काम करते हैं, जकात की आमदनी सालाना करीब १२०००००है।

पुलिस (Police)

३१—पुलिस का महकमा इन्सपेक्टर जनरलऑफ पुलिस के मातहत है, जिनके नीचे २ सुपरिण्टेण्डेण्ट (एक शहर के लिये दूसरा बेरूंजात के लिये) एक नायब कोटवाल, ४ इन्सपेक्टर चारों निज़ामतों में व ५३ सब इन्सपेक्टर इत्यादि काम करते हैं। करीब ५३ थाने हैं और १७ चौकियां हैं। करीब १३००००) का खर्च होता है और बहुत अच्छा इन्तज़ाम है।

फौजें (Armies)

३२—बीकानेर में ३ फौजें हैं जिनमें हरएक में ५०० जवान भरती हैं। फौजों के नाम ये हैं—

१—श्रीगंगा रिसाला (ऊंटों का रिसाला)
२—श्रीडूंगर लांसरस (घोड़ों का रिसाला)
३—श्रीसादूल लाइट इन्फेन्ट्री (पैदलों का रिसाला)

म्यूनिसिपालटी (Municipalities)

३३—बीकानेर में एक महकमा म्यूनिसिपलबोर्ड है जो ज़मीन के ख़रीदने बेचने आदि का काम करता है और सफ़ाई व सड़कों का इन्तज़ाम करता है। सिवाय बीकानेर ख़ास के भादरा (१८८३) सरदारशहर (१८८९) सूरतगढ़ (१८८८) नोहर व राजगढ़ (१८९०) चूरू व रैणी (१८९३) रतनगढ़ व सुजानगढ़ (१८९५) व डूंगरगढ़ (१८९६) में भी म्यूनिसिपालटी का इन्तज़ाम है जहां यह काम तहसीलदारों के सुपुर्द है। ख़ास २ सेठ साहूकार व डाक्टर लोग मेम्बर बनाये हुए हैं, जिन की हैसियत मालूम करके ज़मीनें फ़रोख़्त होती हैं।

न्यायालय (Court)

३४—बीकानेर राज्य भर में अंग्रेज़ी क़ानून के मुताबिक न्याय होता है और दीवानी, फौजदारी माल आदि सब बाज़ाब्ता महकमे हैं। सब से बड़ा महकमा श्रीदरबार साहिब का है, जो महकमे ख़ास के नाम से मशहूर है और इसमें जुदा २ महकमों के जुदा २ मेम्बरान कौन्सिल हैं। इस के नीचे चीफ़-कोर्ट है और चीफ़कोर्ट की मातहती में निज़ामतें और अदालतें हैं। बाकी काम के लिये महकमे ख़ास में रेवन्यू बोर्ड जुदा है।

३५–बीकानेर राज्य में ४ निज़ामतें और १८ तहसीलें हैं।

निज़ामतें	तहसीलें	विस्तार	आबादी सन् १९११	तादाद गांव
१ बीकानेर	बीकानेर, लूनकरणसर, सूरपुरा, मगरा।	९७७५	१३९९७५	५१२,१
२ रैणी	रैणी, राजगढ़, भादरा, नोहर, चूरू	४७५७.७	१९३५२७	६३८,४
३ सुजानगढ़	सुजानगढ़, रतनगढ़, डूंगरगढ़, सरदारशहर	३७०५	१९०७७२	४७८,३
४ सूरतगढ़	सूरतगढ़, हनुमानगढ़, मिरज़ावाला, अनूपगढ़, टीबी।	५०७३.३	१२०८८३	५९६,
५ बीकानेर शहर	....	४	५५८२६	१
	योग	२३३१५	७००९८३	२,१७७ [illegible]

बीकानेर निज़ामत की तहसीलें।

बीकानेर तहसील।

३६–बीकानेर तहसील सदर निज़ामत के मातहत है, इसमें १५० गांव हैं, जिन में ३९ खालसा और १११ पट्टे के हैं। यहां की आबादी सन् १९११ में ८२५२५ थी।

३७–शहर बीकानेर ही बीकानेर राज्य की राजधानी है, यह नगर राजपूताना भर में चौथे नम्बर का शहर है। यह कलकत्ते से १३४० मील पश्चिमोत्तर और बम्बई से ठीक ७५९ मील उत्तर

में स्थित है। सन् १९११ की मनुष्यगणना के अनुसार यहां की आबादी ५५८२६ मनुष्यों की थी, जिसमें ४०४७१ हिन्दू, ११९६९ मुसलमान, ३८१० जैन और शेष सिक्ख, पारसी आदि थे।

३८-शहर के चारों तरफ़ सुन्दर और मज़बूत चहार दिवारी बनी हुई है, जिसका विस्तार साढ़े चार मील लम्बा है। जो आबादी चहार दिवारी के अन्दर है उसको शहर और जो चहार दिवारी के बाहर पूर्वोत्तर है उसको कोट कहते हैं। फसील (चहार दिवारी) में ५ दरवाज़े और ७ बारियाँ हैं उन के नाम ये हैं:—

१ कोट दरवाज़ा (तीन दरवाज़े बने हैं)
२ कसाइयों की बारी
३ पायूजीरी बारी
४ जस्सूसर दरवाज़ा
५ ईदगाह बारी
६ गणेशपोल उर्फ नत्थूसर दरवाज़ा
७ बैदीसर बारी
८ सीतला दरवाज़ा
९ उस्तों की बारी
१० हम्मालों की बारी
११ गोगा दरवाज़ा
१२ ऊँटवाड़ेरी बारी

३९--फ़सील छः फीट मोटी और १५ से ३० फीट तक ऊंची है जिसमें कंगूरा या कमरकोटा (Parapet) शामिल है। कंगूरों की ऊंचाई ६ फीट और मोटाई २ फीट है और इस में बंदूकें चलाने के लिये छेद (Battlements) बने हुए हैं, और कंगूरों की जड़ में २ से चार फीट तक चौड़ा चबूतरा (Terreplein) बना हुआ है जिस पर लड़ाई के वक्त सिपाही खड़े रहकर बंदूकें चला सकते हैं।

४०--शहर बीकानेर बहुत अच्छा बसा हुआ है, इस में बड़े २ धनी लोग बसते हैं जिनकी दुकानें कलकत्ते, बम्बई आदि बड़े २ शहरों में हैं। मकानात लाल पत्थर के कोरनीदार सुहावने ढंग के बने हुए हैं और मामूली, लोगों के मकान कच्चे हैं जो लाल मिट्टी से पोते हुए हैं और चेहरा सफेद मिट्टी से पुता हुवा होता है। बस्ती बड़ी घनी और रास्ते तंग हैं। सेन्ट्रल जेल, अस्पताल, कोटवाली, म्युनिसिप्यालिटी आदि शहर में हैं करीब दस जैनमन्दिर हैं जिन में संस्कृत की हस्तलिखित पुरानी पुस्तकें पाई जाती हैं और १५८ हिन्दू देवमंदिर हैं जिनमें मुख्य २ ये हैं:—

१ श्री लक्ष्मीनारायणजी
२ ,, राजरतनबिहारीजी
३ ,, रसिकशिरोमणिजी
४ ,, धुनिनाथजी
५ ,, नागनेचीजी

६ श्री नरसिंहजी
७ „ काशी विश्वनाथजी
८ „ सुरनायकजी
९ „ मदनमोहनजी
१० „ जनेश्वरनाथजी

४१-इनके अतिरिक्त वैष्णव सम्प्रदाय के मुख्य ३ मंदिर और भी हैं जिनके नाम ये हैं:—

१ श्री श्यामसुन्दरजी
२ „ दाउजी
३ „ गोवर्द्धननाथजी

४२-करीब ८८ मसजिदें हैं। कोट के दरवाज़े बाहर एडवर्ड मेमोरियलरोड बहुत चौड़ी वर्तमान समय (सन् १९१२-१३) में बनाई गई है और सड़क के दोनों तरफ़ एक ही नमूने की दुकानें बनवाई गई हैं जिस से शहर का रूप और ही होगया है। श्रीगंगा कचहरी और महकमा ख़ास आदि न्यायालय शहर से बाहर बने हुए हैं। पुराना क़िला जो राव बीकाजी ने बनवाया था, वह तो सिर्फ़ नाम व निशान के लिये प्रसिद्ध है। दूसरा राजसिंह जी का बनवाया हुआ शहर के कोट दरवाज़े से कोई ३०० गज़ के फ़ासले पर है, इस क़िले में पूर्व पश्चिम २ दरवाज़े हैं, और चारों तरफ़ मज़बूत कोट और एक २० तथा २५ फीट गहरी खाई है। क़िले के अन्दर के

मकान जो अलग २ राजाओं के वक्त के बनाये और उन्हीं के नाम से मशहूर हैं, बड़े बढ़िया और देखने योग्य हैं। शस्त्र-खाना और तोशाखाना इसी किले में देखने योग्य हैं। इस किले से कोई डेढ़ मील पूर्वोत्तर वर्त्तमान महाराजासाहब का निवासस्थान "लालगढ़" महल है जो देखने के लायक़ है। इसके अतिरिक्त विक्टोरिया मेमोरियल क्लब, गंगाकचहरी, गंगारिसाला, पुस्तकालय, सिलाहखाना, पोलोघर, बिजली-घर, कल के कूप, पब्लिक पारकबाग, श्रीडूँगरमेमोरियल कालेज, वाल्टर नोबलसस्कूल आदि स्थान देखने योग्य हैं। यहाँ गुणप्रकाशक सज्जनालय, सनातनधर्म सभा व नागरी-भण्डार सभाएं देखने योग्य हैं।

४२-विद्याप्रचार के लिये राज के श्री डूँगरमेमोरियल कालेज, वाल्टर नोबल्सस्कूल, पटवारस्कूल, वानीका स्कूल, बुक कीपिंग स्कूल, टेलीग्राफ स्कूल, पुलिस ट्रेनिङ्गस्कूल व लेडी एलगिन गर्ल्स स्कूल बनाये हुए हैं, जहाँ बिना फीस पढ़ाई होती है। तीन अच्छे प्राइवेट स्कूल और भी हैं और चिकित्सा के लिये, फौजी अस्पताल, एजेन्सी वा प्लेग डिसपेंसरी, भगवानदास होस्पिटल व जनाना अस्पताल राज की तरफ़ से बने हैं और प्राइवेट औषधालय भी शहर में बहुत बने हुए हैं। बीकानेर में करीब २० तालाब और ५०कूए हैं जिन में मशहूर २ ये हैं:—

तालावों के नाम

१ सूरसागर	५ ब्रह्मसागर	९ घड़सीसर
२ सहँतोलाव	६ नरसिंहसागर	१० बखतसागर
३ हरसोलाव	७ गधोलाई	११ मूंघड़ांरी तलाव
४ मानजीरी तलाई	८ जसलोलाई	१२ अमनोलाई

कूओं के नाम।

१ नत्थूसर
२ हरकिशन मोहतेरो
३ मदनगोपाल मूँधड़ा रो
४ रुघनाथसागर
५ जीवणसागर उर्फ सांड़िया
६ बलभैरो
७ छेकलालजी रो
८ ब्रजलालजी रो
९ जहमूसरो
१० मरयाओरो
११ सोनगरांजी रो
१२ जगमगरो
१३ पदमनाभजीरो
१४ मोहनांरो
१५ फूलबाईरो
१६ नवो कूँओ
१७ केशोराय
१८ बैणीसर (हाजमापानी)
१९ श्रीरामसागर
२० अनारजीरो,
२१ महनाथसागर (खारा पानी)
२२ जैलरो कूओ
२३ मोतीलालजीरी धर्म- शालारो
२४ अनूपसागर
२५ चांदसागर
२६ बैरासर
२७ राजीबादियांरो

२८ चन्दनसागर
२९ रतनसागर
३० चौतानो
३१ रामसर
३२ गजसागर
३३ राणीसर
३४ कल्याणसर
३५ छोगजी धाभाईरो
३६ किशनसागर
३७ करणीसागर
३८ भूटारे बालरो
३९ राणीसर (छतड़्यांरो)
४० केसिंगसागर

४४-बीकानेर से ६ मील पूर्व देवीकुण्ड सागर और चार मील पूर्व दक्षिण शिववाड़ी मुकाम हैं जो देखने के क़ाबिल हैं। देवीकुण्ड सागर में एक बाग व तालाब है, महलात व मृत राजाओं की छतरियां बनी हुई हैं और यहां मेले होते हैं। शिववाड़ी में तालाब और बगीचा है और महाराज श्री लालसिंहजीका स्थापित कराया हुआ लालेश्वर नाम से एक शिवमंदिर है, जहां श्रावण के सोमवारों व श्रावण सुदी लसमी का मेले होते हैं।

तहसील लूनकरणसर।

४५-लूनकरणसर में नमक की झील है और यथा गुण तथा ही नाम है। यह गांव राव लूनकरणजी, जो बीकानेर के तीसरे राजा हुए थे, उनका बसाया हुआ है और उन्हीं के नाम से मशहूर है। यहां तहसील है जो बीकानेर निज़ामत के मातहत है। इस तहसील में १५४ गांव हैं जिन में सिर्फ़ ३३ खालसा हैं। सन् १९११ में इस तहसील की आबादी

३१५८३ थी। यहां का पानी खारा है इस वास्ते लोग दूसरे गावों से लाकर पानी पीते हैं, और कई कुण्ड बनवाये गये हैं जिन में वर्षात का पानी भरजाता है। इस तहसील के मतीरे मशहूर हैं। यहां बीकानेर से भटिन्डा जाती हुई रेल पास करती है, यहाँ का स्टेशन लूनकरणसर स्टेशन के नाम से मशहूर है। यहाँ अंग्रेज़ी डाकख़ाना भी है और पुलिस और चुङ्गी के थाने भी मौजूद हैं रेल का तार भी है। यह बीकानेर से कोई ५० मील दूर वाके है। डलमेरा गांव जहां पत्थर की खान है और महाजन पट्टा इसी तहसील में हैं।

सूरपुरा सबतहसील।

४८-सूरपुरा जे०बी०रेलवे के किनारे बीकानेर से २४ मील दक्षिण में वाके है। यहां सदर निज़ामत के मातहत एक सब-तहसील है जिस में सन् १९०१ में २०८ गांव व ६०६३७ मनुष्यों की आबादी थी। परन्तु सन् १९०४ में इसको १०८ गांव अलग किये जाकर एक दूसरा सबतहसील और कायम करदी गई। इस वक्त इस में ११४ गांव हैं जिन में [illegible] खालसा हैं, यहां का पानी मीठा है। यहां भी सूरपुरा नाम का रेलवे स्टेशन है और बीकानेर से मेड़तारोड जाने वाली गाड़ी यहां से पास होती है। यहां पुलिस और चुङ्गी के थाने भी हैं डाकखाना भी है, तार रेलवे का है। देशनोक कस्बा इस सबतहसील में एक मशहूर स्थान है जहां श्री करणीजी का मंदिर है। सन् १९११ में इस तहसील की आबादी [illegible] थी

मगरा सब तहसील।

४७-मगरा सब तहसील सन् १९०४ में सूरपुरा सब तहसील से १०८ गांव निकाल कर कायम की गई थी, इस का सदर मुकाम झझू में है, जो बीकानेर से ३४ मील दूर पश्चिम दक्षिण वाके है। १०८ गांवों में से १७ खालसा और बाकी सब पट्टे के थे। सन् १९११ की मनुष्यगणना में इस सब तहसील की आबादी २०७११ थी और गांवों की संख्या ९४ थी। इस तहसील की ज़मीन हमवार और पक्की है और यहां अच्छी घास पैदा होती है। इसमें मुख्य जगह कोलायत, गजनेर मढ़ और पिलाप के बँधे और कोडमदेसर हैं। कोलायत एक तीर्थ स्थान है जहां कार्त्तिक सुदी पूनम को मेला होता है। यहां एक बड़ा तालाब है और कपिलमुनि की त्रिमूर्त्ति प्रतिमा एक मंदिर में स्थापित है, लोग दूर २ से तीर्थ यात्रा को यहां आते हैं क्योंकि यह कपिलमुनि का आश्रम माना जाता है। यहां राज के और महाजनों के मंदिर हैं और धर्मशालाएं हैं। मढ़ और पिलाप में पानी के बंधे बांधे गए हैं और मुलतानीमिट्टी यहां ही निकलती है। गजनेर भी एक दृश्य और मशहूर स्थानों में से है जहां एक झील है, बाग है और महाराजासाहिब के रहने के महलायत हैं। यह बीकानेर शहर से २० मील के फासले पर है। बीकानेर से गजनेर और आगे कोलायतजी तक सड़क बनी हुई है। कोडमदेसर में भैरूंजी का स्थान है और बड़ा तालाब है. यहां भी भाद्रपद सुदी १३ को मेला होता है और सूरत के

यात्री यहां भैरूंजी के दर्शन करने आते हैं। कोडमदेसर तक भी सड़क बनी हुई है, यह बीकानेर से १६ मील दूर है, बीकाजी ने यहां पहिले किला बनाया था जिसके खंडहर अब भी मौजूद हैं।

निज़ामत रैणी की तहसीलें।

तहसील रैणी।

वाले ज़ियादा हैं। यहां का पानी कच्चा है कूप ज़ियादा गहरे नहीं होते और ऊपर का ३ .फ़ीट गहरा पानी तो मीठा होता है बाक़ी नीचे का खारा होता है। यहां तारघर, पोस्टआफ़िस, अँग्रेज़ी हिन्दी का स्कूल और अस्पताल हैं। एक जैनमंदिर बहुत ही सुन्दर बनाया हुआ है जो देखने के क़ाबिल है, यहां एक छोटा क़िला भी है जिसको महाराज सूरतसिंहजी ने मज़-बूत कराया और कस्बे को तरक्क़ी देकर बजाय हरबूजी के कोट के सुजानसिंह के नाम पर इसका नाम सुजानगढ़ रक्खा, इस तहसील में बीदासर, दरीबा, छापर, गोपालपुरा और सोभासर आदि कस्बे हैं जिन में बीदासर और दरीबा के नज़-दीक पहिले तांबे की खान निकली थी। गोपालपुरा की पहाड़ी समुद्र की सतह से १६५१ .फ़ीट ऊँची है. यहां पहिले द्रोणपुर शहर था जो, पांडवों के गुरु द्रोणाचार्यजी का बसाया हुआ था। छापर में नमक की झील है और यहां नाज अच्छा होता है। यहां डेगाना हिसार लाइन रेल चलती है। जिससे मुसा-फ़िरों और व्यापारियों को बहुत सुभीता हो गया है, यहां श्री-दरबार साहब के ठहरने के लिये कोठी बनी हुई है और रेलवे स्टेशन से कोठी तक सड़क बनी हुई है। पहिले बग़ावत रोकने के लिये यहां पोलिटिकल एजेंट का कुछ अर्से तक मुक़ाम रहा है। यहां कस्टम व पुलिस नायब थाने भी हैं।

रतनगढ़ तहसील।

५४-यह स्थान बीकानेर से पूर्व ८० मील और शेखावाटी

गावों के एक कांधलोत ठाकुर के कब्ज़ में था। बाद में राज्य में लेलिया गया और ठाकुरों को पांच गांव देदिये गये। चूरूवाले रावबहादुर ठाकुर लालसिंहजी बीकानेर कौन्सिल के मेम्बर थे जिन का डेरा बीकानेर में अब भी चौतीना कूवा के पास मौजूद है। यहां भी रेल का स्टेशन है और रतनगढ़ कार्ड लाइन और डेगाना हिसार लाइन इसको पास करती है रेल की वजह से यह नगर दिन ब दिन रौनक पकड़ता चला जाता है। यहां भी दरबार साहिब के दौरे के वक्त ठैरने के लिये कोठी है। यहां जकात का सायर व थाना है और पुलिस का भी थाना है।

निज़ामत सुजानगढ़ की तहसीलें।

तहसील सुजानगढ़।

सब तहसील की सन् १९११ में ३२६११ व कस्बे की ३००० के लगभग थी। यह .कस्बा महाराज डूंगरसिंहजी ने अपने नाम पर सन् १८८० में बसाया था। यहां पोस्टआफिस व अस्पताल व दो मदर्से हैं। यहां बीकानेरसे रतनगढ़ आने वाली रेल पास करती है और यहां के स्टेशन का नाम श्रीडूंगरगढ़ स्टेशन है। इस तहसील में ज़ियादातर जाट, ब्राह्मण, महाजन, राजपूत और चमार रहते हैं। यह .कस्बा आजकल आबादी बढ़ने की वजह से रौनक़ पर आगया है। यहां कस्टम व पुलिस के थाने भी हैं।

सरदारशहर तहसील।

५६—सरदारशहर नगर बीकानेर से ७६ मील दूर पूर्वोत्तर स्थित है। इसी नाम की तहसील सुजानगढ़ निज़ामत के मातहत यहां है। जिस में १२३७५ मनुष्यों की आबादी सन् १९११ में थी। इस कस्बे में ओसवालों की बस्ती ज़ियादा है। यहां महाराज सरदारसिंहजी ने राज्यगद्दी पाने से पहिले १ किला बनवाया था और यहां रहते भी थे, उन्हीं के नाम पर इसका नाम सरदारशहर पड़ा। यहां डाकखाना व तार घर है, व अंग्रेजी हिन्दी मदरसा व अस्पताल हैं। और यह कस्बा अच्छे धनी सेठों से सुसज्जित है। यहां रतनगढ़ से एक छोटी लाइन खुलने वाली है जिससे व्यापारियों और मुसाफिरों को बहुत आराम व .फायदा होगा। यहां जकात का सायर व थाना व पुलिस का थाना है। इस तहसील में

२५४ गांव हैं। जिन में १३ ख़ालसा हैं, इस तहसील की आबादी सन् १९११ में ३७३१८ थी।

सूरतगढ़ निज़ामत की तहसीलें।

तहसील सूरतगढ़।

५७—सूरतगढ़ नगर बीकानेर से उत्तर ११३ मील दूर स्थित है। यहां चौथी व सब से बड़ी निज़ामत है और इसी नाम की तहसील भी है, सन् १९११ में इस क़स्बे की आबादी २७८१ थी और तहसील की आबादी २११८७ थी। यहां ज़ियादातर

सोढ़ावाटी के नाम से मशहूर था अब एक भी सोढ़ा नहीं है। इस तहसील में १४४ गांव हैं जिनमें ११७ खालसा हैं बाक़ी पट्टों के हैं। यहां ज़कात का सायर व थाना व पुलिस हलका व थाना है।

हनुमानगढ़तहसील।

५८--हनुमानगढ़ कस्बा बीकानेर से पूर्वोत्तर १४४ मील दूर है। इस नाम की सूरतगढ़ निज़ामत के मातहत एक तहसील है जिस में १३९ गांव हैं और सिवाय एक गांव के सब खालसा हैं। इस तहसील की आबादी सन् १९११ की मनुष्यगणना के मुताबिक ४१५१९ है और कस्बे हनुमानगढ़ की आबादी २००० से ऊपर है। यहां पोस्टआफिस, शफ़ाखाना और मदरसा हैं और एक बड़ा भारी क़िला है यह क़िला भट्टियों का बनाया हुआ है इसी से हनुमानगढ़ का नाम पहिले भटनेर था। और सन् १८०५ में महाराज सूरतसिंह जी के समय में यह भट्टियों से मंगलवार के दिन जीता गया था। जिस से श्रीहनुमानजी के नाम पर इसका नाम हनुमानगढ़ रक्खा गया। इस तहसील में ज़ियादातर जाट, राठ, चमार, ब्राह्मण और थोरी रहते हैं। यहां भी कुछ कम हैं और पानी जोहड़ों और कूओं का पाया जाता है। इस तहसील में ग्वार पैदा होता है। और ज़मीन यहां की उपजाऊ है गेहूं जव, चना, जो, तिल, सरसों और सब्ज़ी यहां ज़ियादा पैदा होते हैं। यहां से भी जे०बी० रेलवे की लाइन पास होती है। परन्तु

स्टेशन कस्बे से ३ मील के फासिले पर है। यहां श्रीदरबार साहिब के दौरे के वक्त ठहरने के २ बंगले हैं। ज़कात और पुलिस थाने भी यहां हैं। हनुमानगढ़ स्टेशन पर डाक बंगला है और रेलवे डिसपैन्सरी है जो मुसाफ़िरों को आराम देने वाली है।

मिरजावाला तहसील।

५९.—मिरजावाला एक छोटा गाँव है जो बीकानेर से १५० मील उत्तर में स्थित है। यह बीकानेर की उत्तरीय सरहद पर है जिसके पूर्वोत्तर फीरोज़पुर के ज़िले और पश्चिम बहावलपुर के ज़िले हैं। यहां भी सूरतगढ़ निज़ामत के आधीन एक तहसील है जिसमें राज्य भर की तहसीलों से ज़ियादा खाल-से के गांव हैं. इस में १४५ गाँव हैं और सब खालसा हैं।

थाने हैं। यह तहसील पहिले हनुमानगढ़ में शामिल थी, परन्तु काम ज़ियादा होने से सन् १८८७ में जुदा क़ायम कीगई।

अनूपगढ़ सब तहसील।

६०—अनूपगढ़ एक छोटासा नगर है जो बीकानेर से ठीक उत्तर ८२ मील दूर स्थित है। इस क़स्बे की आबादी सन् १९०१ ई० की मनुष्यगणना के मुताबिक़ १०१९ है। यहां भी सूरतगढ़ निज़ामत के मातहत एक सब तहसील है। यहां पर एक क़िला महाराज अनूपसिंहजी का सन् १६७८ में बनवाया हुआ है और इन्हीं के नाम पर यह क़िला अनूपगढ़ कहलाताहै। इस सब तहसील में ८३ खालसे के गांव हैं। सन् १९११ई० में इस तहसील की आबादी १२५१२ थी, यहां ज़ियादातर बस्ती जाट, राठ, चमार, रोड़ा, खतरी और राजपूतों की है, यहां की ज़मीन हमवार और चिकनी है, परन्तु पानी का अभाव होने से जंगल ही जंगल पड़ा है, यहां सब्जी बहुत पैदा होती हैं और घास कसरत से होता है। सन् १८७१ में यह परगना महाराज लालसिंहजी, वर्त्तमान महाराज साहिब के पिता को पट्टे में दिया गया था जो सन् १८८८ में उन की मृत्यु के पश्चात् फिर खालसे कर लिया गया जो फिर ६ फ़रवरी सन् [illegible] को महाराज श्रीविजयसिंहजी बहादुर को दिया गया है, जो महाराज लालसिंहजी के दत्तक पुत्र हैं, इस जागीर में [illegible] गांव हैं जो कई तहसीलों में स्थित हैं

टीबी सब तहसील।

९१· टीबी बीकानेर से १६८ मील दूर पूर्वोत्तर सूरतगढ़ निज़ामत में स्थित है। यहाँ सब-तहसील है। इसमें ३८ गांव हैं जिनमें सन् १९११ की मनुष्यगणना के मुताबिक ११५५३ मनुष्यों की आबादी है। यह परगना महाराजा सरदारसिंह जी को सन् १८५७ के गदर में सहायता देने के उपहारमें गवर्नमेंट से मिला था, जिस के अलावा मुक़ामी देरों के २८०००) सालाना आमदनी होती है। इस परगने की ज़मीन बड़ी उपजाऊ है। क़स्बे टीबी की आबादी सन् १९०१ में ५७४ थी। यहाँ एक डाकख़ाना और उर्दू का मदरसा है।

शिक्षा (Education)

गया और बाद में सन् १८८७ में प्रयाग यूनिवर्सिटी से । पटवार पुलिस ट्रेनिंग स्कूल, बुक-कीपिंग आदि इसकी शाखाएं हैं।

२-वाल्टर नोबिल्स स्कूल, कर्नल वाल्टर साहब बहादुर के नाम पर सन् १८९३ की अप्रेल में क़ायम किया गया, इसमें सरदारों के बालकों को शिक्षा दी जाती है।

३-लेडी एलगिन गर्ल्स स्कूल, लार्ड एलगिन साहब बहादुर के (सन् १८९६) शुभागमन की यादगार में ३१ मार्च सन् १८९८ को खोला गया, इसके लिये अच्छा भवन चंदे से बनवाया गया था।

प्राइवेट स्कूल्स ।

४-लाढ़ला मूलचंद विद्यालय (१९०९)

५ वसुदेव[illegible] विद्यालय (६ मई सन् १९१३ ई०)

६-जैन पाठशाला (सन् १९१८ ई०)

मेले (Fairs)

६३-बीकानेर राज्य में नीचे लिखे मेले हरसाल होते हैं, यानी बतौर त्योहारों के माने जाते हैं :—

नाम मेला.	मास.	पक्ष.		तिथी
१ मेला गनगोर	चैत्र	सुदी	...	३
२ ,, रामनवमी (धूनीनाथजी)	,,	,,	...	९
३ ,, नृसिंहचतुर्दशी	वैशाख	सुदी	...	१४
४ ,, पूनरासर	श्रावण	सुदी	...	५
५ ,, लोड़ी तीज	श्रावण	सुदी	...	३
६ ,, शिवबाड़ी	श्रावण	वदी	...	७
७ ,, बड़ी तीज	भादवा	वदी	...	३
८ ,, रामदेवजी	भादवा	वदी	...	११
९ ,, गोगामेड़ी	भादवा	सुदी	...	९
१० ,, कोडमदेसर (भैरूंजीका)	भादवा	सुदी	...	१३
११ ,, पबलिक पार्क	,,	,,	...	१४
१२ ,, उदरामसर (जैनियों का)	,,	,,	...	१५
१३ ,, देवीकुण्ड	आसोज	वदी	...	४
१४ ,, दशहरा	,,	सुदी	...	१०
१५ ,, लक्ष्मीनाथजी	काती	,,	...	१
१६ ,, कोलायतजी	,,	,,		१३से १५

नाम मेला.	मास.	पक्ष.	तिथि
१७ मेला रामदेवजी	माघ	सुदी ...	११
१८ ,, ताज़िया			
१९ ,, ईद			

नोट—श्रावणीतीज, रक्षाबंधन (राखीपूनम) जन्माष्टमी, स्थापना, दिवाली, होली, शिवरात्री आदि बड़े २ त्योहार माने जाते हैं, परन्तु मुकामी मेले नहीं होते।

चिकित्सालय (Hospitals)

पशु-चिकित्सा के लिये राज्य की तर्फ से सिवाय बीका-नेर के सभी तहसीलों में भी अच्छा प्रबन्ध है और रोगियों को मुफ्त दवाइयें दीजाती हैं। जहां २ चिकित्सालय हैं उनका विव-रण नीचे दर्ज किया जाता है :—

११	डिसपैन्सरी	...	नोहर
१२	,,	...	राजगढ़
१३	,,	...	भादरा
१४	,,	...	सूरतगढ़
१५	,,	...	हनुमानगढ़
१६	,,	...	पलाना
१७	,,	...	डूँगरगढ़
१८ रेलवे	,,	...	हनुमानगढ़
१९ ,,	,,	...	चूरू

९५-राज्य की अस्पतालों के सिवाय बीकानेर खास शहर में प्राइवेट औषधालय भी हैं; उनमें से मुख्य ५ ये हैं:—

१ डागा लक्ष्मीनारायण	औषधालय
२ ज्यानकीनाथेश्वर	,,
३ जीवनानंद	,,
४ अमृतसंजीवनी आसोपा	,,
५ एन० सी० शर्म्मा	,,

आमदनी (Income)

९६-राज्य की आमदनी के मुख्य २ सीगे यह हैं:—

१ माल	...	१२५००००)
२ सकात	...	१२०००००)
३ रेलतार	...	१३०००००)

४ फरोख्तगी जमीन	...	१०००००)
५ रजिस्ट्री	...	१५००००)
६ ला अस्टिस	...	१२००००)
७ ब्याज	...	५००००)
८ आबकारी	...	५५०००)
९ माद्नियात	...	७५०००)
१० नमक	...	३००००)
११ इस्टाम	...	४००००)
१२ छापाखाना	...	१५०००)
१३ इंजीनिअरी	...	१६०००)
१४ कारखाना	...	४०००)

६७—ऊपर की रकमों से मालूम होगा कि यह राज्य करीब ५०,००,०००) का होगया है और दिनबदिन बढ़ता जाता है।

६८—बीकानेर राज्य के बड़े २ पट्टों के नाम।

नाम.		आमदनी (अंदाज़न)
१ महाजन	...	६५०००)
२ रावतसर	...	४००००)
३ भांदू	...	३५०००)
४ जसाना	...	३२०००)
५ भूकरका	...	३१५००)
६ बीदासर	...	२५०००)

नाम.		आमदनी (अन्दाज़न)
७ बाय	...	२५०००)
८ रेड़ी	...	२५०००)
९ ददरेवा	...	२००००)
१० पूगल	...	२००००)
११ राजपुरा	...	२००००)
१२ सीधमुख	...	१८०००)
१३ सांडवा	...	१७०००)
१४ नीमां	...	१५०००)
१५ चाड़वास	...	१००००)
१६ गोपालपुरा	...	१००००)
१७ जैतपुर	...	१००००)
१८ कुचोर	...	१००००)
१९ कन्वारी	...	८०००)
२० मलसीसर	...	८०००)
२१ रानासर	...	७५००)
२२ भानूदा	...	७०००)
२३ जैतसीसर	...	७०००)
२४ मलकीसर	...	७०००)
२५ सारूंडा	...	७०००)
२६ गढ़ियाला	...	६०००)
२७ मानकरासर	...	५०००)